सेवा
(ऋतु-उत्सव-मनोरथ)

व्याख्याता : गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी
(किशनगढ-पार्ला)

‘‘सेवाको प्रकार एतन्मार्गीय वैष्णव जानत हैं. तिनसों मिलि, भाव पूछि के सेवा करनी. तब भगवद्भाव उत्पन्न होय. श्रीठाकुरजीकी लीलाको सब भेद जाने’’.

पुष्टिभक्ति सम्प्रदायकी सेवाप्रणालीके अन्तर्गत नित्य, ऋतु, उत्सव और मनोरथ ऐसे चार तरहके क्रम होवें हैं. उक्त वचनामृतके अन्तर्गत अपनने नित्यसेवाके प्रकारको विचार श्रीगोपीनाथजी विरचित ‘साधनदीपिका’ ग्रन्थके आधारपे पूरी तरहसूं गये बखत (किशनगढमें किये गये एक अन्य प्रवचनमें) कियो हतो.

ऋत्वनुसारी सेवाकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमी :

‘साधनदीपिका’में जा तरहसुं श्रीगोपीनाथजीने नित्यसेवाके प्रकारकु क्रमबद्ध कियो है वैसो ऋतु अनुसारी सेवाको क्रमबद्ध प्रकार श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगोपीनाथजी अथवा श्रीगुसांईजी की वाणीमें अपने सम्प्रदायमें प्राप्त नहीं होवे है. श्रीहरिरायजी, श्रीव्रजरायजी, श्रीद्वारकेशजी, योगी श्रीगोपेश्वरजी आदि परवर्ति आचार्यन्ने वा प्रकारकु क्रमबद्ध प्रकट कियो है. परन्तु ये यहां नहीं भूलनो चहिये के भगवत्सेवाके प्रकारमें ऋतु-उत्सव आदिके अनुसार परिवर्तन तो श्रीमहाप्रभुजीके बखतसुं ही शुरु हो गयो हतो. यामें सबसु बडो प्रमाण श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी के सेवकन्के द्वारा गाये गये पद हैं. सूरदासजी, कृष्णदासजी, परमानन्ददासजी, कुम्भनदासजी, छीतस्वामी,

गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदासजी, नन्ददासजी और इनके अतिरिक्त विष्णुदास छीपा, ‘श्रीविट्ठलगिरिधरन’की छापवाले [१]श्रीकृष्णदासी आदि भगवदीयन्के पदन्में ऋतुके अनुसार सेवाके क्रममें किये जाते परिवर्तनन्कु अपन देख सके हैं. वा बखतसु सेवाप्रकारकी जो परम्परा चली वो अद्यावधी (आज तक) श्रीवल्लभपुष्टिप्रकाश और अलग-अलग घरन्की सेवारीतिकी पुस्तकन्में देखवे मिले ही है.

अन्य सम्प्रदायसुं वैशिष्ट्य :

दूसरे सम्प्रदायकी सेवा-पूजा प्रणालीमें ऋतुक्रमको परिग्रह नहीं है ऐसे तो हम कह नहीं सके हैं. क्योंके अन्यान्य सम्प्रदायमें भी ऋतुके अनुसार पूजाविधिमें परिवर्तन किये ही जाय हैं. जैसे, जिनके यहां सेवाविधि है ऐसे निम्बार्क और चैतन्य सम्प्रदाय में भी ऋतुके अनुसार उनके सेवाप्रकारमें परिवर्तन किये जाय हैं. परन्तु अपने यहांकी भगवत्सेवामें ऋतुको जैसो महत्व है वैसो दूसरे ठिकाने देखवे नहीं मिले है.

अपने यहां भी ऋतुको महत्व केवल एक दृष्टिसु नहीं, अनेक दृष्टिसु सोच्यो गयो है. जैसे श्रीठाकुरजीके वस्त्र, शृङ्गार, भोग-सामग्री, अत्तर, फूल, गेय-राग[२], वाद्य आदि सब बातन्को बहुत ही सूक्ष्मतासु विचार करके उन सबन्कु अपनने ऋतुके अनुसार क्रमबद्ध कियो है.

---

१. ‘श्रीविट्ठलगिरिधरन्’की छापवाले पदन्के भाव सब श्रीगुसांईजीके हैं परन्तु उनकु पद्यबद्ध श्रीकृष्णदासीने कियो है. प्रतिदिन श्रीगुसांईजी जो प्रवचन करते और भगवल्लीलाको गुणगान करते उनकु श्रीकृष्णदासी पद्यबद्ध कर देती. यासुं उन पदन्में छाप ‘श्रीविट्ठलगिरिधरन्’ ऐसी देती. श्रीकृष्णदासी श्रीमहाप्रभुजीके घरमें बचपनसुं ही रहवे लग गई हती.(पादटिप्पणीतया दिये गये ये अंश मूल वक्ताद्वारा वक्तव्यके बखत कहे गये हैं. बोधसौकर्यार्थ टिप्पणीमें दिये हैं)

२. सामान्यतया ‘भोग-राग-शृंगार’ कह्यो जाय है पर ध्यानसु देखोगे तो भोग-राग-शृंगार तक बात सीमित नहीं है. वस्त्र, पुष्प, जल आदिमें भी वही सावधानी बरती गयी है और उनकु क्रमबद्ध कियो गयो है.

श्रीगुसांईजीको अपूर्व योगदान :

इन सबकु क्रमबद्ध करवेमें श्रीगुसांईजीको सबसु अधिक योगदान रह्यो है. आप ''पितृ-प्रवर्तित-पथ-प्रचार-सुविचारक:'' हैं. श्रीमहाप्रभुजीने सेवाको जो क्रम शुरु कियो वाकु जैसो साङ्गोपाङ्ग श्रीगुसांईजीने कियो वैसो ओर कोईने नहीं कियो. शृङ्गारके विषयमें सोचें तो पहले मुकुट और पाग यों दो ही शृङ्गार हते. श्रीगुसांईजीने दोसु आठ तरहके शृङ्गार बनाये. वस्त्र भी केवल दो ही हते. वस्त्रके भी श्रीगुसांईजीने अनेक प्रकार शुरु किये.

ऋतुके विषयमें सर्वसामान्य लोगन्की भी सूझ-बूझ होवे ही है. प्राय: सब लोग ऋतुके अनुसार जीते ही होवे हैं. छोटेसु छोटो आदमी भी ठंडमें गरम कपडा पहनेगो गरमीमें सूती कपडा पहनेगो. पर अपने मार्गकी यामें विशेषता यह है के अपने यहां ऋतुके अनुसार सब उपचारनकु जितनी सावधानीसु श्रीगुसांईजीने क्रमबद्ध कियो है वो न भूतो न भविष्यति है. मैं नहीं समझूं हूं के सेवा या पूजा के विषयमें उतनी सावधानी अन्य कोई भी सम्प्रदायमें बरती गई होय.

ऋतु=प्रकृतिके विविध रूप :

एक बात समझो के ऋतुएं अपने आपमें प्रकृतिके अलग-अलग चेहरा हैं. ये बात प्रकृतिके पृथ्वि जल तेज वायु और आकाश इन पांचो तत्त्वन्पे लागू होवे है.

गरमीमें पृथ्विको एक स्वरूप होवे है तो बरसातमें कछु ओर ही स्वरूप होवे है. शरद्में एक स्वरूप होवे है तो शीतमें कछु दूसरो स्वरूप होवे है.

ऐसे ही गरमीमें जलको एक स्वरूप होवे है तो बरसातमें दूसरो स्वरूप होवे है. और शरद्में कछु ओर स्वरूप हो जाय है. आजकल

नदीन्पे बांध बन जावेके कारण ऋतुके बदलवेपे जलके स्वरूपमें जैसे परिवर्तन आवे हैं उनको अनुभव अपन नहीं कर सके हैं. पहले अपन उन परिवर्तननको अनुभव स्पष्टतया कर पाते हते. अपने यहां किशनगढमें मथुराधीशजीकी बैठकके पासके कूवामें गरमीके दिननमें नहावेको महान सुख हतो. ठंडके दिननमें वामें गरम जल रहेतो हतो करके ठंडके दिननमें भी नहावेको आनन्द आतो हतो. तो यापेसु अपन समझ सके हैं के ऋतुके सङ्ग केवल पृथ्वि ही नहीं, जल भी अपनो स्वभाव बदले है.

ऋतुके बदलवेपे अग्नि-तेज भी अपनो स्वभाव बदले है. जैसे गरमीमें अपन आगकु ताप नहीं सके हैं परन्तु ठंडमें आगकु ताप सके हैं. ठंडमें आग अपनकु अच्छी लगे है. गरमीमें वो ही आग अपनकु सुहावे नहीं है.

हवा भी ऋतुके अनुसार अपनो स्वभाव बदले है.

आकाशकु आप देखोगे तो अलग-अलग ऋतुमें वाके रंग अलग-अलग दीखेंगे. आकशकु देखवेकी आदत होवे तो वाके परिवर्तनकु अपन अनुभव सकें.

ऋतुचक्र और प्राणीजीवन :

ऋतुके अनुसार पञ्चमहाभूतन्में होते परिवर्तनको अनुभव हर प्राणी करेतो होवे है. मनुष्य भी पहले इन परिवर्तनन्को अनुभव कर पातो हतो. आज मनुष्यकु या विषयको अनुभव कम हो गयो है क्योंके मनुष्य अब यान्त्रिक जीवनकु जीनेको आदी होतो जा रह्यो है. मनुष्यके वर्तमान जीवनमें प्रकृतिके सङ्ग जीनेकी पद्धति दिन-प्रतिदिन खत्म होती जा रही है. परन्तु मनुष्येतर प्राणी प्रकृतिके साथ जीये हैं करके प्रकृतिके बदलते रूपनमें प्राणी भी अपनो ताल-मेल बैठावे हैं. अपने यहां के पदन्में आते प्रकृतिके वर्णनकु सोचोगे तो पाओगे के कोई पक्षी वर्षाकालमें बोले है तो कोई

वसन्तमें बोले है, कोई शरदमें बोले है. पक्षीन्की तरह छोटे-मोटे पशु भी प्रकृतिके सङ्ग अपनो तालमेल बैठावे हैं.

ऋतु और भक्तजीवन :

मनुष्य भी प्रकृतिके साथ अपनो ताल-मेल बैठावे है. ये जीवनकी प्रणाली है. जीवनकी अपनी प्रणालीके साथ अपने सेव्य श्रीठाकुरजीकु जोडनेको प्रकार पुष्टिमार्ग सिखावे है.

प्रभुके सङ्ग ऋतुको सुख लेनो :

बरसात पड रही है. बरसातके कारण अपनी जीवन प्रणालीमें जो अन्तर आ रह्यो है वाकु अपन श्रीठाकुरजीके सङ्ग एन्जोय् करें. ठंडके कारण अपनी जीवन प्रणालीमें जा अन्तर आ रह्यो है वा ठंडकु अपन अपने श्रीठाकुरजीके सङ्ग एन्जोय् करें. एसे ही वसन्त और गरमी कु भी अपन अपने श्रीठाकुरजीके सङ्ग एन्जोय् करें. या तरहसु अपने प्रभुके सङ्ग ऋतुको सुख लेनो ये एक भाव है.

ऋत्वनुसार सुखद सेवा :

ऋतून्के परिवर्तनमें प्रभुकु कैसे सुख पूर्वक सेव्य बनानो ये दूसरो भाव है.

ऋतुक्रमकी सेवाप्रणालीके इन दो भावन्कु ध्यानमें रखने चहिये के केवल अपन ही ऋतुको सुख न लें पर प्रभुके साथ ऋतुको सुख लें. और प्रभुके सङ्ग ऋतुको सुख ही न लेते रहें ऋतुके अनुसार प्रभुकी सेवाकु सुखद भी बनावें.

वार्तामें या बातको स्पष्ट उल्लेख मिले है के एक बखत जयपुरके राजा मानसिंह तीर्थ-यात्रा करते-करते देवदर्शन करवे गये तब राजा दर्शन करवे आने वाले हैं ये समाचार सुनके मन्दिरके पुजारीन्ने बडे भारी-भरी

सोने-जवाहरातके शृंगारन्सु अपने-अपने ठाकुरजीकु शृंगार्यो. पर राज जब श्रीनाथजीके दर्शन करवे पहूंच्यो तब श्रीनाथजी मोतीकी केवल दो माला और श्वेत वस्त्र धरके ठाडे हते और आगे फुवारा छूट रहे हते. ये दर्शन करके राजाकु बडी ठंडक मिली. यहां सोचो के ठंडक क्या बातकी भइ. आंखकी ठंडक, विचारकी ठंडक, और इनके साथ भगवान्के दर्शनकी भी एक ठंडक भी भइ. या बातकु मानसिंहने वा बखत भी एप्रिशियेट् करी के दर्शनको जैसो आनन्द यहां आयो वैसो अन्यत्र नहीं आयो. ये पुष्टिभक्तिमार्गको रहस्य है.

ऋतुसेवामें भोक्तृभाव और भोग्यभाव :

एक तो भोक्तृभाव होवे है और एक भोग्यभाव होवे है. प्रभुकु ऋतु सुखद होवे वा तरहसु प्रभुकी सेवा करनी ये अपनेमें भोग्य होवेको भाव है. ऋतुके भोक्ता अपन नहीं होके प्रभुकु मानें ये एक बात है. और दूसरी बात **''सेवकानां यथा लोके व्यवहार: प्रसिद्ध्यति, तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता तत:''** ये है. सेवकको स्वामीके साथ लोकमें जैसो व्यवहार होवे है वा तरहसु प्रभुके सङ्ग अपनकु व्यवहार करनो. या प्रकारमें स्वामीकु समर्पित पदार्थको सुख अपन लेवे हैं. पर ध्यानसु समझो के यहां समर्पित पदार्थको सुख जब अपन लेवे हैं तब वो सुख न त्यागको है और न वो भोगको सुख है. समर्पणको सुख प्रभुकु समर्पित करके वा पदार्थकु अपने भोगवेको है. याकी एक बारीकी है. बारीकी ये है के ये सुख मोकु भोगनो है वालिये मैं याकु प्रभुकु समर्पित कर रह्यो हूं ऐसी भावना होवे तब तो वो लौकिक भाव हो जायगो. पर प्रभुने याको सुख ले लियो है यासु मैं भी याको सुख लऊं ऐसो भाव होवे तो वो भाव सेवकको हो गयो, लौकिक नहीं रह्यो. सेवाफल ग्रन्थके विवरणमें श्रीमहाप्रभुजीअ आज्ञा करे हैं के **''अलौकिकस्तु भोग: फलानां मध्ये प्रथमे प्रविशति''**. या तरहको भोग अलौकिक है, लौकिक नहीं है. क्योंके प्रभुने जाकु भोग लियो है तो **''तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता तत:''**. अब वा सुखकु भोगवेमें अपनकु वैराग्यको भाव रखनो व्यर्थ बात है.

प्रभुके सङ्ग ऋतुके भोगमें ज्ञान-वैराग्यादिको स्वरूप और स्थान :

वैसे देख्यो जाय तो वैराग्य बडी अच्छी बात है. परन्तु शुष्क वैराग्य भक्तिमें सहायक नहीं होवे है ये याद रखो. ज्ञानमार्गमें जाकु चलनो है वाकेलिये वैसो वैराग्य सहायक हो जायगो. पर वैसो वैराग्य भक्तिमें सहायक नहीं होवे है. क्यों नहीं होवे है? एक उदाहरणसु आपकु समझाउं हूं.

चैतन्य सम्प्रदायके रूपगोस्वामी 'भक्तिरसामृतसिन्धु' ग्रन्थमें एक सुन्दर बात लिखे हैं के

ज्ञान-वैराग्ययोर्भक्ति-प्रवेशायोपयोगिता,
इशत्प्रथममेवेति नाङ्गत्वम् उचितं तयो:.

ज्ञान-वैराग्यकी भक्तिमें उपयोगिता है परन्तु शुरुआतके तबक्कामें. पर, रूप गोस्वामी कहे हैं, ज्ञान-वैराग्य भक्तिके अङ्ग नहीं बन सके हैं. अङ्ग बननो एक बात है और आरम्भमें उपयोगी होनो दूसरी बात है. जैसे, अपनकु कहीं घूमवे जानो है. वहां तक जावेकेलिये अपन रिक्शा भाड़ेंगे. रिक्शासु वहां पहुंचके अपन पैदल घूमेंगे. तो देखो के रिक्शाकी उपयोगिता वा जगह तक पहुंचनेमें है. अब रिक्शासु उतरके पैदल घूमवेके स्थानपे अपन रिक्शामें बैठके ही बगीचामें घूमवे लगे जायें तब तो बगीचाकी मजा ही चौपट हो गयी न जैसे कई लोग गिरिराजजी जावें और गिरिराजजीकी परिक्रमा करवेके ठिकाने घोडागाडीमें बैठके गिरिराजजीको चक्कर काट लेवें, मोटरमें बैठके चक्कर काट लेवें. तो देखो के अब घोडागाडी या कार गिरिराजजी तक पहुंचवेको साधन नहीं रह गयी, पर परिक्रमाको अङ्ग बन गयी. ऐसे ही ज्ञान और वैराग्य को भक्तिमें उपयोगी होनो और अङ्ग होनो ये दो अलग बाते हैं. यासुं भक्तिकी सात कोसकी परिक्रमा करवेकेलिये आपकु यदि कोई एक मुकाम तक पहुंचनो है तो आप ज्ञान-वैराग्यकी कारमें बैठके भले ही पहुंच जाओ. व्यर्थमें समय क्यों बरबाद करनो जहां अपनकु घूमनो नहीं है वहां पांवनूसुं चलके क्यों जानो, क्यों परेशान होनो? क्योंके जब तक

अपन गिरिराजजी पहुंचेंगे तब तक अपन इतने थक जायेंगे के परिक्रमाको आनन्द ही नहीं ले पावेंगे तो समझो के कोई मुकाम तक पहुंचवेकेलिये अपन कोई साधनको सहारा ले लेंगे. पर जब वहां पहुंच गये तब कारकु अपन परिक्रमाको अङ्ग नहीं बनायेंगे. परिक्रमा तो अपन अपने पांवनूसुं करेंगे. क्योंके परिक्रमा करवेमें पैर अपनो अङ्ग है. अपनकु ये सोचनो चहिये के परिक्रमा करवेमें अपने पांवनूकु कारसु अधिक दरज्जा देनो है के नहीं; उपयोगी वस्तूनूकी तुलनामें अङ्गको दरज्जा ऊंचो होवे है के नहीं.

तो समझो के कोई वस्तुको उपयोगी होनो एक बात है और अङ्ग होनो अलग. भक्तिमार्गमें ज्ञान और वैराग्य उपयोगी वस्तु हैं. ये बात रूप गोस्वामीने बडी समझदारीकी बात कही है. ''नाङ्गत्वम् उचितं तयो:'' भक्तिमें उनकु अङ्ग मत बनाओ. आगे वो कहे हैं

सुकुमारस्वभावोऽयं यस्मात् तद्भक्तिरीरिता,
यदुभे चित्तकाठिन्य-हेतून् प्राय: सतां मते.

ज्ञान और वैराग्य चित्तकु कठिन बना देते होवे हैं. आदमी जितनो ज्ञानी होयगो उतनो ही वाको चित्त कठोर होयगो. जितनो आदमी विरक्त होयगो उतनो ही वाको चित्त कठोर हो जायगो. भक्ति तक पहुंचवेकेलिये उतनी कठोरता आवश्यक है. परन्तु बादमें वो कठोरता हानिकर भी हो सके है. करके ये कठोरता भक्तिको अङ्ग नहीं बननी चहिये, भक्तिमें उपयोगी बननी चहिये. ये बडी सूक्ष्म दृष्टि रूप गोस्वामीने दी है[३]. ज्ञान-वैराग्यके बारेमें ये दृष्टि अपनकु शत-प्रतिशत मान्य है ऐसे मत समझियो. अपनो या विषयमें उनके मतसुं विरोधी अभिप्राय तो नहीं है पर थोडो अलग मत जरूर है.

३. रूप गोस्वामी श्रीमहाप्रभुजीके मित्र हते. और अभी मैं जा 'भक्तिरसामृतसिन्धु' ग्रन्थकी बात आपकु बता रह्यो हूं वो उनने गोकुलमें बैठके लिख्यो है. या ग्रन्थमें वो श्रीमहाप्रभुजीको उल्लेख भी करे हैं के श्रीमहाप्रभुजी पुष्टिभक्ति और मर्यादाभक्तिमें कैसे प्रभेद स्वीकारे हैं वगैरह.

विद्याकी पर्वरूपा भक्ति और स्वतन्त्र भक्ति को प्रभेद :

अपनी कहन या विषयमें ऐसी है. भगवान्‌की विद्या और अविद्या ऐसे दोनों तरहकी शक्तियें हैं. पञ्चपर्वा विद्याके विषयमें श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं :

''वैराग्यं सांख्य-योगौ च तपो भक्तिश्च केशवे,
पञ्चपर्वेति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत्''

१. वैराग्य २. सांख्य ३. योग ४. तप और ५. भक्ति ये विद्याके पांच पर्व हैं. 'पर्व' माने ईख में थोडे-थोडे अन्तरपे जैसे गांठें आती होवे हैं वैसे समझो.

श्रीमहाप्रभुजी अविद्याके भी पांच पर्व समझावे हैं :

१.देहाध्यास
२.इन्द्रियाध्यास
३.अन्त:करणाध्यास
४.प्राणाध्यास और
५.स्वरूपविस्मृति.

देहाध्यास= देहकु आत्मा समझनो अथवा आत्माकु देहकी तरह समझनो.
इन्द्रियाध्यास= इन्द्रियकु आत्मा समझनो और आत्माकु इन्द्रियकी तरह समझनो.
अन्त:करणाध्यास= 'अन्त:करण' माने मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार. इन सबकु आत्मा समझनो और आत्माकु अन्त:करण समझनो.
प्राणाध्यास= प्राणकु आत्मा समझनो और आत्माकु प्राणकी तरह समझनो. प्राणके कारण आदमी 'प्राणी' कहवावे है. प्राणकु अपन अपनो बहुत बडो स्वरूप समझें हैं ये प्राणाध्यास है.

अंग्रेजीमें प्राणीकु एनिमल् कह्यो जाय है. यामें 'अनि' वो ही है के जो संस्कृतमें है. 'अनि'के आगे 'प्र' जोडें तो 'प्राणी' शब्द बन जाय. जो सांस लेवे है वो 'अनि'. याके कारण ही अंग्रेजीमें एनिमेट्‌ह्यइन्-एनिमेट् जैसे शब्दें भी हैं.

स्वरूपविस्मृति = अपने वस्तविक स्वरूपको स्मरण नहीं हो पानो, अपने स्वरूपकु पहचान नहीं *पानो.*

ह्यये अविद्याके पांच पर्व हैं.

अब ध्यानसु समझो के जैसे विद्याके पांच पर्वन्‌में 'भक्ति' एक पर्वके रूपमें आवे है ऐसे भक्तिके अन्तर्गत भी विद्याके पांच पर्व आ सके हैं. कैसे? यदि आप विद्याकु ईख मानके चलोगे तो वैराग्य सांख्य योग तप और भक्ति वाके पर्व (गांठ) जैसे बन जायेंगे. और जब आप भक्तिकु ईख मानके चलोगे तो वैराग्य सांख्य योग तप और ब्रह्मविद्या वाके पर्व जैसे बन जायेंगे. ब्रह्मविद्या भक्तिको पर्व हो जायगो. इन दो बातनके बीच अन्तर सूक्ष्म है. परन्तु ध्यान दोगे तो समझमें आ जायगो.

प्रसङ्गवश मैं याकु भक्तिके सन्दर्भमें आपकु बता रह्यो हू पर ये बात वैराग्य, सांख्य, योग, तप आदिके ऊपर भी लागू हो सके है. इनमेंसू एक-एककु ईख मानके चलो तो बाकीके सब वाके पर्व बन सके हैं. आप सोचते होगे के ये मैं कैसी ऊटपटांग बात कर रह्यो हू ईख कैसे पर्व बन जाय और पर्व कैसे ईख बन सके

बातकु ध्यानसु समझो. श्रीरामको कोई मन्दिर है. वामें हनुमानजी सीताजी लक्ष्मणजीकी मूर्तियें भी हो सके हैं. पर मन्दिर तो वो श्रीरामको ही कहवावेगो, हनुमानजीको मन्दिर नहीं कहवावेगो. परन्तु रामको मन्दिर जैसे होवे है ऐसे हनुमानजीको भी मन्दिर होवे ही है. वहां हनुमानजी पर्व नहीं हो के ईखके जैसे होवे हैं. समझमें आयो? ऐसे ही शिवजीके मन्दिरमें गणपतिजी, कार्तिकेय स्वामी, पार्वतीजी भी होवे हैं. पर शिवजीके मन्दिरमें ये सब पर्व जैसे होवे हैं. मुख्यता शिवजीकी होवे है. ऐसे ही जा शिवालयमें शिवलिङ्ग होवे है वहां लिङ्गकी स्थापना जापे करी जाय है वाकु

पार्वती स्वरूप मान्यो जाय है. वहां भी पार्वतीजी तो होवे हैं पर मन्दिर तो वहां भी शिवजीको ही कह्यो जाय है. पर यदि कोई मन्दिर पार्वतीजीको अथवा गणपतिजीको होवे तो वामें मुख्यता पार्वतीजी और गणपतिजीकी ही होवे है, शिवजी आदि वहां पर्वके जैसे समझे जायेंगे.

या ही लिये अपने यहां ये बात कही गई है के ठाकुजीके सङ्ग श्रीस्वामिनीजी बिराजते होवें तो श्रीस्वामिनीजीकी सेवा अन्याश्रय नहीं कहवावे है. पर यदि कोई पुष्टिमार्गी श्रीस्वामिनीजीकी सेवा स्वतन्त्र रूपसु करवे लग जाय तो वो अन्याश्रय कहवावे है.

प्रसङ्ग छिड्यो है तो एक बात समझ लो के देवी वैसे शिवकी शक्ति होवे है. यासुं कोई शिवभक्त जब शिवजीकी उपासना करे है तब शिवजीके अङ्गतया देवीकी भी उपासना करे ही है. पर यदि कोई भक्त शिवजीके अङ्गतया देवीकी उपासना करवेके ठिकाने देवीकी स्वतन्त्र उपासना करवे लग जाय है तब फिर वो 'शैव' नहीं कहवाके 'शाक्त' कहवावे है. ऐसे ही जहां गणपतिकी पूजा शिवजीके अङ्गदेवतया करी जावे है तब भी पूजकको 'शैव' ही मान्यो जायगो. पर जब गणपतिकी उपासना शिवजीसु स्वतन्त्र करी जाय है तब फिर वो पूजन प्रणाली शैव नहीं रहके 'गाणपत्य' बन जाय है. ऐसे ही स्कन्द (कार्त्तिकेय) कु जब स्वतन्त्रतया पूज्यो जाय हैह्न जैसे केरल-तामिलनाडु आदि दक्षिण प्रदेशमें स्कन्दपूजनको बहुत बडो सम्प्रदाय है ह्नतब फिर वो पूजा 'शैव' परम्पराकी नहीं रहके 'स्कान्द' ही कहवावे है. तो इन सबके आधारपे आप समझो के इख और पर्वके बीच बडो लचीलो भेद है. कोई एक दृष्टिसु एक चीज पर्व बन जाय है और कोई दूसरी दृष्टिसु इख बन जाय है.

पुष्टिभक्ति स्वतन्त्र भक्ति है :

या ही लिये श्रीमहाप्रभुजी अपनकु समझावे हैं के ब्रह्मविद्याकी दृष्टिसु सोचो तो भक्ति विद्याको एक अङ्ग बन सके है. वा भक्तिसु अपनो

कोई झघडा नहीं है. सिद्धान्ततया अपन भक्तिको वैसो रोल भी स्वीकारे हैं. पर अपने यहांकी प्रभुसेवामें ब्रह्मविद्याकी पर्वरूपा भक्तिको विनियोग स्वीकार्यो नहीं गयो है ये बात साफ-साफ समझो. प्रभुसेवामें जा भक्तिको विनियोग है वो भक्ति वो है के जामें दूसरी सब बातें वाके पर्व बनती होवें, भक्ति कोइको पर्व नहीं होवे. ऐसी स्वतन्त्र भक्तिको सेवामें विनियोग है. करके 'चतु:श्लोकी' ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभुजीने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थनूकु भक्तिके अङ्गतया बताये हैं.

''**स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्य: क्वापि कदाचन**'' में धर्मकु भक्तिके अङ्गतया बतायो है.

''**प्रभु: सर्वसमर्थो हि**'' कहके अर्थकु भक्तिके अङ्गतया बतायो है.

''**यदि श्रीगोकुलाधीशो धृत: सर्वात्मना हृदि, तत: किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि**'' में कामकु भक्तिको अङ्ग कह्यो है. और

''**स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यम् इति मे मति:**'' कहके मोक्षकु भक्तिको अङ्ग बना दियो है.

ऐसे धर्मार्थकाम-मोक्ष सब भक्तिके अङ्ग हैं, भक्ति कोईको अङ्ग नहीं है ये अपनो सिद्धान्त है. ये कथा सेवामें वापरी जाने वाली भक्तिकी है.

भक्तिकु अपन दो तरहसु समझ सके हैं. एक तो ऐसी भक्ति के जो स्वामीकेलिये होवे और एक ऐसी भक्ति के जो सेवककेलिये होवे. जैसे श्रीमन्तके परिसरमें वाकु खुदकु रहवेको बंगला होवे और वाके नौकर-चाकरके रहवेके क्वार्टर्स् भी होवे हैं. ऐसे ही अपने सेव्य प्रभुकी सेवाकेलिये जो भक्ति है वो ऐसी है के जामें दूसरी सब बातें वाके पर्वतया होवे हैं. और सेवककेलिये जो भक्ति होवे है वामें भक्ति भी विद्याको एक पर्व बन सके है. ऐसी भक्ति सेवककेलिये है, स्वामीकेलिये नहीं है : ''**पञ्चपर्वेति**

विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत्''. या प्रभेदकु जब अपन समझ लेंगे तब रूप गोस्वामीके विधाननकु सुनके कोई मतभेद नहीं लगेगो. और न उन वचननकु सुनके अपने मनमें ऐसो विचार आयगो के इतनी अच्छी बात जब वो कह रहे हैं तो वो अपनकु भी स्वीकार्य होनी चहिये.

भगवत्सेवार्थ अपेक्षित योग्यता :

एक बात समझो के भक्तिको स्वभाव सुकुमार है ये सच बात है पर जीवकु जब भक्ति करनी है तब वामें यदि कोई कठिनाई नहीं आवे तो जीव अच्छो सेवक ही नहीं बन पायगो. करके श्रीमहाप्रभुजीने 'सुबोधिनी'में या बातको खुलासा कियो है के

''शुद्धाश्च सुखिनश्चैव ब्रह्मविद्याविशारदा:,
भगवत्सेवने योग्या नान्ये ...''.

जो शुद्ध, सुखी और ब्रह्मविद्याविशारद हैं वो भगवत्सेवा करवेकेलिये योग्य हैं. ये सेवककी न्यूनतम योग्यता है. जैसे जाकु कर्मचारीकी आवश्यकता होवे वो अखबारमें छपावे के हमकु न्यूनतम इतनी योग्यता रखवेवालेकी या कामकेलिये आवश्यकता है. ऐसे श्रीमहाप्रभुजीने भगवत्सेवा करवेवालेकी न्यूनतम योग्यता सुबोधिनीमें बता दी है. योग्य तो वैसे जीव ही होवे हैं. अब मालिक कोई अयोग्यकु भी अपने काममें ले लेवे वो वाकी इच्छाकी बात है. ऐसे न्यूनतम योग्यता भगवत्सेवककी तो ये ही हैं पर ऐसी योग्यता जाकी नहीं है वाके द्वारा की जाती सेवाकु प्रभु स्वीकार नहीं सकें ऐसी सीमा प्रभुकी नहीं हैं. वो सीमा जीवकी है.

अयोग्यकी सेवा भी प्रभु स्वीकार सके हैं वाको आश्वासन प्रभुने श्रीमहाप्रभुजीकु ''श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि'' में दियो ही है:

''ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयो:
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषा: पञ्चविधा: स्मृता:
सहजा: देशकालोत्था: लोक-वेद-निरूपिता:
संयोगजा: स्पर्शजाश्च न मन्तव्या: कथञ्चन

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्ति: कथञ्चन''

प्रभु अयोग्यकी भी सेवा स्वीकार सके हैं :

भगवत्सेवा करवेकी योग्यता कैसी होवे है ये यदि पूछोगे तब तो **''शुद्धाश्च सुखिनश्चैव ब्रह्मविद्याविशारदा: भगवत्सेवने योग्या:''** ये ही बात है. पर प्रभुकी कृपाकी दृष्टिसु सोचें तो शुद्ध नहीं भी होय अशुद्ध होवे, सुखी नहीं भी होय दु:खी होवे, ब्रह्मविद्याविशारद नहीं भी होय परे जैसो होवे तब भी भगवत्सेवा करवे योग्य हो सके है. ऐसेके दोषन्को विचार प्रभु नहीं करेंगे जहां तक भगवत्सेवाको प्रश्न है.

कई लोग यों समझें हैं के ब्रह्मसम्बन्ध होयवेसुं सब दोष निवृत्त हो जाय हैं तो ऐसी बात नहीं है. दोष निवृत्त नहीं होवे हैं, दोष तो सब कायम ही रहे हैं या तथ्यकु समझ जाओ. ब्रह्मसम्बन्धसु इतनो ही होवे है के अपने दोष प्रभुकी सेवा करवेमें आडे नहीं आवे हैं. अपने जीवन व्यवहारमें तो वो दोष आडे आवे ही हैं. और यदि दोष ज्यादा बढ जायें तो वो अपनकु हानिकर भी हो ही सके हैं. पर यदि सच्चे मनसु अपनने आत्मनिवेदन कियो है तो अपन जैसे भी हैं अपनी सेवाकु प्रभु स्वीकारेंगे. सदोषकी भी सेवा निर्दोष स्वीकारेगो या अर्थमें प्रभुने श्रीमहाप्रभुजीकु वचन दियो है. जैसे जमीनपे खडे होके कोई बिजलीके तारकु छुए तो वाकु झटका लगेगो और वो मरेगो. पर लकडापे खडे होके छुए तो, तारमें करंट नहीं है ऐसी बात नहीं है, करंटके होवेपे भी वाको झटका नहीं लगेगो. क्योंके लकडा बिजलीकेलिये गुड कंडक्टर् नहीं है, बेड कंडक्टर् है. पक्षिएं बिजलीके तारपे बैठ जाते होय हैं. उनकु कहां झटका लगे है? तो बात समझो के भगवत्सेवा करवेकी योग्यतो तो ''शुद्धाश्च सुखिनश्चैव ब्रह्मविद्याविशारदा:'' ही है पर प्रभु अयोग्यकी भी सेवाकु स्वीकारनेमें समर्थ हैं.

जो प्रभु अपनी अयोग्यताकी भी उपेक्षा करके अपने द्वारा की जाती सेवाकु स्वीकारवे तैयार हैं उनकी भक्तिकु भी यदि अपन (विद्याकी)

पर्वात्मिका बनायेंगे तब तो बडी भारी गडबड हो जायगी. क्योंके प्रभु तो जीवकी अविद्याके सारे पर्वन्कु माफ करके वाकी सेवा स्वीकारवे तैयार हैं और अपन यों कह रहे हैं के हम तो आपकी भक्ति पर्वात्मिका ही करेंगे. तब तो अपनने प्रभुके साथ कृतघ्नता करी. करके अपने यहां पुष्टिप्रभुकी सेवामें वा तरहकी पर्वात्मिका भक्तिको विनियोग नहीं है. पर एक बात भूलनी नहीं चहिये के अपने आपकु सुधारवेमें वा पर्वात्मिका भक्तिको उपयोग तो अवश्य है. क्योंके श्रीमहाप्रभुजी स्वयं आज्ञा करे हैं **''शुद्धाश्च सुखिनश्चैव ब्रह्मविद्याविशारदाः भगवत्सेवने योग्याः''** या रहस्यपे ध्यान दो. ये बात लोगनकु अक्सर बताई नहीं जाय है, छुपाके रखी जाय है. लोग जाने नहीं हैं यालिये नहीं कहे हैं अथवा बतानो नहीं चाहे हैं या लिये नहीं कहे हैं ये मोकु पता नहीं है. पर याकु समझनो आवश्यक है.

तो बात समझो के अपने यहां सेवककेलिये भक्ति एक प्रकारकी है, सर्वन्ट क्वार्टर्के जैसी, और स्वामीकेलिये कुछ ओर प्रकारकी है. दोनों तरहकी भक्ति अपने यहां है. भक्तिको भवन एक है परन्तु वाके पार्ट अलग-अलग हैं.

या सारे निरूपणसु मैं आपकु जो बात समझानो चाह रह्यो हतो अब वाकु आप समझवेको प्रयास करो के प्रभुसेवा करते बखत ऋतून्को आनन्द जब अपन प्रभुके सङ्ग लेवे हैं तो वो सर्वन्ट क्वार्टर् जैसी बात है. ये ऐसी बात है के जा महलमें राजा रह रह्यो है वाही महलमें हम भी रह रहे हैं. पर फिरसु याद रखो के अपन रह वहां रहे हैं के जहां राजाके नौकरें रहे हैं, राजाके रहवेको भाग तो अलग है. तो जा ऋतुको आनन्द प्रभु ले रहे हैं वाही ऋतुको आनन्द अपन भी ले रहे हैं. ये अपनी सेवकाना अदा है :

''सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्ध्यति,
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः''.

और जा ऋतुके जो भी कुछ सुख हैं उन सुखन्कु सेवाके द्वारा प्रभु

तक पहुंचाने हैं ऐसो सेवाको एप्रोच प्रभुके भोग्यस्वरूपके विचारसु भर्यो भयो एप्रोच है. ये भोग्यभावको एप्रोच है. और पहलेवालो सेवकतया भोक्तृभावको एप्रोच है. ऐसे, सेवाके क्रममें अपन भोग्य भी हैं और भोक्ता भी हैं. प्रभुकेलिये अपन जो सामग्री तैयार कर रहे हैं उनकु प्रभुकु भोग धरके पीछे अपन भी वाकु प्रसादतया लेंगे. ये अपनो सेवकाना (सेवकोचित/सेवक स्वरूपके विचारसुं) भोग है. और प्रभुकेलिये सामग्री सिद्ध कर रहे हैं ये प्रभुके प्रति अपनो सेवकोचित भोग्यभाव है.

या तरहसुं सेवकतया भोक्तृभाव और सेवकोचित भोग्यभाव इन दो बातन्कु ऋतुक्रमकी सेवामें सबसु पहले ध्यानमें रखनी चहिये.

पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवाके अन्तर्गत ऋतुक्रमके अनुसार की जाती प्रभुसेवाके सम्बन्धमें अपनने कल थोडी चर्चा करी हती. थोडो सिंहावलोकन करके नये विषयपे आगे बढेंगे.

श्रीगोपीनाथजीके कालमें ऋत्वादि क्रमानुसार सेवाप्रकार :

कल जो मुख्य बात मैने आपकु समझावेको प्रयतक्न कियो हतो वो बात ये हती के सेवाके नित्यक्रमकी रूपरेखा तो श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगोपीनाथजी ने समझाई ही हती जाकु अपनने 'साधनदीपिका' ग्रन्थके आधारपे समझ्यो हतो. पर ऋतुक्रमकी सेवाके विषयमें आज अपनकु जो विस्तृत प्रकार प्राप्त होवे है वाके पीछे बहुत कुछ श्रीगुसांईजीको हाथ रह्यो है. याको अर्थ, परन्तु, ऐसो नहीं है के श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगोपीनाथजी के बखत ऋतुक्रमके अनुसार ठाकुरजीकी सेवा नहीं होती होयगी. मैं आपकु कितनेक वचन श्रीगोपीनाथजीकी साधनदीपिकाके सुनाऊंगो तो आपकु ये बात स्पष्ट हो जायगी.

वस्त्रैश्च भूषणैर्गन्धैः नैवेद्यैर्व्यञ्जनैः शुभैः।
देश–काल–विभूतीनाम् अनुसारेण सेवनम्।।

अर्थात् वस्त्र, आभूषण, गन्ध, नैवेद्य और व्यञ्जनन् सु देश और काल के अनुसार और उत्सवके अनुसार प्रभुकी सेवा करनी चहिये.

या वचनके द्वारा 'साधनदीपिका' आपनकु वा बातको सङ्केत तो दे ही रही है के श्रीमहाप्रभुजीके बखत भी देश–कालानुसार सेवाको प्रकार तो हतो ही. आगे भी श्रीगोपीनाथजी आज्ञा करे हैं :

शृङ्गारैः रञ्जितैः वस्त्रैः चित्रैराभरणैरपि।
मायूरमुकुटैः रम्यैः वैणुवेत्रैः सुमाल्यकैः।।
वितानैः प्रसरैः शुभ्रैः प्रतिसारैः नवैः नवैः।
जल–क्रीडोपस्करैश्च ताम्बूलामोददर्पणैः।।
व्यजनैः जलभृङ्गारैः देशकालानुसारिभिः।

यहां भी श्रीगोपीनाथजी देश और काल के अनुसार सेवा करवेकी आज्ञा कर रहे हैं. श्रीगोपीनाथजीने या बातकु साधनदीपिकामें दो बखत कही है.

ग्रन्थके आरम्भमें श्रीगोपीनाथजीने या बातको खुलासा कियो है के मैं या ग्रन्थमें जो भी बात बता रह्यो हूं वो सब श्रीमहाप्रभुजीकी बताई भई सेवाको ही प्रकार है :

भक्तिमार्गवितानाय योऽवतीर्णो हुताशनः।
सएव नः परं मानं शेषमस्य प्रमान्तरम्।।
वेदत्रयिशिरोभाग–सूत्रव्याख्यानसम्मताम्।
भक्तिशास्त्रानुसारेण कुर्वे साधनदीपिकाम्।।

भक्तिमार्गके विस्तारकेलिये जो श्रीमहाप्रभुजी प्रकट भये वो ही या ग्रन्थमें लिखी भई बातन्में प्रमाण हैं. अर्थात् उनने जैसे समझायो है वैसे मैं साधनदीपिका लिख रह्यो हूं ऐसे श्रीगोपीनाथजी आज्ञा करे हैं.

श्रीमहाप्रभुजीके कालमें ऋतु आदि क्रमानुसार सेवाको प्रकार :

उपरोक्त और पूर्वोदाहृत श्रीगोपीनाथजीके वचननकु जोडके सोचवेसु ये बात स्पष्ट होवे है के श्रीमहाप्रभुजीके बखत भी देश–कालके अनुसार भगवत्सेवाको प्रकार हतो ही. कौनसे तरहको वो प्रकार हतो वाकी दो सम्भावनायें हो सके हैं.

१. एक तो ये के जो भक्त जा देशमें और जा कालमें भगवत्सेवा करतो हतो वाके ऊपर श्रीमहाप्रभुजीने या बातकु छोडदी हती के तुम जा देशमें और जा कालमें रह रहे हो वाके अनुसार तुम जो कछु उत्तम प्रकारसु कर सको वैसे प्रभुके सुखको विचार करके सेवा करो. या स्थितिमें श्रीमहाप्रभुजीने कोई एक जनरल् गाईड्लाईन् सेवाकर्ताकु अवश्य दी होयगी. ये सहज सम्भव है के आपने उन सब प्रकारको विवरण नहीं कियो होवे. ये एक सम्भावना है.

२. दूसरी सम्भावना ऐसी भी हो सके है के ... वैसे तो श्रीमहाप्रभुजी कोई वैष्णवके माथे ठाकुरजी पधरा देते वाके पीछे वा वैष्णवके और वाके ठाकुरजीके बीच पडते नहीं हते. पर वैष्णव ठाकुरजीकी सेवा भलीभांती करे, ठाकुरजीकु परिश्रम नहीं देवे उन बातन्की सावधानी तो आप निरन्तर रखते ही हते. वैष्णवन्के घर जा–जाके, वो लोग जो सेवा करते वाके दर्शन कर–करके भी इन बातकी सावधानी रखते ही हते. ये बात वार्ता पढवेसु स्पष्ट होवे है. कोई बखत श्रीमहाप्रभुजीने कोईकु टोक्यो है, कोई बखत टोकवेके बाद स्वयंने स्वीकार्यो भी है के भई तुम जो कर रहे हते वो ठीक हतो. क्योंके टोक्यो अपनी जनरल् गाईड्लाईन् के तहत हतो. पर जब वा वैष्णवने श्रीमहाप्रभुजीकु अपनी बात समझाई तो आपकु लग्यो के वा

तरहसु भी कोई बात हो सके है. यापेसु अपन सोच सके हैं के श्रीमहाप्रभुजी ऋतु आदि क्रमानुसार सेवा करवेके कछुक नियम भी वैष्णवन्कु समझाते होयेंगे और कछु छूट-छाट भी देते ही होयेंगे.

श्रीमहाप्रभुजीकी ऐसी शैलीकु सोचते भये आपने ऋतु आदिके सेवाक्रमकु कोई नियममें बांध्यो होयगो ये तो कह पानो थोडो मुश्किल लगे है. यासु ही श्रीगोपीनाथजीने भी साधनदीपिकामें ऋतुक्रमानुसार सेवा करवेकी एक जनरल् गाईड्लाईन् ही दी है. पर कालान्तरमें श्रीगुसांईजीने वा प्रकारकु निश्चित ही प्रवृद्ध कियो है. सेवाके वा प्रकारकी हर छोटीसु छोटी डीटेईल्कु श्रीगुसांईजीने वर्काउट् करी है. ये एक बात मैने कल समझाई हती.

पुष्टिभक्तिकी परतें :

जैसे नारियलके एकदम भीतर पानी होवे है. वाके ऊपर खोपरा होवे है. वाके ऊपर फिर एक कठोर परत होवे है. वाके ऊपर फिर एक परत होवे. फल तो एक ही है परन्तु परत दर-परत वाको स्वरूप अलग होवे है. ऐसे ही भक्तिकी भी कई परतें हैं :

१. भक्तिको अन्तर्निगूढतम स्वरूप आत्मरतिको है जो नारियलके जलके जैसो है. वाकु अपन 'निरुपधिभाव' भी कह सके हैं.

२. आत्मरति या निरुपधिभाव के ऊपर, नारियलमें जैसे जलके उपर खोपराको आवरण होवे है वैसे ही, माहात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेहको एक आवरण होवे है.

३. माहात्म्यज्ञान सहित सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेहके आवरणके ऊपर एक और आवरण व्रजभक्तन्के भावन्की भावनासु करी जाती तनु-वित्तके विनियोगात्मिका सेवाको है.

४. या आवरणके ऊपर एक ओर आवरण शास्त्रमें बताई गई नवधाभक्तिको है.

५. नवधाभक्तिके आवरणके ऊपर एक ओर आवरण है : वैदिक-वर्णाश्रमधर्ममें बताये गये शुद्धि-अशुद्धिके विधि-निषेधको पालन करते भये भक्ति करनो.

६. वाके भी ऊपर सबसु बाहरी आवरण है : भोग-राग-शृङ्गारको प्रभुकु विनियोग करनो.

भोग-राग-शृङ्गार भक्तिको बाह्यतम आवरण :

भोग-राग-शृङ्गार सेवा-भक्तिको बाह्यतम आवरण क्यों है? कारण स्पष्ट है के भोग-राग-शृङ्गारके भगवत्सेवामें विनियोगको कोई निश्चित सिद्धान्त बनायो नहीं जा सके है. या ही लिये श्रीगोपीनाथजीने **''देश-काल-विभूतीनाम् अनुसारेण सेवनम्''** यों कह्यो है. जाकु जा देश-कालमें जा तरहके भोग-राग-शृङ्गार सुलभ होयेंगे वाहीको तो वो प्रभुसेवामें विनियोग कर पायेगो और यदि या बारेके नियम बना दिये जायेंगे तो क्या होयगो? यदि कोई व्यक्तिकु नियमानुसार भोग-राग उपलब्ध नहीं भये अथवा नियममें कहे गये भोगरागादिसुं ऊत्तम भोग-रागादिको विनियोग करवेकी वाकी सामर्थ्य है तो उन नियमन्के कारण वाको भाव खण्डित हो जायेगो. जैसे दक्षिण भारतमें देवालयन्में अभिषेक होवे तो ५००-१००० नारियलको अभिषेक वहां बहुत सामान्य मान्यो जाय है. अब अभिषेकके बारेमें पूरे भारतकेलिये कोई १००० नारियलको नियम बना देवे तो अपने यहां राजस्थानमें आदमी १००० नारियल लायगो कहांसु? तो जो वस्तु जा देश-कालमें सुलभ नहीं होवे वाकु यदि अपन भक्तिमें आवश्यक बना देंगे तो वाको सीधो अर्थ ये होयगो के तब फिर भक्ति केवल वा ही देश-कालकेलिये है, सब देश-कालकेलिये नहीं है. यापेसु समझ्यो जा सके है के अपन यदि ऐसो नियम बना दें के भोगमें ठाकुरजीकु मठडी तो आनी ही

चहिये या मोहनथाल तो आनो ही चहिये. तब जाकु ये सब बनानो ही नहीं आतो होवे अथवा जाकी सामर्थ्य ऐसी सामग्री अरोगावेकी नहीं होवे वो क्या केवल इन कारणन्सु ठाकुरजीकी सेवा नहीं करे सके यदि ऐसी बात होती तो वार्तामें आवे है के कोई वैष्णव केवल रोटी ही भोग धरतो हतो, कोई कभी केवल खीर भोग धर देतो, कोई केवल भीगे चना भोग धर देतो. एक वार्तामें तो ऐसो भी आवे है के कोई वैष्णवके पास एक दिन भोग धरवेकेलिये कछु भी नहीं हतो तो वाने केवल जलकी लोटी ही भोग धरी. तो जाके पास जो सुविधा है वोही तो वो भोग धरेगो या ही लिये श्रीगोपीनाथजीने कह्यो है के **''देश-काल-विभूतीनाम् अनुसारेण सेवनम्''**. और श्रीमहाप्रभुजीने भी जो कछु जा देश-कालमें उपलब्ध है वाको ही विनियोग सेवामें करनो ऐसी जनरल् गाईड्लाईन् निबन्धमें दी है :

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ।
येन स्यान् निर्वृतिश्चित्ते तत् कृष्णे साधयेद् ध्रुवम् ।।

ठाकुरजीकी सेवामें जा वस्तुको विनियोग करनो है वामें दूसरे कोईको हिस्सा-दावा नहीं होवे. जा वस्तुकु हांसिल करवेमें अपनकु कोई क्लेश-छल-कपट नहीं करनो पडतो होवे और जो वस्तु श्रेष्ठ होवे उन वस्तून्सु भगवत्सेवा करनी चहिये.

भगवत्सेवामें समर्पित करवेकी वस्तून्के बारेमें यदि कोई एक सिद्धान्त घड दियो जाय के भगवत्सेवा तो इन-इन वस्तून्सु ही होयगी अन्यथा सेवा नहीं होयगी तब सेवाको स्वरूप तो कठोर बनेगो ही साथ-साथ अपने प्रभुको भी स्वरूप आनन्दात्मक नहीं रह जायगो. तो समझो के सेवामें वस्तु अनिवार्य नहीं है. सेवकके पास जो वस्तु उपलब्ध है वासु ही तो सेवा होनी है यालिये ये सहज सम्भव है के श्रीमहाप्रभुजीने राग-भोग-ऋङ्गारके बारेमें कोई रीति नहीं बनाई होयगी.

यहां ऐसी शङ्का हो सके है के तब फिर श्रीगुसांईजीने राग-भोग-शृङ्गारके सेवामें विनियोगके बारेमें रीति क्यों बनाई? तो समझो के

श्रीगुसांईजीने भोग-राग-शृङ्गारकी रीति या लिये नहीं बनाई के वा रीतिके कारण अपन अपनी नवधाभक्तिको सिद्धान्त खण्डित कर दें, अपने तनुवित्तजा सेवाके सिद्धान्तकु खण्डित कर दें, माहात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह के अपने सिद्धान्तकु खण्डित कर दें, आत्मरीतिके अपने केन्द्रिय भावकु खण्डित कर दें. पर आप जानो हो के नारियलमें जल तब तक अच्छो रहे है के जब तक वाके ऊपरको आवरण सुरक्षित होवे. ऊपरको आवरण तोडते ही जल सडनो शुरु हो जावे है. ऐसे ही अपने अस्थिपंजर, नाडीयें आदिकु संभालके रखवेकी अपनी चमडीकी बहुत बडी उपयोगिता होवे है. कितने सारे रोगाणु अपनी चमडीके कारण अपने अंदर घुस नहीं पावे हैं. तो आवरणकी भी कोई उपयोगिता होवे ही है. या तरहकी उपयोगिताकेलिये अंग्रेजीमें एक बडो अच्छो मुहावरा है : स्किन्डिप युटिलिटि. चमडीकी गहराईके जितनी उपयोगिता. यद्यपि चमडी बहुत पतली होवे है परन्तु यदि उतनी भी उपयोगिता कोई चीजकी होवे तो प्रभुकी सेवामें वाको उपयोग क्यों नहीं करनो ऐसे बहुत भावात्मक आशयसु प्रभुचरणन्ने राग-भोग-शृङ्गारको सेवाकेलिये विस्तार कियो है. ये विस्तार न सेवाकु दुरुह बनानेकेलिये कियो है और न सेवाको खण्डन करवेकेलिये कियो है.

राग-भोग-शृंगार मर्यादामार्ग और पुष्टिमार्गमें :

उर्दुके एक शायर अकबराबादीने बडो अच्छो शेर कह्यो है

''जिस जगहसे ले चला था राहबर,
हम वहीं आये हैं फिर लौटकर''.

अपने पुष्टिमार्गकी भी स्थिति आज ऐसी ही हो गयी है. क्यों? क्योंके मर्यादामार्गमें भी भगवान्की आराधनामें सामान्यतया कुछ देश-काल-विभूतीन्को परिग्रह हतो ही. पर तत्सुखके विचारकी जो बारीकी अपने यहां सोची गयी हती वैसी बारीकी मर्यादामार्गीय पूजा प्रणालीमें रखी नहीं गयी है. जैसे अपन बद्रिनाथजीके सुबहमें दर्शन करें तो भयंकर ठंडी पडती होवे, अपनो शरीर कांपतो होवे और सामने दर्शन करें तो बर्फीले ठंडे जलसु बद्रिनाथजी

स्नान करते होवें. प्रभुके सामर्थ्य और स्वरूपको विचार करें तो वामें कोई विशेष बात नहीं है. पर अपन जब ऐसे ठंडे जलसु प्रभुकु स्नान करावें तो वामें पूजनको भाव तो अपनेमें है पर तत्सुखको विचार नहीं है.

मैं एक बार श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करवे गयो. वहां तो दर्शन शृङ्गार हो जावेके पीछे ही खुलते होवे हैं. मेरे मनमें शृङ्गार धरवेसु पहले श्रीजगन्नाथरायजीके स्वरूपको दर्शन करवेकी तीव्र इच्छा भई. मैं प्रात: जल्दी स्नान करके मन्दिरमें गयो. मोकु दर्शन करके बडो आश्चर्य भयो के श्रीजगन्नाथरायजीके पूरे श्रीअङ्गके ऊपर कोंक्रोच् (तिलचट्टा) फिर रहे हते. मेरे मनमें बडी ग्लानी भई. ठाकुरजी तो जगन्नाथ हैं तो कोंक्रोचन्के भी नाथ हैं. जगन्नाथकु कोई समस्या नहीं है. पर पुजारी वहां खडे भये हैं, पूजाकेलिये खडे भये हैं फिर भी श्रीठाकुरजीके श्रीअङ्गपेसु कोंक्रोच्कु हटावेके स्थानपे एक हाथसु ठाकुरजीको हाथ पकडके दूसरे हाथसु लोगन्सु पैसा मांग रहे हते. मेरे मनमें बडी ग्लानी भयी. मैने मनमें कही के ऐसो व्यवहार आप ही सहन कर सको हो बाकी साधारण मनुष्यके बसकी तो ये बात हो ही नहीं सके है. सारी दुनिया जाके दर्शनकु आ रही है वाकी पूजा करवेवाले श्रीजगन्नाथरायजीकु इतनो परिश्रम क्यों देते होयेंगे.

राग–भोग–शृङ्गारको विकृत रूप :

ऐसी दुर्दशा केवल मर्यादामार्गमें ही है ऐसी बात नहीं है अपने यहां भी आज ऐसी ही दुर्दशा है. छप्पनभोगके दर्शन जब खुलते होवे हैं तब चका–चौंध करवेकेलिये बडी–बडी फ्लड् लाईट लगायीं जाय हैं. उनकी गरमी इतनी तेज होवे है के मोमसु धरे भये ठाकुरजीके शृङ्गार मोमके पिघल जानेसु वडे हो जाते होवे हैं.

भोग अरोग लेवेके पीछे आठ–आठ घंटा तक दर्शन खुले रहते होवे हैं. जा थालीकु तुमने जीम लियो होवे वाके आगे तुम एक घंटा तो बैठके बताओ ठाकुरजीकु अपन जबरदस्ती आठ–आठ घंटा तक बैठाके रख्यो

जाय है. ऐसे क्रूर मनोरथन्के दर्शन करवे अपन बेवकूफकी तरह दौड–दौडके जाते होवे हैं, भीड बढाते होवे हैं. बिचारे ठाकुरजी अरोगी भई थालीपे दीन–हीन भावसु बिराजे रहें. बताओ, यहां तत्सुखको विचार कहां है? सोचो के तब फिर मर्यादामार्ग और पुष्टिमार्ग के बीच अन्तर क्या रह्यो? और सेवाके नामपे यदि ऐसी ही बातें करनी हती तो व्यर्थमें मर्यादाकु तोडके पुष्टिमार्गको प्रवर्तन करवेकी आवश्यकता ही क्या हती? मर्यादामार्गमें कमसु कम एक प्लस् पोईन्ट ये तो हतो के जो भी कछु कियो जातो हतो वो शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार कियो जातो हतो शास्त्र भगवान्की आज्ञा है, भगवान्ने जैसे पूजन करवेकी आज्ञा करी वा तरहसु भगवान्को पूजन कर रहे हैं. भगवान्ने कह दी के ठंडीमें भी मोकु ठंडे जलसु स्नान कराओ तब अपन भगवान्कु कहवेवाले कौन होवें के नहीं, हम आपकु ठंडे जलसु नहीं गरम जलसु स्नान करायेंगे. गुजरातीमें एक कहावत है ‘ ‘राजाने गमी ते राणी’’. राजकु जो अच्छी लग गई वो ही रानी कहावेगी. राजाकु कहवेवाले अपन कौन होवें के कौन अच्छी और कौन बुरी ऐसे ही ठाकुरजीकु अपनी पूजा करावेकेलिये जो विधि अच्छी लगी वो विधि अच्छी. ठाकुरजीकु अच्छो–बुरो समझावेवाले अपन कौन होवें हैं

आप पूछोगे के तब फिर श्रीमहाप्रभुजीने ठाकुरजीकी शास्त्र आज्ञावाली आराधना प्रणालीके स्थानपे पुष्टिभक्तिमार्गीय सेवाप्रणालीको उपदेश क्यों कियो? या बातकु समझो.

श्रीमहाप्रभुजीने भगवान्के वा वचनन्पे ध्यान दियो है के जामें आप आज्ञा करे हैं :

‘ ‘ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्’’;
‘ ‘त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्ते श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुसां
यद्यद्धिया त उरुगाय विभायन्ति
तत्–तद्वपु: प्रणयसे सदनुग्रहाय.

याही बातकु अपन यों कहे हैं *''जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी''.*

ये बात तो क्योंके अपने सम्प्रदायकी भावनासु कही भयी नहीं है यासु यामें ''देखी तैसी'' ऐसे कह्यो है. अपने सम्प्रदायकी भावनाके अनुसार या बातकु कहनी होवे तो अपन या तरहसु कह सकें के *''जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत तिन घड दी तैसी''*. अपनी पुष्टिमार्गीय भावना ऐसे सोचेगी के प्रभुको सामर्थ्य होयगो चाहे जैसे कष्टनुकु सहन कर सकवेको. पर मेरे रामकु यदि बेर अरोगाने हैं तो मीठे बेर ही अरोगाने हैं. चाहे उन बेरन्कु मोकु चखनो क्यों नहीं पडे, जूठन ही क्यों नहीं करनो पडे. और अपन जाने हैं के मर्यादा पुरुषोत्तम रूपकु धरके प्रकट भये होयवेपे भी ऐसी भावनावालेके सामने प्रभु भी अपनो पुष्टि पुरुषोत्तम रूप प्रकट करे ही हैं.

व्रज भक्तन्के मनमें मनमें ऐसी भावना हती के मेरो श्याम, मेरो कृष्ण नटखट है और वाके नटखटपनेकु मैं निरखुं. तो वे लोग प्रभुके वा रूपको दर्शन करवेकेलिये जान करके माखनकु ऐसी तरह छुपाते के प्रभु वा माखनकु चोरें. और जब प्रभु उनके माखनकु चोरके अरोगते तब प्रभुके मुखारविन्दके उन नटखट भावनके दर्शन करके व्रजभक्त प्रसन्न हो जाते. सोचो, क्या ठाकुरजीके घरमें दूध-दही-माखनकी कोई कमी हती के उनकु चोरवेकेलिये ठाकुरजीकु कोई दूसरेके घरमें जानो पडे ऐसी बात तो हती नहीं. पर क्योंके भक्तन्के ऐसे भाव हते के प्रभुको नटखटपनो देखें वा लिये प्रभुने उनके भावके अनुसार नटखटपनो करके दिखायो. रसखानजीने भी गायो है :

शेष-महेश-दिनेश-गणेश-सुरेश हु जाहि निरन्तर गावें,
जाहि अनादि-अनन्त-अखण्ड-अभेद-अछेद सुवेद बतावें,
नारदसे शुक-व्यास रटें पचि हारे तोऊ पार न पावें,
ताहि अहीरकी छोहरियां छीछ्या भर छाछपे नाच नचावें

हम इतनीसी छाछ देंगे पर पहले नाचके बताओ. छोटेसे ठाकुरजीको खोबा (अंजलि) कितनोसो और वामें छाछ कितनीसी आ सके. फिर भी ठाकुरजी भक्तन्के भावकु सोचके उनके सामने नृत्य करते. ब्रह्माण्डकु नचा सकवेवाली शक्ति भक्तन्केलिये नाचवेकु तैयार हो सके है ऐसो प्रभुको स्वरूप श्रीमहाप्रभुजीने समझ्यो.

भक्तभावानुसारी भगवान् :

प्रभुको एक स्वरूप जैसे मर्यादाको है वैसे ही प्रभुको दूसरो स्वरूप भक्तभावानुसारी भी है. और जब वो स्वरूप है तब हम हमारी योग्यताके अनुसार प्रभुके सुखको कछु विचार करें तो प्रभु वा तरहको अपनो स्वरूप हमारेलिये क्यों प्रकट नहीं करेंगे?

अपने यहां वचनामृतन्में याको बडो सुन्दर खुलासा आवे है के एक दिन राजभोग आरतीके बाद बालक निजमन्दिरसु शैयामन्दिर तकको पेंडा बिछानो भूल गये. ठाकुरजीने उनकु सानुभाव जताके कह्यो के तुमने आज पेंडा नहीं बिछायो है वालिये मैं शैयामन्दिरमें जा नहीं पा रह्यो हूं. अब लौकिक रीतिसु या बातकु सोचें तो एक दिन पेंडा नहीं बिछवेसु कौनसो पहाड गिर पड्यो के आप शैयामन्दिरमें पधार नहीं पारहे हैं गोचारण करते बखत खुले चरणारविन्दसु ऊबड़-खाबड़ कंटिले वनमें आप डोलते फिरो हो तो निजमन्दिरसु शैयामन्दिर तक क्यों नहीं पधार सको हो वचनामृतमें याको खुलासा दियो है. ठाकुरजीने उन बालकसु कह्यो के तुमने ही कही हती के शैयामन्दिरमें पेंडापे चलके ही पधारनो. मैं तो तुम्हारो नियम पाल रह्यो हूं. तुम्हारो ऐसो भाव हतो के सिंहासनसु शैया तक हम पेंडा लगावें वापे होके ही पधारनो. अब आप पैंडा लगानो भूल गये हो तो मैं सिंहासनपे ही बैठ्यो भयो हूं. तो ये *''जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत तिन घड दी तैसी''* वाली बात है. ''देखी तैसी'' में तो भ्रमणा भी हो सके है. पर अपन पुष्टिभावनामें तो प्रभु मूरतकु वैसी घड दे हैं.

''यद्यद्धिया त उरुगाय विभायन्ति

तत्तद्वपु: प्रणयसे सदनुग्रहाय''.

प्रभु अपनो वैसो स्वरूप भक्तके सामने प्रकट कर दे हैं. भगवान्के स्वभावको ये एक रहस्य है जाकु श्रीमहाप्रभुजीने समझ्यो है. प्रभुके स्वभावके या रहस्यके अनुसार आपकु ऐसी भावना भई है के ऋतुके सुख हम प्रभुके सङ्ग क्यों नहीं लें और जा ऋतुमें जिन कष्टन्को अनुभव हमकु होवे है वो प्रभुकु भी होते ही होयेंगे ऐसे सोचके हम उन कष्टन्के निवारणको उपाय भी क्यों नहीं करें

रहिये मेरे ही महल, अनत न जैये
शैया-सामग्री-वसन-आभूषण सबविध कर राखोंगी टहल,
चतुर विहारी गिरिधारी पियाकी रावरी यही सहल.

ये अपनो भाव है. ये अपनो भाव है के आप मेरे घरमें बिराजो. मैं आपकी सारी आवश्यकतान्कु पूरी करूंगी. अब सोचो के ठाकुरजीकु आवश्यकता क्या होवे? श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं :

किमासनं ते गरुडासनाय ।
किं भूषणं कौस्तुभभूषणाय ।।
लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयम् ।
वागीश किं ते वचनीयमस्ति ।।

गरुड जाको आसन है वाकु अपन कौनसो सिंहासन दे सके हैं? कौस्तुभ मणि जो धारण करे है वाकु अपन वासु कीमती कौनसो आभूषण धरा सकेंगे? लक्ष्मी जाकी पत्नी है वाकु अपन कितने पैसा भेंट धर सकेंगे? जो वाणीको पत्नी है वाकी अपन स्तुति क्या करेंगे? अपनी वाणीसु वो स्वयं जो कहवावे वो ही तो अपन बोल सकेंगे सच बात है. प्रभु यदि कभी अपनसु यों कहें के मोकु तो कोई आवश्यकता ही नहीं है तो ठीक बात है, प्रभुने मर्यादा निभायी. पर खोयी कहा? पुष्टि. भक्तके भावके अनुरूप अपनो रूप प्रभुने प्रकट नहीं कियो. श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के प्रभु ऐसे नहीं हैं. प्रभुने कुछ मर्यादा अपनी अवश्य बना रखी है. उन मर्यादाके

अनुसार प्रभु बरतें भी हैं. पर भक्त जब अपने भावके अनुसार प्रभुकी सेवा करे है तो प्रभु वाकी वैसी सेवा भी स्वीकारे हैं. सेवा ही स्वीकारे हैं इतनो ही नहीं, प्रभु वाके सम्मुख अपनो वैसो स्वरूप भी प्रकट करे ही हैं.

भागवतमें आवे है : **''मल्लनामशनिर्नृणां नरवर: स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्''** कंसके वहां पधारते भये प्रभुके दर्शन करके पहलवानन्कु ऐसे लग्यो के जैसे बिजली चमक रही है, साधारण मनुष्यन्कु लग्यो के कोई पुरुषश्रेष्ठ आ रह्यो है. स्त्री जनन्कु लग्यो के साक्षात् कामदेव चल्यो आ रह्यो है ... तो प्रभुकु जो जा भावनासु देखे है वाकेलिये प्रभु अपनो वैसो स्वरूप प्रकट करे हैं. जब प्रभु भक्तन्की भावनाके अनुसार अपने स्वरूपकु प्रकट करे हैं तो अपन भी प्रभुके प्रति स्नेहात्मिका भावना क्यों नहीं कर सके हैं? और यदि अपन वैसी भावना करें तो अपनेलिये भी प्रभु वैसो स्वरूप प्रकट क्यों नहीं करेंगे? ये भक्तिमार्गीय तकाजा है भगवान्के साथ. ये मेरे हृदयको भाव है के ऋतुक्रमानुसार मोकु जो सुख हो रहे हैं उनकु मैं आपके सङ्ग अनुभवुं और ऋतुक्रमानुसार मोकु जो कष्ट हो रहे हैं वो आपकु भी होते ही होयेंगे ऐसे सोचके उन कष्टन्को मैं निवारण करूं. यदि भक्त ऐसी भावना करे है तो प्रभु ऋतु अनुसारी अपनो स्वरूप क्यों प्रकट नहीं करेंगे? ये भावना मूलमें हती जाके कारण श्रीगुसांईजीने राग-भोग-शृङ्गारकी सेवाकी बाह्यतम परतको इतनो विस्तार कियो.

सेवाके नित्यक्रमको अपनने विचार कर लियो. वाके बाद सेवाके ऋतुक्रमको अपन विचार कर रहे हते. जैसे मैने आपकु पहले बतायो, सेवामें एक नित्यक्रम है, दूसरो ऋतुक्रम है, तीसरो उत्सवक्रम है और चौथो

मनोरथक्रमह्वऐसे चतुर्विध क्रम सेवाके होवे है. तदनुसार नित्यक्रमको अनुष्ठान नित्य होवे है. परन्तु ऋतुके परिवर्तनके अनुसार नित्यसेवाके क्रममें परिवर्तन आवे है. एक ऋतुमें एक नित्यक्रम होवे है, दूसरी ऋतुमें दूसरो नित्यक्रम होवे है. प्राचीन समयमें अपने यहां बराबर छह ऋतुएं आती हतीं. अब धीरे-धीरे ऋतुन्को लोप होवे लग्यो है. प्रदेशके भेदसु कोई ठिकाने दो ऋतुएं होवे हैं, कोई ठिकाने चार होवे हैं. पर अपने यहांके सेवाक्रममें प्राचीन ऋतुचक्रको विचार करके छह ऋतुके अनुसार नित्यसेवाको क्रम व्यवस्थित कियो गयो है. जैसे कि मैने आपकु पहले बतायो हतो के देश-कालानुसार सेवा करनी ऐसी तरहके श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगोपीनाथजीके सूत्रात्मक विधान हैं वासु इतनी बात तो स्पष्ट है के देश-कालानुसार कुछ-न-कुछ सेवाक्रममें परिवर्तन होतो ही होयगो. पर वाको व्यवस्थित संविधान जैसो श्रीगुसांईजीने घड्यो वो तो असाधारण ही है. और कोई भी सम्प्रदायमें वा तरहकी सूक्ष्मता शायद ही होयगी. जहां तक मेरो ज्ञान है वामें मोकु तो ध्यानमें नहीं आवे है के वा तरहकी सूक्ष्मता अन्यत्र कहीं भी होवे.

अपनो प्रभु रसात्मक है. रसात्मकको मतलब ये है के जैसे अपने मनोभाव हैं उनके अनुरूप अपने प्रभुको स्वरूप, लीला, गुण-धर्म आदि प्रकट होवे हैं. प्राचीन सिद्धान्त है ''**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्**''. पहले भी मैने आपकु बतायो हतो के ''जाकी रही भावना जैसी प्रभुमूरत तिन देखी तैसी''. भक्तकी भावनाके अनुसार भगवान्को केवल रूप ही प्रकट होवे ऐसी बात नहीं है, गुण भी प्रकट होवे हैं. और रूप और गुण ही केवल प्रकट होवे हैं इतनीसी बात नहीं है, वा तरहकी प्रभुकी लीला भी प्रकट होवे है. और जब भक्तके भावानुसार प्रभुके रूप, गुण और लीला तीनों प्रकट हो रहे हैं और रूप-गुण-लीलासु विशिष्ट प्रभुकी जब अपन सेवा कर रहे हैं तब सेवामें भी वो सब बातें आनी स्वाभाविक हो जायेंगी. अपनी भावना जैसी होयगी वा रहको प्रभुको रूप, वातरके प्रभुके गुण और वा तरहकी प्रभुकी लीलन्को अपनकु अनुभव होयगो.

अनुभवकी बात सुनके आपकु लगतो होयगो के ये तो बडी उच्च कक्षाकी बात हो रही है. पर ऐसी बात नहीं है. प्रभु बोल-चालके माध्यमसु अपने मनोभाव अपनकु जतावें, सानुभाव जतावें वो एक अलग कथा है. वैसो अनुभव प्रभु अपनकु भले नहीं जताते होवें परन्तु अपने हृदयको भाव अपनकु ये समझा देगो के या ऋतुमें या तरकी सेवा प्रभुकु सुखद लगेगी और या तरकी सेवा प्रभुकु सुखद नहीं होयगी. ये भी एक अनुभव है. कुशल रसोई बनानेवालो रसोइकु चाखे बिना, केवल देखके बता सके है के रसोई कैसी बनी होयगी. कच्ची है के पक्की है; कौनसो मसाला ज्यादा पड गयो है के कौनसो कम है ... ऐसे ही कुशल सेवककु अपने सेव्यके दर्शन करने मात्रसु ये पता चल जावे है के ये सेवा प्रभुकु सुखद है और ये सेवा या ऋतुमें प्रभुकु सुखद नहीं है, या तरहकी सेवासु प्रभुकु परिश्रम हो रह्यो है. अपन यों कहेंगे के ये तो बडी उच्च कक्षाकी बात है. एक बात सच है के प्रभुसेवा करते बखत या तरहको भाव जगनो भक्तिमार्गकी दृष्टिसु वस्तुतः उच्च कक्षाकी बात है. जैसे रसोई बानावेमें भी चखे बिना वाकी स्थितिकु पहचान पानो अच्छे-खासे अनुभवकी अपेक्षा रखे है वैसी ही ये बात भी है. अच्छो दुकानदार वस्तुकु तोले बिना भी वाको वजन बता सकतो होवे है. क्यों? अनुभव वाकु सब सिखा देवे है. ऐसे ही प्रभुसेवामें भी थोडे-बहुत अनुभवकी गहराइकी तो आवश्यकता है ही. पर वाकु इतनो ऊंचे ले जावेकी या वामें इतने घबरावेकी कोई आवश्यकता नहीं है के अपनकु तो जाने कब सानुभाव सिद्ध होयगो और कब ये पता चलेगी के कौनसी सेवासु प्रभुकु सुख होवे है और कौनसी सेवासु परिश्रम होवे है.

हर बातकी कोई गहराई और ऊंचाई होवे है. वासु लाभ भी होवे है और कभी हानि भी होवे है. कोइकु डरानो होवे तो कह दो के ये तो बडी ऊंची बात है, बडी गहरी बात है. आदमी सुनके ही निराश हो जावे के ये तो अपने बसकी बात नहीं है. अपने यहां कहावत है ''न नो मन तेल आवे, न राधा नाचे''. ऐसे बहुत ऊंची बात करदें तो आदमी घबरा जावे के इतनी ऊंचाईपे तो कौन चढ सके. पर ये बात उतनी ऊंची भी नहीं है. पर

साथ-ही-साथ ये बिलकुल निम्न कक्षाकी बात भी नहीं है. थोडे-बहुत अनुभवकी ऊंचाई तो यामें अपनकु स्पष्ट समझमें आ सके है. अपने यहां कह्यो है "*अनुभव बिना अनुभव कहा जानिये, जाको पिया नहीं चित्त चोरे, प्रेमके सिन्धुको मरम जान्यो नहीं, सूर कहे कहा भयो देह बोरे*''. मछली, कछुआ और दूसरे भी कई जीव गंगाजी-यमुनाजीमें रहे हैं. पर गंगाजी-यमुनाजीके भक्तकु गंगास्नान और यमुनास्नान करके जा तरहकी सिहरन होवे, आध्यात्मिक सन्तोष होवे वो तो प्रेमके सिन्धुको मर्म जानवेवारेकु ही हो सके है, दूसरेकु नहीं. पुष्करजीमें मगरमच्छ कितने रहते हते पर जाकु पुष्करजीमें भाव है वो जब पुष्करजीमें गोता लगावे और वाकु जो सन्तोष होवे वो प्रेमके सिन्धुको मर्म जानवेकी बात है. कई लोग ऐसे भी होवे हैं के कई बखत पासमेंसु निकल गये फिरभी कभी वा तरफ देख्यो भी नहीं. और सब लोग नहा रहे हैं तो चलो अपन भी नहा लें. ये ' 'कहा भयो देह बोरे'' हो गयो. कुछ लोग पाछे ऐसे भी होवे हैं के पुष्कर होवे के नहीं होवे, कहीं भी जलाशय दीख जाय वाकु पुष्कर मानके गोता लगावे लगते होवे हैं. अपने मार्गके सेवाप्रकाके विषयमें भी कई लोगनकु ऐसो होवे है के कहीं भी कछुक सेवाको प्रकार दीखते ही उनकु लगवे लगे है के ओहो ये तो पुष्टिमार्ग है. पर भाइ, पुष्टिमार्ग ऐसी-वैसी बात नहीं है के सेवाके नामपे कहीं भी प्रकट हो जावे. कोरे बाहरी डेकोरेशन्सु पुष्टिमार्ग प्रकट नहीं हो सके है. पुष्टिमार्गकी आन्तरिक शर्त है : ' 'प्रेमके सिन्धुको मर्म''. प्रेमके सिन्धुको मर्म अपन जानें तब तो पुष्टिमार्ग प्रकट हो सकेगो, पर वो मर्म यदि नहीं जान्यो तो बाहरी डेकोरेशन् तो कोई भी कर देगो. आजकल तो डेकोरशन् करवेको भी तो धंधा है. डेकोरेशन्के धंधावाले कहो वैसी सजावट कर देंगे. वाकु क्या अपन पुष्टिमार्ग कहेंगे आप स्टुडियोमें जाके कहोके मोकु वकीलके वेशमें फोटो खिंचवानो है तो आपको वैसो फोटो तो खिंच जायेगो. पर फोटो खिंचवा लेवेसु वकालत करवेको कौशल आपके अंदर आ नहीं सके है. यासु अपनकु ये रहस्य जान लेनो चहिये के ' '*प्रेमके सिन्धुको मर्म जान्यो नहीं, सूर कहे कहा भयो देह बोरे*''.

प्रभुकी सेवा करते समय कौनसी ऋतुके अनुसार कैसो उपचार प्रभुकु

सुखद होयगो और कौनसो सुखद नहीं होयगो वा अपन कोई किताब पढके समझ नहीं सके हैं. ' '*पढ-पढ पोथी जग मुआ, पंडित हुवा न कोय, ढाई अक्षर प्रेमका पढे सो पंडित होय*'' ये ऐसी बात है. सेव्यकु होते कष्ट और सुख के ज्ञानमें कोई लिखित संविधान काम नहीं आवे है. पोथी पढके ये ज्ञान नहीं हो सके है. ये समझ तो हृदयमें स्नेह होवे तो ही आ सके है. मैं आपकु अपने अनुभवकी बात बताऊं हूं. एक बखत या ही जगह किशनगढमें मोकु बुखार आयो. वा बखत कुन्दनजी हमारी सेवामें हते. बुखार तीन-चार डिग्री हो गयो तब मैने कुन्दनजीसु माथेपे जलके पोता रखवेकी कही. कुन्दनजी बहुत भोले हते. उनने मोसु कही के पोता रखवेसु तो आपकु न्युमोनिया हो जायगो. मैं तो पोता नहीं रखुंगो. मैने उनसु कही के ठीक है आप नहीं रखो तो कछु नहीं मैं खुद रख लऊंगो. उनसु जल मंगवाके मैने स्वयं माथेपे पोता रखने शुरु किये. कुन्दनजी आ के सामने बैठ गये. मोकु उनकु देखके मनमें बडो गुस्सा आ रह्यो हतो के कैसे आदमीसु पाला पड्यो है के कोई बात समझे नहीं है पर थोडी देर पीछे मैने ध्यानसु देख्यो तो कुन्दजी बिचारो रो रह्यो हतो. थोडी-थोडी देरमें वो मोसु बिनती करतो ' 'जे-जे अब बस करो; अब बस करो''. वाकु रोतो देखके मेरो सब गुस्सा पिघल गयो. क्योंके वो पोता नहीं रख रह्यो हतो वामें भी कारण तो वाको स्नेहभाव ही हतो. भले वो अज्ञानी हतो. पर प्रकट तो स्नेह ही हो रह्यो हतो. ऐसे अपन भी कुन्दनजीकी तरह प्रभुके सामने स्नेहभाववश यदि अपनो अज्ञान भी प्रकट करेंगे तो प्रभु नाराज नहीं होयेंगे. और ' 'पढ-पढ पोथी जग मुआ'' ऐसे बहुत पांडित्य प्रकट करेंगे पर स्नेह भाव हृदयमें नहीं होयगो तो पाछी सूरदासजीवाली बात आयेगी के *'प्रेमके सिन्धुको मर्म जान्यो नहीं, सूर कहे कहा भयो देह बोरे*''.

ऋतुसेवाकी बात भी प्रेमके मर्मकी बात है. यामें कभी अपनो अज्ञान प्रकट हो सके है. वार्तामें भी ऐसे प्रसङ्ग आवे हैं. एक डोकरी श्रीमदनमोहनजीकी सेवा करती हती. एक दिन कोई वैष्णव वाके वहां अपने ठाकुरजी, श्रीबालकृष्णजी, पधरा गयो. डोकरीने श्रीमदनमोहनजीके अलावा दूसरे कोई स्वरूपके दर्शन कभी किये ही नहीं हते. वाने सोचीके बिचारे

ठाकुरजी ठंडके मारे सिकुड गये हैं. वो तो तेल लेके ठाकुरजीकी मालिश करवे लगी. वाकी मालिशके कारण मेरी तरह वैष्णवके ठाकुरजीकु भी झुंझलाहट भयी होयगी के मैं लड्डुगोपाल हुं, अकारण मेरी टांगनकु सीधी क्यों करनो चाह रही है. अपनकु टांगे मोडके बैठनो होवे वा बखत कोई जबरदस्ती अपनी टांगनकु सीधी करे तो अपनकु पसंद नहीं आवे. पर स्नेह है. स्नेह वश वैष्णवके ठाकुरजी लड्डुगोपालमेंसु मदनमोहनजी बन गये.

स्नेह ज्ञान–अज्ञानसु पर है :

स्नेह ऐसी वस्तु है के वो न तो पूरो अज्ञान है और न वो पूरे ज्ञानकी अपेक्षा रखे है. ज्ञान और अज्ञान दोनोंसु अतीत कोई मनोभाव 'स्नेह' है. ज्ञान और अज्ञान में स्नेहकु बांट्यो नहीं जा सके है. अपन स्नेहकेलिये ऐसे नहीं कह सके हैं के स्नेह है तो ज्ञान होनो ही चहिये. कुछ ज्ञानमार्गी लोग कहते होवे हैं के अज्ञानीन्केलिये स्नेह–भक्तिको मार्ग है, ज्ञानीन्केलिये ज्ञानमार्ग है. पर सच बात ऐसी नहीं है. स्नेहको ज्ञानके साथ कोई बाप मारेको वेर नहीं है. स्नेह ज्ञान और अज्ञान दोनोंसु परे कोई एक मनो भाव है. और वो मनोभाव कैसो है? अपन देवकीजीके प्रसङ्गसु वाकु समझ सके हैं.

देवकीजी–वसुदेवजीने तपस्या करी. प्रसन्न होके ठाकुरजी उनकु प्रत्यक्ष भये और पूछी के बोलो क्या इच्छा है. उनने ठाकुरजीके पास वर मांग्यो के आपके जैसो पुत्र हमकु चहिये. करके ठाकुरजी चार भुजा और चार आयुध धारण करके छोटेसे बालकके रूपमें प्रकट भये. ठाकुरजी प्रकटे तब देवकीजीने उनकी स्तुति करते भये एक बात कही के या रूपमें तो आपकु कंस नहीं पहचानतो होयगो तो भी पहचान जायगो. और पहचान जायगो तो अवश्य मार देगो.

या प्रसंगकु जरा सोचो के जो प्रकट भयो है वो भगवान् है

ऐसो ज्ञान देवकीजीकु है तो कंस भगवान्कु कैसे मार सके और यदि कंस मार सके है तो जो प्रकट भये हैं वो भगवान् कैसे तो देखो ये बात प्रेमकी है. प्रेम ज्ञान और अज्ञान दोनोन्सु ऊपरकी बात है. देवकीजीकु उनको प्रेम ये समझा रह्यो है के आप बहुत सुन्दर रूपसु प्रकट भये. पर बाल रूपमें आपकी विष्णुरूपताकु देखके मोकु डर लग रह्यो है के कंस कहीं आपकु पहचान न जाये. ये बात न तो ज्ञानमें खप सके है न अज्ञानमें. यदि ज्ञानमें याकु खपाओगे तो कंसको डर नहीं लगनो चहिये. अज्ञानमें खपाओगे तो वो खप नहीं सके है क्योंके स्वयं देवकीजी ठाकुरजीकी स्तुतिमें "**उपसंहर विश्वात्मन्**" आप विश्वात्मा मेरे यहां प्रकट भये हो यों कह रहे हैं. पर पाछे यों भी कह रहे हैं के "**कंसाद् अहम् अधीरधी:**" मोकु कंससु डर लग रह्यो है. तो समझो के ये बात ज्ञान और अज्ञान कोइमें भी नहीं खप सके है. या बातकी व्याख्या केवल स्नेहके रूपमें ही हो सके है.

ब्रह्मकु अपने भावानुरूप ढालनो=परा गति :

भगवानने भी ये ही बात वसुदेवजी–देवकीजीकु समझायी के

"युवां मां ब्रह्मभावेन पुत्रभावेन चासकृत्
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम्"

जाकु ब्रह्मभावसु सोचें वाकु पुत्रके रूपमें समझ्यो नहीं जा सकेगो और जाकु पुत्र मानोगे वाकु ब्रह्मतया नहीं समझ्यो जा सकेगो. पर भगवानने आज्ञा करी के तुम मोकु ब्रह्मभावसु भी देखो और पुत्रभावसु भी देखो. ऐसे करवेसु तुम मेरी परा गतिकु प्राप्त कर लोगे. ये परा गति कौनसी? अपन समझें के वैकुण्ठकी प्राप्तिकी यहां बात होयगी अथवा कोई बडी भारी सामर्थ्य उनमें प्रकट हो जायेगी अथवा जन्म–मरणको चक्कर छूट जायेगो वाकु भगवान् परा गति कहते होयेंगे. दूसरे मार्गन्के हिसाबसु ये परा गति होयेंगी पर भक्तिमार्गके हिसाबसु ये सब क्षुद्र गतियें हैं. भक्तिमार्गके हिसाबसु परा गति ये है के ब्रह्मकु अपने भावके अनुरूप ढाल पानो.

कोई शिल्पकार, चित्रकार, सुतार, कुम्हार या सुनार परा गतिकु

प्राप्त भये कब कहावें? उनने मनमें जा आकृतिकु प्रकट करवेकी सोची होवे वाकु अपनी कुशलतासु जब पथ्थरमें कागजपे लकडीमें मिट्टिमें या सोनामें प्रकट कर देवें तब उनकु परा गति प्राप्त हो गयी. और मनमें जो आकृति सोची होवे वो यदि कारीगर प्रकट कर नहीं सके तो वो वाकी क्षुद्रगति भय कहावेगी. ऐसे भक्तिमार्गीकी परा गति तब भयी कहावेगी के जब वो अपने मनमें भावित भगवान्के रूपकु भगवान्में प्रकट कर पावे.

ब्रह्मकु भजनीयतया घडवेकी कला=भक्ति :

दस्तकारी, चित्रकारी आदि जैसे कोई तरहकी कला हैं ऐसे ही भक्ति भी एक तरहकी कला है. भगवान्कु घडनेकी कला है. चित्रकार तब कुशल कहावे है के जब वो कागजपे वाके मनमें रहे भावन्कु चित्रके रूपमें प्रकट कर सके. ऐसे ही भक्तिमार्गी भी तब कुशल कहावे है के जब वो अपने हृदयमें भरे भये भावात्मक स्वरूपकु भगवान्में प्रकट कर सके. गायक तब कुशल कहावे के जब वो अपने मनमें उठे भावन्कु स्वरन्के माध्यमसु प्रकट कर सके. यदि वो ऐसो कर सके है तो वो परागतिकु प्राप्त हो गयो. और मनमें एक तान सोच रह्यो होवे और गलामेंसु कोई दूसरे-दूसरे स्वर निकल रहे होवें तो फिर वो गायक कुशल नहीं कहावेगो. पर देवकीजीने भगवान्कु पुत्रके रूपमें चाहे हते. भगवान् उनकु पुत्रके रूपमें प्राप्त हो गये. देवकीजीकु परा गति प्राप्त हो गयी. डोकरीके भावके वश होके ठाकुरजी बालकृष्णजीमेंसु मदनमोहनजी बन गये. डोकरीकु परा गति प्राप्त हो गयी. क्यों? क्योंके डोकरी ठाकुरजीकु घडवेमें भक्तिमार्गी कुशल कलाकार हती. परमात्मा भी कलाकार है के जो अपन सबन्कु घड रह्यो है. पर वा परमात्माकु घडनेकी कलाको नाम भक्तिमार्ग है. परमात्माकु केवल अनुभव करवेकी कला ज्ञानमार्ग हो सके है. पर परमात्माकु घडनेकी कला ज्ञानमार्गके पास नहीं है. ज्ञानमार्गमें ये एक न्यूनता है. अपन जैसे कोई कहानी बांचलें, समाचार जानलें वो ज्ञानमार्ग है. पर अपन कोई कहानी लिख सकें तो वो साहित्य कहावे है. तब अपन पाठक नहीं है, साहित्यकार हैं. अपन क्योंके कथाकु प्रकट कर रहे हैं. अपनी बुद्धिमें वा तरहके आवेग हैं के जा भावकी

कथा प्रकट करनो चाहें वाकु अपन प्रकट कर सके हैं. आजकल कहानी सुनवे-सुनावेकी पद्धति खतम हो गयी. पुराने जमानेमें ऐसे-ऐसे कहानी सुनावेवाले लोग होते हते के कहानी सुनाते-सुनाते कहानी बनाते जायें और वो कहानी खतम ही नहीं होवे. उनकु इतनी लंबी कहानी याद नहीं होती हती. पर उनकी बुद्धिको व्यापार उतनो सक्षम होतो हतो के कवी जैसे अपने भावनकु शब्दमें ढाल सके वैसे कहानी कहनेवाले कुशलतासु अपने भावन्कु कहानीके रूपमें ढाल सकते हते. ऐसे हृदयमें जो प्रभु विषयक भाव प्रकट भयो वा तरहसु प्रभुकु ढाल सके, प्रभुके गुणन्कु ढाल सके वो ही भक्तकी परा गति है. बोलवेमें वाणीको अपराध शायद होवे पर ये भगवान्कु सरजवेकी कला है. जैसे भगवान् अपनो सर्जनहार है वैसे भक्ति भगवान्की सर्जनहारी है. श्रीगोकुलनाथजीके एक सेवकने अेक बखत श्रीगोकुलनाथजीकु कहीके आप तो साक्षात् पुरुषोत्तम हो. तब श्रीगोकुलनाथजीने बडे सुंदर वचनामृत किये. आपने कहीके मैं पुरुषोत्तम नहीं हुं पर तुम्हारी भक्ति पुरुषोत्तम है. मतलब, भक्तिमें वो सामर्थ्य है के वो पुरुषोत्तम घड सके है.

निगाहोंने देखी महोब्बतने मानी,
तेरी बेमिसाली तेरी लाजवाबी,
इन आंखोंका आलम गुलाबी-गुलाबी

ज्ञानी ब्रह्मकु जान सके है, भज नहीं सके है :

स्नेह-भक्तिमें वो सामर्थ्य है के वो परमात्माको रूप घड सके है. स्नेहकी दृष्टिमें ये ताकत है, ज्ञानकी दृष्टिमें ये सामर्थ्य नहीं है ये बात समझियो. सारे शास्त्र पढ लो ज्ञानकी दृष्टिमें ऐसी सामर्थ्य नहीं बताई है के ज्ञानीकु अनुभव होवे के आज मेरे ठाकुरजीकु ठंड लग रही है कछु ऐसो उपाय करें के ठाकुरजीकु ठंड नहीं लगे. ज्ञानीकु ऐसो अनुभव नहीं हो सके है के आज ठाकुरजीकु गरमी लग रही है. कछु ऐसे उपाय करें के जासु ठाकुरजीकु गरमी नहीं लगे. ज्ञानी बरसातके मौसममें ये नहीं सोच सके है के जैसे अपन बरसातको आनन्द लेवे हैं ऐसे ठाकुरजीकु भी बरसातको आनन्द लिवावें.

सार्वजनिक मन्दिर कैदखाना हैं :

इन मन्दिरनने तो पुष्टिमार्गको सर्वनाश कर दियो है. बाकी जहां कभी ठाकुरजीकी गृहसेवाके प्रकारसु सेवा होती हती वहां बरसातके मौसममें ठाकुरजीकु ऐसे ठिकाने पधराये जाते हते के जहां ठाकुरजी बरसातको आनन्द ले सकें. किशनगढमें जब 'मझेला'की झील भर जाती तब किशगढ दरबार अपने ठाकुरजीकु झीलके किनारापे हिंडोरा झुलाते. क्योंके जाको मजा अपन ले रहे हैं वो अपन अपने ठाकुरजीकु भी लिवावें. ये काम कोई ज्ञानी नहीं कर सके है. ये तो जो भक्त होवे जो कलाकार होवे वो ही कर सके है. बाकी अपने यहांके मन्दिर तो कारागार हैं. कंसने जैसे देवकीजीके पुत्रकु सिपाही-तालान् के बंदोबस्तमें कैद कर रखे हते के कहीं ठाकुरजी बहार न चले जायें ऐसे मन्दिरनूमें ठाकुरजीकु तालामें बंद कर दिये जायें हैं. ठाकुरजीकु कह दियो जाय के आप बहार पधार जाओगे तो आपके दर्शनिया भगत आपकु कहां-कहां खोजेंगे. यासु आपकु तो यहीं बैठे रहनो पडेगो. आप कहीं पधार नहीं सको हो. ये क्या पाखंड पुष्टिमार्गके नामपे चला रख्यो है, समझमें नहीं आवे है.

'कुचामन'के दरबारकी बात आप लोग सुनोगे तो आश्चर्य होयगो. कुचामनके दरबारकु निरन्तर पर्यटन, युद्ध जैसे कार्यमें व्यस्त रहनो पडतो. ठाकुरजीके बिना वो रह नहीं सकते. यासु वो अपने माथापे कटोरीमें गादी-तकीया बिछाके माथापे बडो साफा बांधके वा साफाके किलामें अपने ठाकुरजीकु पधराते. अपने यहां ठाकुरजीके विषयमें पूछ्यो जाय है के 'कौनके माथेपे ठाकुरजी बिराजे हैं?'' सचमुचमें कुचामनके दरबारके माथेपे ही उनके ठाकुरजी बिराजते. ऐसो तादात्म्यको भाव उनको अपने ठाकुरजीके प्रति हतो. वो क्षत्रियको ठाकुर हतो. उनकु घोडेपे सवार दरबारके माथेपे बिराजे भये युद्धमें सामिल होनो अनुकुल हतो. अपन क्षत्रिय नहीं हैं. अपनकु युद्धसु डर लगे है. अपनकु डर लगे है तो अपने ठाकुरजीकु भी डर लगेगो. और यदि अपन मरुं-मारुंपे आमादा हैं तो फिर अपने ठाकरजी भी कहेंगे के चल हो जाय दो-दो हाथ. ऐसे स्थिति आ जाये तो अपन भक्तिमार्गके कलाकार बन गये. ये कलाकारी है. ये बात न तो ज्ञानमें खपायी जा सके है न अज्ञानमें.

मैं अक्सर झांसीकी रानीकी बात कहूं हूं. झासीकी रानीने एक बच्चाकु राजा बनावेकेलिये गोद लियो. अंग्रेजनने कही के हम या बच्चाकु राजा नहीं मानेंगे. रानीने कह्यो के झांसीमें मैं रानी हूं मैं जाकु राजा बनानो चाहूं वो राजा कहलायेगो. अंग्रेजनने याको विरोध कियो. रानीने कही के तो फिर युद्ध करो. जाकु राजा बनाने है वाकु अपनी पीठपे बांधके वो रण-मैदानमें उतरी. खुब लडी. घायल भी भयी. वाकु भाला चुभ्यो. अब सोचो के क्या वाको बेटा युद्धमें मर नहीं सकतो हतो युद्धमें बेठाकु पीठपे बांधके उतनो वाकी बुद्धिमत्ता हती के मूर्खता बात समझो के या बातकु बुद्धिमत्ता या मूर्खता में नापी नहीं जा सके है. क्योंके रानी रणचण्डी हती. मरुं-मारुंपे उतारु हती. साथमें वो एक मां भी हती. वो क्षत्राणी मां हती. क्षात्रस्वभाव वामें स्वाभिमान स्वाधीनता शौर्य के भाव जगा रह्यो हतो और मातृत्व वामें वात्सल्य जगा रह्यो हतो.

वैष्णव डोकरीके प्रसङ्गमें आयो हतो के वो अपने सङ्गी वैष्णवके ठाकुरजीकु ठंडमें सिकुडते देख नहीं सकती हती. वाने कर-कर मालिश बालकृष्णलालकु मदनमोहनजी बना दिये. ये न तो अज्ञान है न ज्ञान है. ये इन दोनोंसु परे शुद्ध स्नेह है के जो ऋतुक्रममें प्रकट भयो हतो. वैसे सोचें तो ये बहुत उच्च कक्षाकी बात है. पर पाछी उतनी उच्च कक्षाकी भी नहीं है के अपनकु अनुभवमें नहीं आ सके. बहुत उच्च कक्षा होय तो अपन याकु सानुभावमें भी अनुभव कर सकें. और उतनी उच्च कक्षा नहीं होय तो जैसे शायर कहे है के 'तुझको देखा नहीं महसूस किया है मैने''. ऐसे महसूस तो अपन भी कर सकेंन के मेरे ठाकुरकु ठंड लग रही है, गरमी लग रही है, ऐसे शृंगार करुं तो सुखद होयगो, ऐसो शृंगार कष्टप्रद होयगो, या तरहको राग सुखद होयगो, या तरहकी समग्री सुखद होयगी ह्वये सारो विचार श्रीगुसांईजीने कियो है.

भागवतमें वसुदेव-देवकीजीकु जो आज्ञा भगवानने करी हती के **''युवां मां ब्रह्मभावेन पुत्रभावेन चासकृत् ... यास्येथे ते मद्गतिं पराम्...''** तुम मेरेकु ब्रह्मभाव और पुत्रभाव सु भजो. पर मैने जैसे आपकु बतायो के एक बखत यदि ब्रह्मभावसु ठाकुरजीकु भजेंगे तो पुत्रभावसु भजवेमें

तकलीफ आयेगी. ऐसे ही यदि पुत्रभावसु भजेंगे तो ब्रह्मभावसु भजवेमें तकलीफ होयगी. पर एक बात समझो के ये तकलीफ बुद्धिकु आवे है, स्नेहकु कभी ये तकलीफ आवे ही नहीं है. स्नेहकु यदि या तरहकी तकलीफ आवे तो वाको मतलब है के स्नेह कम हो गयो. बुद्धिकु या तरहकी तकलीफें जरूर आवे हैं क्योंके बुद्धि बातनकु विभिन्न खण्डनमें सोचे है के यदि ये ऐसो है तो वैसो नहीं होयगो.

कुरानको उदाहरण दउं तो वहां स्पष्ट लिख्यो है के *''लम् यलिद् वलम् यूलद्''* न वाको कोई बाप है, न वो कोइको बाप है. न वाकी कोई औलाद है, न वो कोइकी औलाद है. कुरानमें ये जो कह्यो गयो है वैसो ही स्वरूप ब्रह्मको भी है. पर वो कौनसे अर्थमें कोइकी औलाद नहीं है या कोइको पिता नहीं है वापे ध्यान देनो चहिये. जैसे लौकिक माता-पिताके आपसके सम्भोगके कारण कोई औलाद पैदा होवे है वा तरहसु वाकी कोई औलाद नहीं है. पर यदि ये सारी सृष्टि वाकी औलाद नहीं है तो फिर ये सृष्टि आयी कहांसु? और यदि वाके अलावा ओर कहींसु आयी है तो फिर वो क्यों 'खुदा' है? क्योंके तब तो फिर सृष्टि जहांसु आयी है वाकु ही क्यों खुदा नहीं माननो? पर जब अपन वाकु खुदा मान रहे हैं, अल्लाह मान रहे हैं तो बात साफ हो गयी के कोइ-न-कोई अर्थमें तो वो बाप है ही न तो एक बात समझो के जब अपन अल्लाहकी औलाद हो सके हैं तो अल्लाह क्यों अपनी औलाद नहीं हो सके? वो अपनी औलाद हो सके है पर बात इतनीसी है के अपने भीतर वैसो भाव होनो चहिये. ज्ञान तो भावसु नहीं हो सकेगो पर स्नेहको यदि भाव है तो वो अपने यहां प्रकट हो सके है. जो आखी सृष्टिकु प्रकट करे है वो स्वयं क्यों प्रकट नहीं हो सके? जो डॉक्टर आपको इलाज कर सके वो खुदको इलाज क्यों नहीं कर सके? जो व्यक्ति आपके शृंगार कर सके वो खुदके क्यों नहीं कर सके? जो व्यक्ति दूसरेकु पढा सके वो खुद क्यों नहीं पढ सके? ऐसे ही ब्रह्म जब सृष्टिकु प्रकट कर सके है तो खुद सृष्टिमें प्रकट भी हो सके है. या बातकु वेदने समझायी है :

''अजायमानो बहुधा विजायते. तस्य धीरा: परिजानन्ति योनीम्''.

वो अजायमान है ये हकीकत है. ये वाके ब्रह्मपनेको रूप है. पर ''बहुधा विजायते'' वो जब-जब वाकी इच्छा होवे तब वो कई तरहसु प्रकट हो सके है. अथवा जैसे सुनार सोनामेंसु गहना घड ले है, कुम्हार जैसे मिट्टिमेंसु बरतन घड ले है या जैसे सुतार लकडीमेंसु फर्नीचर घड ले है ऐसे जब-जब कोई भक्त-कलाकारमें वा ब्रह्ममेंसु अपने भगवानकु घडवेकी सामर्थ्य प्रकट होवे है तब वो अजायमान् भी बहुधा विजायते हो जाय है. ब्रह्म उन-उनके भावके अनुसार उनके सामने प्रकट हो सके है. शर्त एक है के वा ब्रह्मके सामने वसुदेवजी-देवकीजीके जैसे निश्छल मनोभाववालो कोई होनो चहिये के मोकु तेरे जैसो पुत्र चहिये है. भाव यदि निश्छल होयगो तो भगवान् कहेंगे के तब फिर मैं तेरो पुत्र बन सकुंगो. पर यदि कोइकु पुत्र चहितो होवे पर मेरे जैसो पुत्र नहीं चहितो होवे तो फिर कुरानको सिद्धान्त *''लं यलिद् वलं यूलद् ...''* आ जायेगो. ये तो बात आखी अलग हो गयी. पर जब कोई वाकु कहे के मोकु तेरे जैसो पुत्र चहिये तो भगवान् कहेंगे के ठीक है, मैं तेरेलिये पुत्र बन सकुं हूं. कोई भगवान्कु हे के मोकु तेरे जैसो सखा चहिये है. भगवान् सखा भी बन सके हैं. अर्जुनके सखा भगवान् कैसे बने हते *''पारथको रथ हांक्यो, भूल गये ठकुराइ, सबसे ऊंची प्रेम सगाइ''*. अर्जुन राजा हते तो ठाकुरजी भी कछु कम थोडी हते पर प्रेमके सम्बन्धमें ये सब देख्यो नहीं जाय है.

मैं एक बखत मेरे मित्रसु मिलवे गयो. वा बखत मेरो मित्र अपनो घर बदल रह्यो हतो. मित्र और वाके घरवाले सब ट्रकपे सामान रख रहे हते. उनकु तकलीफमें देखके मैने पूछी के क्या समस्या है. तो वाने कही के ये पिटारा हमसु उठ नहीं रह्यो है. मैने कही के शायद मेरेसु उठ जायेगो. मैने वो पिटारा उठाके ट्रकपे चढा दियो. वहां एक वैष्णव खडो हतो. मोकु पिटारा उठाते देखके वाके मुंहसु निकल गयो ''हें हें हें ... आप आवुं???''. वाके बोलवेके कारण मेरो दोस्त शरमा गयो. वो बोल्यो के लोग कहीं तुमकु मेरो मजदूर न समझ लें. मैने कही के लोग समझें तो भले समझें, तेरी-मेरी तो दोस्ती है न तेरी पेटी उठावेमें मोकु कोई शर्म नहीं आ रही है. वो बोल्यो के तेरे भक्त क्या सोचेंगे? मैने कही के उनके संग मेरो अलग तरहको सम्बन्ध है और

तेरे संग अलग तरहको सम्बन्ध है. पर यदि तु घबरातो होवे तो मैं तेरो सामान नहीं उठाउंगो. तेरेमें दृढता होनी चहिये.

सब लोग आपसमें ऐसे ही करते होवे हैं. प्रभु ऐसो क्यों नहीं कर सकें? जब अपन अपनी ठकुराई भूल सकें तो प्रभु अपनी ठकुराई क्यों नहीं भूल सकें? ठकुराई भूलवेमें वाकु तकलीफ आवे के जो क्षुद्र ठाकुर होवे. बडे ठाकुरकु कोई तकलीफ नहीं होवे है. जो क्षुद्र पैसावालो होवे वाकु अपनी धनिकता प्रकट करवेमें मिथ्या सन्तोष होतो होवे है. क्यों? क्योंके वाकु लगे है के कोई मोकु निर्धन न मान ले. पर जन्मजात धनिककु कभी अपनी धनिकता प्रकट करवेकी इच्छा नहीं होवे है. मैं एक वैष्णवके यहां शादीमें कलकत्ता गयो. वा वैष्णवकी लडकीकी शादी एक वैष्णव सेठके लडके संग भई हती. वो सेठ नयो-नयो पैसावालो बन्यो हतो. मैं वाकु जानतो हतो. एक समय वाके घर लोहेके बरतन भी नहीं हते. शादी तय भयी तब वा सेठने लडकीवालेन्कु कहवायी के हमारी अपरस ऐसी है के हमकु तो सब बरतन चांदीके ही चहियेंगे. स्टीलके बरतन हमकु छू जायेंगे. सामनेवाले तो ठहरे ही बिचारे लडकीवाले. वो कहां जायें जैसे-तैसे उनने चांदीके बरतनकी व्यवस्था करी. क्षुद्र धनिक ऐसे होवे हैं. अपनो ठाकुर ऐसो क्षुद्र ठाकुर नहीं है. निश्छल भावसु भक्त वाकु जैसो घडनो चाहे वैसो वो वाकेलिये बन जावे है. स्नेह-भक्तिमें वो सामर्थ्य है के वो परमात्माको रूप घड सके है.

कीर्तनके प्रकार :

प्रश्न : अपने यहां अष्टछाप आदि भक्तन्ने जिन पद-कीर्तनकी रचना की है वो सभी पद-कीर्तन क्या उनकु भये सानुभावके हैं?

उत्तर : आपने बहुत अच्छो प्रश्न कियो है. आपके प्रश्नको खुलासा यदि आप अष्टसखान्की वार्ता पढोगे तो वामेंसु मिल जायेगो.

मनोरथजन्य पद : कोई पद उनके हृदयमें वा तरहको मनोरथ प्रकट भयो वाके

कारण प्रकटे हैं. यासु अपन यामें वा तरहके खाना नहीं बना सके हैं के अष्टसखान्के सारेके सारे पद केवल सानुभावके ही हैं या केवल भावनाके ही पद हैं.

भावनाजन्य पद : कुछ पद उनकी वैसी भावना हती जो पदन्के रूपमें प्रकटी वाके कारण प्रकट भये हैं.

सानुभावजन्य पद : कुछ पद ऐसे भी हैं के जो उनकी भावनाके कारण नहीं पर उनकु वैसो सानुभाव भयो वालिये प्रकट भये.

लीलाश्रवणजन्य पद : कुछ पदें श्रीगुसांईजी प्रवचनमें जो लीलाको वर्णन करते वाकु सुनके बने हैं. जैसे कृष्णदासी विरचित पदें. यद्यपि कृष्णदासी अष्टसखान्में नहीं हैं पर उनके पद अष्टसखाके समकक्ष ही हैं. श्रीगुसांईजी प्रवचन करते वामें कछु-कछु लीलाको वर्णन भी करते. कृष्णदासी उन वर्णनके पद बना देती. करके उन पदनकी छाप खुदकी नहीं रखके ''श्रीविट्ठल गिरिधरन''की छाप रखती हती. कृष्णदासी विरचित पद वो जो श्रवण करती हती वापेसु बने भये हैं. ये पद न तो सानुभावके हैं और न भावनाके हैं. उनने जो श्रवण कियो वाको उनमें आवेग इतनो आयो के वो आवेग पदके रूपमें प्रकट हो गयो. आपन कोई नयी बात सुनें तब अपनेमें वाको ऐसो आवेग आ जातो होवे है के अपन दूसरेकु कहते होवे हैं के भाइ तेने ये बात सुनी के नहीं कोई सोचतो होयगो के भाइ तुमकु यासु क्या लेना-देना? पर बात सुनी वाको आवेग इतनो आ गयो के जब तक वाकु कोइकु कह नहीं दें तब तक पेटमें अपच बनी रहे है ऐसे ही जा लीलाको भक्तने श्रवण कियो होवे वाको जब तक वो गान नहीं करे तब तक वाकु सन्तोष नहीं होवे. क्योंके नवधाभक्तिमें श्रवणके बाद कीर्तन आवे है. जाको श्रवण कियो है वाको कींतन भी करनो चहिये. जाको श्रवण-कीर्तन कियो है वाको स्मरण भी करनो चहिये. ऐसे अनेक तरहके पद हैं.

शंका-समाधानात्मक पद : कोई-कोई बखत कोईने भक्तसु कछु पूछ्यो होवे वाके उत्तरमें कई पदन्की रचना भई है. जैसे वार्तामें आवे है के कोईने सूरदासजीकु कोई विषयकी भावनाके विषयमें प्रश्न कियो. सूरदासजीने उत्तरमें कोई पद सुना दियो. कितने ही पद या प्रणालीसु भी प्रकट भये हैं.

एक सच्ची बात कहूं तो जब पदके प्रकट होवेकी प्रणालीकु समझके पदको श्रवण-कीर्तन अपन करे हैं तो एक अलग ही आनन्द आतो होवे है, तब वा पदकी अपनी समझमें चार चांद लग जाते होवे हैं.

नित्यक्रम और ऋतुक्रम को सम्बन्ध :

ऋतुक्रमानुसार सेवाकी सारी बारीकियें तो बहुत विस्तारकी अपेक्षा रखे हैं पर संक्षेपमें मैने पहले जो खाका(प्रारूप) बतायो हतो वो मैं आपकु फिरसु बताउं हूं. साथ-ही-साथ जैसे कि कल मैने आपकु बतायो हतो के सेवाको सामान्यतया जो नित्यक्रम है वो ही ऋतुक्रमके अनुसार परिवर्तित होता रहे है. जैसे नित्यसेवाको क्रम तो ३६५ दिनको क्रम है. पर जैसी-जैसी ऋतु आती जावे है वैसी-वैसी ऋतुके अनुसार नित्यसेवाको क्रम भी बदलतो चल्यो जाय है. अपन याकु ऐसे समझ सके हैं के नित्यक्रम समझ लो के एक मकान है तो ऋतुक्रम वा मकानके भीतरकी सजावट है. सजावट अपन समय-समयपे मकानके भीतर बदलते होवे हैं पर मकान वोही रहे है. ऐसे ही नित्यक्रम वोही रहे है पर भीतरकी सजावट ऋतुके अनुसार बदलती रहे है.

ऋतुक्रममें नित्यक्रम केंसल् नहीं होवे है :

अपने लौकिक जीवनसु भी या बातकु अपन समझ सके हैं. जैसे नित्यक्रममें अपन कपडा पहने हैं. ऋतुके बदलवेपे ऋतुके अनुसार कपडा भी बदल-बदलके पहनते होवे हैं. जैसे ठंडमें कोट, स्वेटर, शाल, बूट, मोजा, कनटोपा पहनते होवे हैं. गरमीमें सूती कपडा पहनते होवे हैं. समझवेकी बात यामें ये है के नित्यक्रम चालु रहे है, नित्यक्रमकु केंसल् करके ऋतुक्रम नहीं होवे है. नित्यक्रममें सजावटी अन्तर आतो होवे है. नित्यक्रम और ऋतुक्रम के

बीच सम्बन्ध बराबर वैसो ही होवे है के जैसो सम्बन्ध मकान और सजावट के बीच होवे है. गरमीमें अपन मकानमें पंखाएं चलायेंगे. पुराने जमानामें खसकी टाटी लगायी जाती हती. पानीको छिडकाव करे हैं. फुवाराएं चलाये जाते. ठंड पडेगी तो रूयीके पडदा लगाये जायेंगे. आज हीटर चलाये जाये हैं. मकान वो ही है पर वाकी सजावट ऋतुक्रमानुसार बदलती जाये है.

नित्यक्रम=स्थायीभाव; ऋतुक्रम=सञ्चारीभाव :

रसशास्त्रकी परिभाषामें या बातकु समझनी होवे तो अपन यों कह सके हैं के नित्यक्रम स्थायीभाव है और ऋतुक्रम सञ्चारीभाव है. नित्यसेवाके भावकु स्थायी रखते भये ऋतुक्रमानुसार वामें कुछ-कुछ अन्तर आतो होवे है. सञ्चारीभाव और स्थायीभावके बीच अन्तर आप ऐसे समझ सको हो के जैसे एक स्नेहको स्थायी भाव है. ये स्नेहको भाव कायम रहे है. पर वा स्नेहके कारण कभी अपनकु विरह होवे है कभी संयोग होवे है. कभी अपनकु दुःख होवे है कभी-कभी गुस्सा भी आतो होवे है. गुस्साभी आ रह्यो है वो या लियेके अपनेमें कोइकेलिये स्नेह है. स्नेह नहीं होवे तो गुस्सा भी करवेकी जरूरत क्या? स्नेहमें ही कभी हंसवेकी इच्छा होवे है तो कभी रोनेकी इच्छा होवे है. ऐसे भी नित्यक्रम एक स्थायीभाव है और ऋतुक्रम सञ्चारीभाव है.

जगनो सुबहमें ही है, सोनो रातकु ही है पर ऋतु क्रमके अनुसार अपन देखे हैं के गरमीमें जब अपन जगे हैं तब उजाला होवे है पर उतने ही बजे जब अपन ठंडीमें जगे हैं तब अंधेरा होवे है. ये अन्तर सजावटी है, खाका वो ही है.

देवो भूत्वा देवं यजते=मर्यादा

दूसरी समझवेकी बात यामें ये है के चक्रके आवर्तनमें जो चलती रहे है वाकु 'ऋतु' क्हयो जाय है. ये ऋतु अपने जीवनमें भी आवे है. वाकी अनुभूति अपनकु जैसे होवे है, वाके कारण सुख-दुःख अपनकु जैसे होवे हैं वो

सब अपने सेव्यप्रभुकु भी होवे है. रसशास्त्रकी दृष्टिमें याकु 'साधारणीकरण' कह्यो जाय है. साधनामें या बातको बहुत महत्व है. शास्त्र यों कहे है के **''देवो भूत्वा देवं यजते''**. जा देवको अपन यजन करे हैं वो यजन वा देवके जैसे बनके ही हो सके है. या बातकु आप यों समझ सको हो के जैसे महावीर स्वामी दिगम्बर हते तो जैन मुनीनूकु भी दिगम्बर होनो पड्यो. अब कोई दिगम्बरसु अपन ऐसी अपेक्षा रखें के वो महावीर स्वामीकु वस्त्र धरावे तो सोचो के खुद जो दिगम्बर है वाकु न तो वस्त्र धरावेकी व्यवस्थित समझ होयगी और न वामें वाकु मझा ही आयेगी. यासु ही शास्त्रने नियम बनायो के ''देवो भूत्वा देवं यजते''. देव जैसे होके देवको यजन करो. यहां ''देवके जैसे होके'' को मतलब क्या? देवको जैसो स्वरूप है, जैसे वाके गुण-धर्म हैं, जैसी वाकी लीलाएं हैं उन स्वरूप-गुण-धर्म-लीलाकु अपन जब तक अपनावेंगे नहीं तब तक वा देवके यजन-पूजनमें अपनकु चहिये जैसो आनन्द भी नहीं आयेगो और अपनो वामें इन्वोल्व्मेंट् भी नहीं होयगो. देवकी बात छोडो, साधारण बात बताउं हूं. आपकु कोई एक बच्चाकु खिलानो है. आप बच्चाकु खिलावेमें वाकु अखबार पढके सुनावे लगोगे तो बिचारो बच्चा भी परेशान हो जायेगो और आपभी परेशान हो जाओगे. क्योंके बच्चाको मन अखबारके समाचार सुनके बहलेगो नहीं. आज प्रधानमन्त्री वहां गये, वा देशके साथ प्रधानमन्त्रीने ये समझौता कियो ऐसी सब बातें सुनवेमें बच्चाकु रस नहीं आयेगो. बच्चा आपकु देखके भग जायेगो. पर यदि आप बच्चाके साथ बच्चाकु समझमें आवे ऐसी बातें करोगे बच्चा प्रसन्न हो जायेगो. आपकी आक्कल भले कितनी भी भारी होवे, आप सारे हिन्दुस्तानको बोझा अपने माथापे लेके घूमते होगे पर बच्चाकु खिलानेमें वो अक्कल काम नहीं आयेगी. बच्चाकु खिलानेमें तो बचपनाकी बातें ही काममें आयेंगी. हाथी, घोडा, बंदर की बातें ही काममें आयेंगी. तो बच्चाकु खिलानेकेलिये खिलानेवालेकु खुद पहले बच्चा बननो पडेगो. आप अपने अनुभवसु या बातकु समझ सकोगे के जो प्रौढ आदमी जितनी जल्दी बच्चाके रुचि और स्वभाव के अनुरूप बातनूकु एडॉप्ट् कर सके है उतनो वो बच्चाके साथ अपनो मेल-मिलाप तेजीसु बढा सके है. और जो अपने बडप्पनके ठसकामें रहे वासु बच्चा दूर भागतो रहे है.

और अन्तमें बच्चा और वाके बीच दूरी बढती चली जावे है.

''देवो भूत्वा देवं यजते''की बात जैसे बच्चापे लागू होवे है ऐसे ही ये बात राजाके उपर भी लागू होवे है. यदि कोइकु राजाकी सेवा करनी है तो राजसी वैभवसु वाके सेवककु भी रहनो पडेगो. करके दयारामभाइने कितनी अच्छी बात कही है : *''रीझे राबडी थकी गरीब लोक रे, भोगीने नव भावे रे, अमो तो राजना खासा खवास, मुक्ति मन न आवे रे''*. ये क्या है? ''देवो भूत्वा देवं यजते'' ये सिद्धान्त है. याही लिये पुराने जमानामें राजानूके अन्तरंग सेवक राजाके साफा-पगडीके जैसे ही साफा-पगडी पहनते. अपने किशनगढके राजा साफा पहनते तो यहांके दरबारी भी साफा पहनते. मेवाडके राजाएं पगडी पहनते तो वहांके दरबारी भी पगडी पहनते. अपने यहां गनगोरकी सवारी निकलती तब पीली गनगोरकी सवारीमें सब लोग पीले कपडा और पीले साफा पहनते. गुलाबी गनगोरकी सवारीमें गुलाबी पहनते. ये सब क्या है? ''देवो भूत्वा देवं यजते''को सिद्धान्त है.

शिवजीके भक्त त्रिपुण्ड्र क्यों लगावे हैं? क्योंके शिव त्रिपुण्ड्र धारण करे हैं. अपन क्यों तिलक लगावे हैं? क्योंके अपनो कृष्ण तिलक धारण करे हैं. अपने हाथ चार नहीं हैं. पर नहीं हैं तो भाडमें गये, भले दो ही रहे. पर प्राचीन कालमें अपन वैष्णवनूमें ऐसी प्रणाली हती के वैष्णवें तिलक करते बखत अपने दो हाथनूपे शंख-चक्र-गदा-पद्मकी छाप लगा लेते. हमारे विष्णुके चार आयुध हैं, हमारे चार हाथ नहीं हैं तो कुछ नहीं हम आयुधकी छाप ही लगा लेंगे. ये क्या है? ''देवो भूत्वा देवं यजते''को सिद्धान्त है. अपने पूज्यकु ऐसो नहीं लगनो चहिये के मेरो अर्चक कोई दूसरी जातको है. बच्चाकी टोलीमें बच्चा मिल सके है, गानेवालेकी टोलीमें गानेवालो मिल सके है ऐसे जा देवकी जैसी टोली है वा देवकी टोलीमें मिलवेकेलिये अपनेमें वैसो स्वरूप, गुण, स्वभाव, व्यवहार लानो पडेगो. नहीं तो अपन देवको पूजन कर नहीं सकेंगे. पूजन-यजनको ये प्राचीन सिद्धान्त है.

रामानुज सम्प्रदायके लोग अपने माथापे तीन रेखावालो तिलक क्यों लगावे हैं? क्योंके उनके बालाजी (विष्णु), श्रीरङ्गजी वैसो तिलक लगावे हैं. ये कोई धर्मको ही सिद्धान्त होवे ऐसी बात नहीं है. अपने व्यवहारमें भी ये ही बात है. स्कूलमें युनिफॉर्म होवे है, विमान कम्पनीमें भी युनिफॉर्म होवे है, वकीलें कालो कोट पहनते होवे हैं ... ये ' 'देवो भूत्वा देवं यजते''को ही सिद्धान्त है.

भक्तके जैसे बनके भक्तकी सेवाको अङ्गीकार=पुष्टि

पुष्टिमार्गमें या सिद्धान्तकु छोडे बिना यामें कुछ विशेषता भी जोडी गयी है. देवके जैसे बनके देवकी सेवा करें ये तो मर्यादा है. पर अपन जैसे हैं वैसे अपनेसु सेवा देव लेवे वाको नाम 'पुष्टि'. याही लिये अपन शबरीके प्रसङ्गमें रामचन्द्रजीकी पुष्टि क्यों माने हैं? क्योंके शबरी ऐसी हती के वाकु न आचार-क्रियाको कोई ज्ञान हतो न शास्त्रकी कोई समझ हती. वाकु तो बस इतनो ज्ञान हतो के रामचन्द्रजीके अरोगवेमें कोई खट्टो बेर न आ जाये. ऐसी शबरीके साथ यदि भगवान्‌कु राम बननो नहीं आतो होवे तब तो फिर ये पुष्टिकी बात नहीं भयी, मर्यादाकी बात हो गयी. राम यदि ऐसो आग्रह रखें के मैं शबरीके बेर तब ही अरोगुं के जब शबरी मेरे जितनी शुद्ध होवे, मेरे जितनी अपरस पाले नहीं तो धत् तेरेकी ये तो मर्यादा हो गयी रामावतारमें 'पुष्टि' क्या भयी? शबरीके जूठे बेर खाये. वहां 'देवो भूत्वा देवं यजते''की मर्यादाको विलोपन नहीं है पर साथ-साथ भक्त जैसो है वा तरहकी मर्यादा देव भी निभाने तैयार हो रह्यो है. याको नाम 'पुष्टि' है. ऋतुक्रमकी सेवाको रहस्य समझो के भगवान् अपनकु श्रीरामकी तरह कह रहे हैं के तोकु कौनसी ठंड तकलीफ देवे है? कैसी गरमी तोकु तकलीफ देवे है? तु ठंडी-गरमी-बरसातको क्या इलाज करे है? ठंडीमें तु कैसे जगे है? गरमीमें तु कैसे जगे है? ठंडीमें तु कैसे सोवे है? गरमीमें तु कैसे सोवे है? बरसातमें तु कैसे रहे है? मोकु भी तु वा तरहसु रख. तो देखो, यहां ' 'भक्तो भूत्वा भगवान् सेव्यो भवति'' है. भगवान् भक्तको रूप धारण कर रहे हैं. ख्यालमें आयो? ' 'देवो भूत्वा...''की मर्यादा तो है ही. वाको अपन विरोध नहीं कर रहे हैं. अपन तिलक-छापा लगावे हैं. अपन उन सब मर्यादान्‌को पालन करे हैं. अपने यहां

वो मर्यादा कहां है वाकु समझो.

अपनो ठाकुर व्रजको ठाकुर है यासु अपन वा ठाकुरकी सेवा व्रजलीला गाके करे हैं. अपन अपनी लीला सेवामें क्यों नहीं गावे हैं? जैसे अपन ठाकुरजीकु जगावें तब यशोदाजीके पद गाके जगावे हैं. अपन ऐसे गीत नहीं बना सकें के ' 'मेरो लाल तु जग''. ललितजी गावें के ' 'ललितको लाल तु जग''. शिवराजजी कहें के 'शिवराजको लाल तु जग''. श्याम मनोहर गावे के ' 'श्याम मनोहरको लाल जग''. ऐसो अपन नहीं गावे हैं. अपन यों ही गायेंगे के 'यशोदाको लाल जग''. ये ' 'देवो भूत्वा देवं यजते''को सिद्धान्त है. या मर्यादाकु अपन छोड नहीं रहे हैं, वाकु अपन तोड नहीं रहे हैं. पर क्योंके अपनो देव केवल मर्यादाको स्वरूप नहीं है, पुष्टिको स्वरूप है. यालिये अपनो देव भी कहे है के तु मेरी व्रजकी मर्यादाको पालन कर रह्यो है तो मैं तेरी मर्यादाको पालन करूंगो. तोकु गरमी लगे है तो वाकु तू दूर कैसे करे है? मेरी भी गरमी तू वैसे ही दूर करे. करके दामोदरदासजीकी वार्तामें आपने पढ्यो होयगो के ठाकुरजीने दामोदरदासजीकी दासीकु जतायो के तुम सब गरमीमें रातकु हवादार जगहमें रात बिताओ हो और मोकु हवा नहीं आवे ऐसी जगह पौढाओ हो ये क्या बात भयी? ये मर्यादा है के पुष्टि. ...

हमारे मथुराधीशके घरमें शयनभोगमें पूडीको नेग बंध्यो भयो हतो. एक समय ऐसो भयो के घरमें बालकन्‌की संख्या बढ गयी. ठाकुरजीकु तो बंधे नेग जितनी ही पूड़ी भोग आती. उतनी पूड़ी तो ठाकुरजी पीछे घरमें सबकु पूरी नहीं पड़ती. याको समाधान ये सोच्यो के उपर अलगसु रोटी बना लेनी. दादीमां नित्य सब बच्चान्‌कु भोजन कराते. एक दिन मथुराधीशजीने दादीमांसु कही के मोकु भी रोटी अरोगनी है. दादीमां मथुराधीशजीकु प्यारसु 'मधुमा' कहते. दादीमांने पूछी के तुम कौनसे बावा हो. मथुराधीशजीने कही के मैं तुम्हारो मधुमा हूं. दादीमांने कही के तुमकु तो घीकी पूड़ी अरोगादी हती मथुराधीजीने कही के आपके सब बावा रोटी अरोगे हैं तो मोकु भी रोटी अरोगवेकी इच्छा होवे है. अब सोचो के भगवान् क्या रोटी-पूड़ीको मोहोताज

है? नहीं. बात ' ' भक्तो भूत्वा भक्तेन सेव्यते''की है. जैसे ' देवो भूत्वा...''को सिद्धान्त है वैसे ' ' भक्तो भूत्वा भक्तेन सेव्यते'' सिद्धान्त पुष्टिको है. करके प्रभु अपनो ऋतुक्रम स्वीकारे हैं. ये रहस्य ध्यानमें लेनो चहिये. तुमकु ठंड लग रही है तो मोकु भी ठंड लगे है. तुमकु गरमी लगे है तो मोकु भी गरमी लगे है. यहां प्रभु अपनो क्रम स्वीकार रहे हैं. यासु एक बात समझो के नित्यक्रम मर्यादा है और ऋतुक्रम पुष्टि है. प्रभु वामें अपनी भक्तके साथ अनुरूपता प्रकट कर रहे हैं. भक्त जैसी ऋतुकी तकलीफकु अनभवे है और जैसे वाकु दूर करे है वैसे ही वो वा ऋतुमें मेरी भी तकलीफकु दूर करे. ये पुष्टि. ये उत्कर्षकी बात है के प्रभु भक्तके स्तरपे अपने आपकु सोचे हैं और ऋतुक्रमके अनुसार अपनेसु सेवा लेवे हैं. अपने यहां ऋतुक्रममें निश्चित मर्यादामें सेवाको प्रकार नहीं है के ठंडके दिन होवें तब भी बद्रिनाथजी जैसे सवेरे चार बजे गजके ठंडे जलसु स्नान करे हैं. ऐसो क्रम अपने यहां नहीं है. अपने यहां मर्यादाको प्राधान्य नहीं होके पुष्टिको प्राधान्य है. या लिये मैने अपकु वा दिन एक बात बतायी हती के ठाकुरजीकु प्रतिदिन गरम जल समोके समोये भये जलसु स्नान करानेकी पद्धति है. पर वो समोयो जल कितनो समोयो माननो वाकी अपनी प्राचीन सोच गझब हती. अपन जलमें सीधी उंगली डालके जल नहीं देखे हैं पर उंगलीकु जलमें उलटी डालके जलकी गरमी नापे हैं. क्योंके उंगलीके आगेकी चमडी और ऊपरकी चमडी में अन्तर होवे है. आगेकी चमडी घिसी भयी पक्की होवे है. वो अधिक गरमी भी सहन कर सके है. पर ऊपरकी चमडी कोमल होवे है. पैरके नीचेकी चमडी कठोर होवे है. बर्फपे पैर रखोगे तो बर्फ उतनो नहीं चुभेगो. पर यदि पैरके ऊपरकी चमडीपे बर्फ रखोगे तो चुभेगो. यासु अपनने बारीकीसु या बातको विचार करके समोयो जल सुहातो है के नहीं वाकु जांचवेकी ये प्रणाली नक्की करी. ठाकुरजी पुष्टिभक्तकु ये कह रहे हैं के यदि तोकु जल सुहा रह्यो है तो मोकु भी सुहायेगो. और यदि तोकु नहीं सुहावे है तब फिर मोकु कैसे सुहायेगो? ये पुष्टि है. ये बडी मीठी बात है. ये ' ' पढ-पढ पोथी जग मुआ ...'' जैसी बात नहीं है.

मैं आपकु एक स्पष्ट बात बताउं हूं के अपनो इतनो बडो

सौभाग्य है के श्रीगुसांईजीके जैसो सेवाको प्रवर्तक आचार्य अपनकु मिल्यो के जाने नित्यसेवाक्रममें ऋतुक्रमकी इतनी बारीकियें सोची हैं. पर साथ-ही-साथ यासु बढके अपनो कोई दुर्भाग्य भी नहीं है के उन बारीकीन्को स्वारस्य अपनने समझ्यो ही नहीं और रीतकी पुस्तकें लिख-पढके अपन ठाकुरजीके पीछे पड गये के लिख्यो है न के या ऋतुमें या दिन ऐसी ही सेवा होयेगी. पर भाइ सोचो के अब वो ऋतु कहां है? आज सब ऋतुएं बदल गयी हैं. मैं आपकु सीधीसी बात बताउं हूं के मोकु अपने बचपनकी बात याद है के बम्बइमें ठंडीमें माथेमें डालनेको तेल जम जातो हतो. माथेमें डालवेसु पहले वाकु गरम करनो पडतो हतो. पर आज स्थिति दूसरी है. अब तेल जमे नहीं है. अभी किशनगढमें तेल जमे है. पर अपन जा ढंगसु आगे बढ रहे हैं वाकु देखते ऐसो लगे है के किशनगढको भी कुछ साल बाद बम्बई जैसो हाल होयगो. ऋतुके परिवर्तनकु सोचे-समझे बिना अपन ठंड नहीं होवे तब भी ठाकुरजीके सामने जबरन सिगडी धरें, गदड धरावें... ठाकुरजीके पीछे ही पड जायें तो ठाकुरजीकु भी सफोकेशन् हो जायेगो.

रीतको अन्धानुकरण विचारणीय :

श्रीगुसांईजीने जो सोच्यो हतो वो तो प्रभुकी पुष्टिको परम रहस्य हतो. सुहाते वस्त्र, सुहातो भोग, सुहाते श्रंगार, सुहातो राग, सुहातो समय ... प्रभुकी सेवामें सब वस्तु सुहाती समर्पो ये जो श्रीगुसांईजीने सोच्यो हतो वो तो पुष्टिकी बात हती. पर आज वो सब ऋतुएं बदल गयीं. अब अपन सुहातेको विचार तो करें हैं पर ऋतुको विचार नहीं करे हैं. चोपडीमें लिख्यो भयो है के आजके दिन ये होयगो तो ये ही होयगो, ऋतु चाहे जैसी होवे. ये कैसी बात है?

एक प्रदेशमें पानीकी कमी हो गयी. चुनाव आये तब लोगनने कही के पानी दो तो वोट दें. मिनिस्टरने वहां बांध बनानेकी योजना प्रस्तावित कर दी. बांधकेलिये अनेक कमिटियें बनीं. कमिटीन्ने अनेक रिपोर्ट बनायी. बांधको काम शुरु भयो. पर जब बांध बनके तैयार भयो तब तक वहां नदी ही

बहनी बंध हो गयी. अब बांध क्या कामको? ऐसे ही अपनो ये दुर्भाग्य है के अपनने ऋतुक्रमकी बारीकीनूकु नहीं समझ्यो है. अपन भी ऐसो ही कर रहे हैं. नदी बहनी बंध हो गयी है पर बांध अपन बनाये जा रहे हैं. ऋतुएं बदल गयी हैं पर अपन वाको विचार किये बिना रीतमें लिखे अनुसार काम करे जा रहे हैं. आप सोचो के श्रीगुसांईजीने 'सुहाने'को जो थर्मोमीटर सोच्यो हतो वो कितनो सुन्दर, सरस हतो के जामें प्रभुकी पुष्टि झलकती हती. अपनी चमडीकु सुहावे वो प्रभुकु सुहावे ''भक्तो भूत्वा भक्तेन सेव्यो भवति''. तोकु जो सुहावे वो तु मोकु धर. ये भगवान्के भक्त होनेकी प्रक्रिया है. जैसे ''देवो भूत्वा देवं यजते''की मर्यादा है ऐसे 'भक्तो भूत्वा भक्तेन सेव्यो भवति''की पुष्टि है. ये अपने सम्प्रदायकी सेवाको रहस्य हतो. अपनने वा रहस्यकु भुला दियो.

आज अपन रीतके कोरे पंडित हो गये हैं. अपन कोई हिल्-स्टेशन्पे रह रहे हैं. वहां अक्षयतृतीयाको दिन आयो. रीतमें लिख्यो है के ठाकुरजीकु चन्दन धरानो. घिस-घिस चन्दन अपन ठाकुरजीकु चन्दनको लेप करेंगे. ठाकुरजी कह रहे हैं के यहां गरमी कहां है? बम्बइमें अपन रह रहे हैं. ठंडके दिन आये. रीतमें लिखे अनुसार अपन ठाकुरजीकु गदड, फरगुल, आत्मसुख, रजाइ, अंगीठी, सोहागसूंठ समर्पवे लग गये. पर सोचो बम्बइमें अब वैसी ठंड कहां है? श्रीगुसांईजीने जो ऋतु अनुसारी सेवा बताई हती वामें ठाकुरजीकी जो पुष्टि बताई हती अब वो पुष्टि वहां नहीं है. अब वामें एक भयंकर मर्यादा प्रकट हो गयी है जब अपन विचार किये बिना रीतकु अनुसरवे लगे हैं.

ये बात मैं आपकु भार पूर्वक और वारंवार या लिये बता रह्यो हूं के ऋतुक्रम एक फूलके जैसो नाजुक है. यदि वाकु पकडनेको अंदाज नहीं आयो तो वाको सौन्दर्य-सुगन्ध सब खत्म हो जयेंगे. फूलकु जहांसु पकड्यो जाय है वहांसु यदि वाकु आप पकडो हो तो वामें फूलकी भी शोभा होयगी और वाकु पकडवेवाले हाथकी भी शोभा होयगी. और फूलकु देखते ही यदि आप वाकु अपनी मुठ्ठीमें दबा लोगे तो फूलकी शोभा भी खत्म हो जायेगी और वाकी

सुगन्ध भी मर जायेगी. ऐसे ही ऋतुक्रमकी सेवाके भावात्मक सौन्दर्यकु खत्म मत करो. श्रीगुसांईजीने ऋतुक्रमकी सेवामें जो पुष्टिको सौन्दर्य प्रकट कियो है, जा परमानन्दकु प्रकट कियो है वाको अनुभव करो तो ऋतुक्रमकीसेवा सार्थक बनेगी.

मैने पहले आपकु एक बात बतायी हती के ऋतुक्रमकी सेवामें क्या-क्या चीजें बदलें हैं और कैसे बदले हैं. या बातकु आप फिरसु समझो.

ऋतुक्रममें राग :

सबसु प्रथम ऋतुके बदलनेके साथ राग बदले है. राग कैसे ढंगसु बदले है? अपनकु जो राग जा ऋतुमें जा समय गानो-सुननो अच्छो लगे है वा रागकु वा ऋतुमें वा समय गाके अपन प्रभुकी सेवा करे हैं. जो राग अपनकु जागनेके समय अच्छो लगे है वा रागमें पद गाके अपन ठाकुरजीकु जगावें हैं. ठाकुरजीकु जगावेसु पहले अपन कछुक तैयारीएं करते होवे हैं. या तैयारीको रहस्य आदमीकी सोवे-जगवेकी प्रक्रियासु समझमें आयेगो. जब अपन सोते होवे हैं तब सारी रात तंद्रा, स्वप्न और निद्रा; तंद्रा, स्वप्न और निद्रा ऐसो चक्र सतत चलतो रहे है. तंद्रावस्थामें अपन बोल नहीं सके हैं, कोई पूछे तो वाको उत्तर नहीं दे सके हैं पर पूछनेवालेके शब्द अपनकु सुनाई देते होवे हैं. समझमें भी आते होवे हैं. स्वप्नावस्थामें परन्तु अपनकु सुनाई देनो भी बंद हो जातो होवे है. निद्रावस्थामें अपनकु स्वप्न भी अच्छी तरहसु समझमें नहीं आते होवे हैं. या तरहसु सोते समय तंद्रा, स्वप्न और निद्रा को चक्र चलतो रहेतो होवे है. कभी तंद्रा आवे कभी निद्रा आवे तो कभी स्वप्न आवे है. जागनेके अथवा जगानेके सम्बन्धमें एक हकीकत ध्यानमें रखनी चहिये के निद्रामेंसु जागनो आदमीकु कष्टदायक होवे है. पर तन्द्रामेंसु जागनो आदमीकु सुखद होवे है. यासु अपनी निद्रा जब तन्द्रामें परिवर्तित होवे वा बखत यदि अपन जगें तो अपनकु ताजगी लगेगी, शरीरमें स्फूर्ति लगेगी. पर यदि कोई अपनकु गहरी निद्रामेंसु अचान जगा देवे तो जगेवेके पीछे न अपनो दिमाग काम कर सके है और न सोवेके पीछे जैसी ताजगी आनी चहिये वैसी

ताजगी ही आ पाती होवे है. या बातको विचार करके अपने यहांकी सेवाके क्रममें ठाकुरजीकु जगानेसु पहले सीधे जगावेके पद नहीं गाये जायें हैं. यासु पौढे भये ठाकुरजी अपनी निद्रावस्थामेंसु तन्द्रावस्थामें जा तरहसु आवें वा तरहसु पद अपने यहां पद गाये जायें हैं. यालिये अपन प्रारम्भमें श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी, श्रीयमुनाजी के पद गाके पीछे ठाकुरजीकु जगाते होवे हैं. उन पदनकु गानेके भी कोई तरीका हैं. वो पद वधाइ-कीर्तनकी तरह नहीं गाये जायें हैं. अपन गुनगुनाते होवें ऐसे मन्दस्वरमें गाये जायें हैं के जासु ठाकुरजी निद्रावस्थामेंसु तन्द्रावस्थामें पहले आवें.

या बातकु ध्यानसु समझो के अपन सोते होवें वा बखत घरमें कोई चलनो-फिरनो, गुनगुनानो शुरु करे तो अपन भी निद्रामेंसु तन्द्रामें आ जाते होवे हैं. और जब अपन तन्द्रामें आ जावें तब कोई अपनसु कहे के ''उठो, लो चाय पीयो'' तब अपनकु चाय पीनेमें स्फूर्ति आयेगी. और याके बजाय कोई सोते भयेकु उठाके बैठा दे और हाथमें चाय पकडा देवे ''ले पी'' तो चायकु देखके भी सुस्ती आ जायेगी. क्यों? क्योंके अपनो जागरण तन्द्रामेंसु नहीं भयो है, निद्रामेंसु सीधो जागरण भयो है. बात फिरसु समझो के ये सिद्धान्त अपने शरीरसु जुड्यो भयो है. फिर भी प्रभु याकु स्वीकार रहे हैं ये कितनी बडी अपनेपे प्रभुकी पुष्टि है प्रभुमें तो या तरहके कोई शारीरिक विकार नहीं हैं. फिर भी प्रभु कह रहे हैं के ''भक्तो भूत्वा भक्तेन सेव्यो भविष्यामि''. तू जैसे जगे है ऐसे ही मैं भी जगुंगो. तोकु तन्द्रामेंसु जगनो सुहावे है तो मोकु भी तु पहले निद्रामेंसु तन्द्रामें ला और पीछे जगा. यासु ही अपने यहां कीर्तनके क्रममें ठाकुरजीकु निद्रामेंसु तन्द्रामें लानेकी प्रक्रिया बतायी गयी है. या प्रक्रियाके तहत अपन नित्यक्रममें ठाकुरजीकु जगावेसु पहले श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी, श्रीयमुनाजी आदिके पद गुनगुनावे हैं. और जगाते बखत जगावेके पद गाते होवे हैं. जगावेके पद गुनगुनाये नहीं जायें हैं. वो पद गानेके सामान्य ढंगसु गाये जायें हैं.

रागके तहत ठाकुरजीकु जगानेको ये नित्यक्रम है. ये क्रम तो सभी

ऋतुमें कायम रहे है पर ऋतुके बदलनेके साथ रागमें बदलाव आवे है. शीतकालमें जगाते समय अपन ललित राग गावे हैं. वसन्त ऋतुमें वसन्त राग गावे हैं. उष्णकालमें जगाते समय अपन बिभास, रामकलि आदि राग गायेंगे. रागको ऐसो बदलाव क्यों होवे है? क्योंके वा ऋतुमें अपनकु वो राग सुखद होवे है. ये बात ऐसी है के जाकु रागकी समझ होवे, रागके स्वरूपके अनुसार वाकु ऋतुके साथ जोडके कौनसो राग कौनसी ऋतुमें सुखद होवे है, कौनसो कष्टप्रद होवे है ये जो अनुभव सके वाकु ही या क्रमकी महत्ता समझमें आ सके है. जाकु ये समझ नहीं है वाकेलिये सब राग इकसार हैं.

एक मजाकिया बात है पर या बातकु समझवेकेलिये कह रह्यो हूं. अपन श्राद्धके दिन गोग्रासमें खीर आग्रहसु रखते होवे हैं. मैने अनुभव कियो है के जब भी मैं गोग्रास खवावे जातो तब गाय दूसरी सब वस्तु बडे स्वादसु खा लेती पर जैसे ही खीर आती सो ही गाय मुंह फेर लेती. दूध वाको अपनो ही होवे है पर वामें जब अपन शक्कर मिलाके वाकु पिवावे हैं तब वाकु अपनो दूध भी अच्छो नहीं लगे है. तो सबके अपने-अपने स्वाद हैं. ऐसे ही जो राग अपनकु पसंद आ रहे हैं वो ही पसंद आयेंगे दूसरे पसंद नहीं आयेंगे. जैसे, गुजरातमें एक 'प्रभाती' नामको राग है. जो लोग प्रभातिया गाते होवे हैं उनकु जाके अपन कहें के तुम सवेरे मालकोंस गाओ, ललित गाओ. उनकु वो पसंद नहीं आयेंगे. ऐसे ही यहां राजस्थानमें एक 'मांड' नामको राग है. यहांके गीतनुकु 'मांड'रागमें गानेसु जो तन्मयता आवे है वैसी तन्मयता दूसरे कोई रागसु आनी बहुत मुश्किल है. या बातकु समझो. अपने यहां नागरीदासजी भये. नागरीदासजीकु जो राग पसंद हते उन रागन्मे उनने कीर्तन बनाये. सूरदासजीने अपनी पसंदके रागन्में कीर्तन बनाये. ऐसे सभी भक्त कवीन्ने अपनी-अपनी पसंदके रागन्में पद बनाये हैं और वैसे ही प्रकारसु गाये हैं. उनके ठाकुरजी उन पदनकु उन रागनमें सुनके रीझे हैं. पर जब रूपा पौरियाके गावेपे जब गोविन्दस्वामीने आपत्ति उठायी तो ठाकुरजी सारी रात पौढे नहीं. सुबह ठाकुरजीके नेत्र लाल हते. श्रीगुसांईजीने जब कारण पूछ्यो तब ठाकुरजीने कह्यो के रूपा पौरियाकु गोविन्दस्वामीने गाने नहीं दियो

या लिये मोकु नींद नहीं आयी. श्रीगुसांईजीने गोविन्दस्वामीसु पूछ्यो तो उनने कही के वो गावे कहां है, वो तो चीखे-चिल्लावे है यासु मैने रोक दियो. श्रीगुसांईजीने कही के जब स्वयं ठाकुरजीकु वाको चीखनो-चिल्लानो अच्छो लगे है तब तुम रोकने-टोकनेवाले कौन हो? तो देखो के ये बात रीझानेवालेकी और रिझवारकी आपसकी बात है. यामें अपन पढ-पढ पोथी पंडित बनवे जायेंगे तो वो बात नहीं चलेगी.

श्रीगुसांईजीने विभिन्न रागनमें प्रभुके सुखको जैसो अनुभव कियो वैसे ढंगसु कीर्तन प्रणालीमें आपने ऋतु-समयानुसार रागन्को क्रम व्यवस्थित कियो. ये बडी उमदा प्रणाली है. याके पंडित बनवेकी जरूरत नहीं है. याके पीछेकी भावनाकु समझनो चहिये.

शीतकालमें अपने यहां मालकोंस, ललित या टोडी राग अपन गावे हैं. पर जब वसन्त ऋतु आनेवाली होवे है तब अपन ललित-मालकोंस-टोडीमेंसु सीधी छलांग वसन्त रागपे नहीं लगावे हैं. क्योंके ऐसो करेंगे तब तो झटका लगेगो. ये झटका निद्रासु तन्द्रामें आये बिना जागनेपे लगवेवालो झटका होयगो. ऐसो नहीं होवे वाकेलिये अपने यहां एक पद्धति घडी गयी. यासु वसन्तकी अगवानीके पद अपन हिंडोल, पञ्चम जैसे रागनमें गावें हैं. ललित और मालकोंस रागकु आजु-बाजुमें जमाओगे तो आप अनुभव होयगो के हिंडोल, पञ्चम आदि राग उन दोके बीचमें रखने जैसे राग हैं. दौडती गाडीकु यदि एकदमसु मोडदी जाये तो यात्रीकु झटका लगतो होवे है. ऐसेमें गाडीके उलट जानेकी सम्भावना भी रहे है. यासु मोडवेसु पहले गाडीकु थोडी धीरी करनी पडे है. ऐसे ललित-टोडी-मालकोंससु वसन्त रागपे आनेसु पहले बीचमें पञ्चम-हिंडोल गाके अपन अपने गलाकु सेट् करे हैं. और फिर धीरेसु अपन वसन्तकी ओर बढे हैं.

''और राग सब भये बराती, दुल्हे राग बसन्त,
नयी ऋतुको आगमन सखीरी बिदा भयो हेमन्त,
... गावत नारी ऊंचे पञ्चम स्वर ऐसो ही गुणवन्त''.

ऐसे पञ्चम गाके वसन्तपे आयो जाय है. ये तन्द्रामेंसु वसन्तके जागरणकी एक प्रक्रिया है. ये बडी डेलिकेट् प्रक्रिया है. अब देखो के रागके गानमें भी कितनी सूक्ष्मता अपने यहां सोची गयी है. वसन्त ऋतुमें अपन वसन्त राग ही गावे हैं. पर जब प्रातःकालमे अपन ललितवसन्त गायेंगे. क्योंके प्रातःकालको वातावरण ललित रागके अनुरूप होवे है. दोपहरमें अपन ललितवसन्त नहीं गाके शुद्ध वसन्त गावें हैं. और सन्ध्या समय अपन हिंडोल वसन्त गावे हैं. वसन्त तो वसन्त ही है. पर समयके अनुरूप रागन्को वसन्तमें मिश्रण करके अपनने वामें भी बारीक विशेषता प्रकट करी है.

याके पीछेको सिद्धान्त समझो. जैसे अभी गरमी पड रही है. समझो के अभी बद्दल आ जायें, खुब बरसात पडे, खुब ठंडक हो जावे. सबकु जुकाम (शरदी) हो जायेगो. याके ठिकाने, ठंडी चाहे कितनी भी पडे पर यदि धीरे-धीरे बढती जावे तो कोइकु जुकाम नहीं होयगो. ऐसे ही यदि अपन हवाई जहाजसु सीधे बद्रिनाथपे उतरें तो जुकाम होय बिना नहीं रहेगो. पर जमीनी मार्गसु थोडी-थोडी ठंड अनुभवते भये अपन बद्रिनाथ तो क्या एवरेस्टपे पहुंच जायें तब भी जुकाम नहीं होयगो. क्योंके अपनो शरीर अभ्यास मांगे है. आंखके बारेमें भी ऐसो ही है. अभी एकदम उजाला है. मानो के अचानक बिजली चली गई. अपनकु बिलकुल दीखनो बंध हो जायेगो. थोडी देर पीछे अंधेरामें भी पाछो अपनकु दीखनो शुरु होयगो. पर यदि अपन बिजली जलाके नहीं बैठे होवें और धीरे-धीरे अंधेरा होवे तो चाहे कितनो ही अंधेरा होवे फिर भी अपनी आंख कुछ तो देख ही सके. ऐसो ही अंधेरामेंसु उजाला होनेपे भी होवे है. अचानक उजाला होवे तब भी अपनकु दिखलाई देनो बंध हो जातो होवे है. पर सूर्योदयसु पहले जब थोडीसी पो फटे है तब आसमानमें आप देखोगे तो पश्चिमी आसमान कालो दीखेगो और पूर्वी आसमान उजलो दीखेगो. धीरे-धीरे वा उजले आकाशमें लाली आनी शुरु होयगी. वा लालीमेंसु धीरे-धीरे पीलो सूरज उगनो शुरु होयगो. सूरजके उगते ही वाकी किरणें नहीं दिखलाई देवे हैं. किरणें तो सूरज थोडो उपर आवे पीछे दिखलाई देती होवे हैं. थोडी देर पीछे सूरजकी किरणें

धूप फेंकवे लगे हैं. एकदम मध्याह्नमें सूरज ताप फेंकवे लगे है. ये सब प्रक्रिया धीरे-धीरे होवे है करके अपनेसु वो सहन हो सके है. याके ठिकाने ऐसो होवे के अपन सोये भये हैं और अचानक सूरज माथापे आ गयो तो अपन सब परेशान हो जायेंगे. पर वो ही जब धीरे-धीरे आवे है तो अपन वाकु सह सके हैं. ऋतु-कालकी इन बारीकीकु सोचके, वाकी मन्थर गतिकु ध्यानमें रखके अपने यहां सारे राग बनाये गये हैं.

ऋतुक्रममें ताल :

ठाकुरजीकु जगाते बखत अपने यहां ताल नहीं बजावें हैं. क्यों नहीं बजावे हैं? क्योंके तालमें एक तरहको टेन्शन् होवे है. तालके बिना केवल लयकु पकडके गानेसु सारो टेन्शन् खत्म हो जावे है. वामें एक तरहकी सहजता-सरलता आ जाती होवे है. एक ही पद : ''दृढ इन चरणन केरो भरोसो'' आप तालके साथ गाओ और वाकु ही आप बिना तालके गाओ, बहुत अन्तर पडेगो. तालके साथ बजते गीत-सङ्गीतमें आप सो नहीं पाओगे और वोही गीत जब बिना तालके बजे तो नींद नहीं आती होयगी तो भी आ जायेगी. मांकी लोरीकु सुनके बच्चाकु जैसे सोवेकी इच्छा होवे लगे है ऐसे अपनकु भी सोवेकी इच्छा हो जाती होवे है. बिहाग रागमें वो तासीर है के यदि वाकु आप तालसु उतारके गाओ तो वो नींद ला सके है. वो ही बिहागकु जब आप तालपे चढाके, झिंचक्-झिंचक् झांझ और पखावजके साथ गाओ तो वो नींदकु खत्म भी कर सके है. इन बातनको विचार करके ही अपने यहां नियम बना दियो गयो है के ठाकुरजी जब तक स्नान करके शृङ्गार धर नहीं लें तब तक तालवाद्यको उपयोग नहीं करनो, केवल लयमें गुनगुनानो. क्योंके बडेन्ने ये भाव विचार्यो है के जब ठाकुरजी स्नान करके शृङ्गार धर लेवे हैं तब ठाकुरजीकु तालको टेन्शन् रुचिकर लगवे लगे है. क्यों? क्योंके जब अपनेमें स्फूर्ति आ गयी तब फिर कोई टेन्शन्को काम भी अपन कर सके हैं. आप एक प्रयोग कर देखो. सवेरे उठते ही आप अपने घरमें सबकु काममें लगादो के तू ये कर, तू वो कर, जल्दी करो, देर हो जायेगी ... थोडी ही देरमें घरके सब लोग परेशान-परेशान हो जायेंग. पर वो ही काम जब घरके लोग स्वस्थ हो जावें

पीछे आप बताओगे तो वो परेशान नहीं होयेंगे. ऐसे ही रागके क्रममें अपन धीरे-धीरे तालकु लावें तो वो सुरीलो लगे है. तालमें गानको क्रम भी पाछो बदले है. याको भी रहस्य समझो. जब कोई उत्सव नहीं होवे या बधाई बैठी नहीं होवे तब अपन तालको केवल ठेका बजाते होवे हैं, झांझ नहीं बजावें हैं. क्योंके झांझ तालकु अधिक उभारनेवालो वाद्य है. पखावजमें वो ताल उतनी नहीं उभरे है के जितनी झांझसु उभरे है. उत्सवको मतलब टेन्शन् है. ये मीठो टेन्शन् है. टेन्शन् दोनों तरहके होवे हैं: मीठे भी और कडवे भी. घरमें ब्याहको प्रसङ्ग है तो मीठो टेन्शन् होवे है के ये करो, वो करो, यहां जाओ, वहां जाओ ... तो उत्सव जब उत्सव होवे है तब अपन झांझ बजाते होवे हैं. झांझसु ताल सवायी बन जाती होवे है. पर जब उत्सव नहीं है, नित्यक्रम है तब ठाकुरजीने स्नान नहीं कियो होवे तब तक अपन केवल लयके साथ कीर्तन करे हैं. वाके पीछे अपन झांझके बिना तालके ठेकापे कीर्तन करे हैं.

आश्रयके पदमें अपन ताल नहीं बजावे हैं वाको भी कारण समझो. क्योंके आश्रके पद गावेमें दैन्यभाव आवश्यक होवे है. उन पदनकु गावेमें भिडंतको भाव नहीं होनो चहिये. एक बखत मैं इन्दौरवाले बेटीजीके ब्याहमें बसमें जा रह्यो हतो. वो वी.डी.ओ. कोच् बस हती. वाकु देखते ही मैं परेशान हो गयो. मेरे जीवनमें ऐसी दुःखद यात्रा कभी नहीं भयी. बसवालेने अमिताभ बच्चनकी कोई एक पिक्चर चलाई. पिक्चरमें मैने एक बडो मजेदार सीन सीन देख्यो. अमिताभ बच्चन महादेवजीके मन्दिरमें जाके महादेवजीसु कहवे लग्यो ''ए भगवान् मन्दिरमें बैठे-बैठे क्या करता है. नीचे आओ ...''. ये कोई भगवान्के साथ बोलवेको तरीका है? तू गुंडा है, अच्छी बात है. पर ऐसी तरह भगवान्कु बुलायो जाय. और यदि ऐसे कोई बुलावे तो भगवान् आतो होवे तो भी नहीं आवे. ऐसे अपन ठाकुरजीकु कहें ''भगवान् चलो जगो. कितनी देर सोनो? गाय चराने जानो है के नहीं?'' अरे भाइ क्या लफड़ा हो गयो परेशानी क्या है आपकु वो तो बताओ? या तरहसु अपन ठाकुरजीकु नहीं जगावे हैं. ठाकुरजीकु जगानेको कोई तरीका है, कोई नजाकत है. वा नजाकतसु जब अपन ठाकुरजीकु जगावें तब सेवामें मृदुता आवे है. तब

अपने ठाकुरजी भी मृदुतासु जगेंगे. इन सब सूक्ष्म बातनको अनुभव करके श्रीगुसांईजीने ऋतुक्रमकी सेवामें राग-तालादिको विनियोग कियो है.

तालकी बारीकी भी समझो. अपने यहां ध्रुपद तालके अनेक पद हैं. ध्रुपद एक कठोर ताल है: धा धा दिं ता; किट धा दिं ता; तिट कत गदि गन. या कठोर तालके टेन्शन्को आनन्द लेवेकेलिये अपनेमें स्फूर्ति भी विशेष चहियेगी. यासु आप देखो के अपने यहांके कीर्तनमें आपकु ध्रुपदके कीर्तन शृङ्गारसु पहलेकी सेवाके समयके अथवा भोग आनेके समयके नहीं मिलेंगे. तीनतालके पद मिलेंगे, झपतालके पद मिलेंगे. क्योंके ये सब तालें बडी मृदु हैं. तालें नदीके बहावके जेसी होवे हैं. कुछ नदी घमासान अवाजके साथ बहती होवे हैं तो कुछ मन्द कल-कल अवाजके साथ बहती होवे हैं. ऐसे ही तालमें भी भेद है. ध्रुपद कठोर ताल है. वाको प्रयोग अपन जब ठाकुरजी एकदम तैयार होवें तब ही करते होवे हैं. ठाकुरजीके शृङ्गार अपन यशोदाजीके भावसु करे हैं. वा बखत बडो मृदु भाव चहिये. ताल भी वा बखत मृदु ही चहियेगो. तीनताल, झपताल, तीव्रा अपन चलावें पर एकताल नहीं बजावे हैं. वा समयके कोई पद भी आपकु एकतालके या सूरफाक्ताके नहीं मिलेंगे.

ऐसे ही जब बरसातके दिन आने वाले होवे हैं तब अपन सीधो मल्हार गानो शुरु नहीं करदे हैं. बिलावल, सारंग आदि रागनूकु गाके अपनो गला सीधो मल्हार राग गाने लायक नहीं होवे है. यासु अपन बसन्तके आगमनमें जैसे पञ्चम और हिंडोल गाते हते ऐसे सूहा बिलावल रागकु गाके अपन पहले बरसातकी अगवानी करे हैं. जब बरसातकी अगवानी हो जाये तब फिर रथयात्रासु अपन मल्हार शुरु करे हैं: ‘‘*सखी मोहे बूंद अचानक लागी*’’. ऐसे क्रमसु जब अपन मल्हार गावें तब मल्हारकी मजा आवे है. पर जैसे छतपे खडे आदमीपे धीरी-धरी छोटी-छोटी बूंदें बरसवेके ठिकाने अचानक मूसलाधार बरसात पडवे लग जाये तो बिचारो आदमी बरसातकी मजा लेनेके ठिकाने घबरा जाये के ये अचान प्रलय कहांसु हो गयी. और वो

ही बरसात जब बूंद बनके बरसनी शुरु होवे तो अपनो मन और शरीर दोनों बरसातकी मझा लेने तैयार हो जायेगो. तब फिर वो रथ चल पडेगो जा दिनसु अपन मल्हार गानो शुरु करे हैं. ये सब ऋतुक्रमकी बारीकियें हैं के जिनको श्रीगुसांईजीने अपने यहां प्रवर्तन कियो है. इन बारीकीन्को स्वारस्य समझके अपन यदि ऋतुक्रमानुसार सेवा करें तब तो वो सेवा भयी कहलायेगी नहींतो तो कुसेवा हो जायेगी.

प्रश्न : सेवाकी रीतमें लिख्यो होवे है के आज ऐसे सेवा करनी, या दिन ऐसे सेवा करनी ... पर फिर भी कभी कोई बात समझमें नहीं आवे या रीतमें जैसे लिख्यो होवे वा प्रकारसु सेवा करनी आती नहीं होवे तो वा समय प्रभुकी कैसे प्रकारसुं सेवा करनी?

समाधान : सबसु पहली बात तो ये है के जो भी लिख्यो गयो है वो बडी समझसु और बडे भगवत्सुखके विचारसु लिख्यो गयो है. वो समझ और वो भगवत्सुखको विचार यदि अपनूकु समझमें आते होवें तो अपनकु वो भी समझमें आ जायेगो के वामें कितनो करनेसु सेवाकी रीत भी निभ जायेगी और प्रभुको सुख भी निभ जायेगो.

वसन्त ऋतुमें जैसे वसन्त राग गानेको ऋतुक्रम है. पर वसन्त ऋतुमें सुबह शुद्ध वसन्त नहीं गाके ललितवसन्त गानो ये बात तो जाकी सङ्गीतमें गहरी पेंठ होवे वाकु ही सूझ सके है, हरेककु समझमें नहीं आ सके है. और साधारण आदमी यदि ललितवसन्त गावे जाये तो भी वसन्त गाते-गाते ललित निकल जाये और ललित गावे जाये तो वसन्त छूट जाये. ललितवसन्त तो वो ही गा सके है के जाकी दोनों रागनूपे अच्छी पकड होवे.

एक बात बताउं, दाल-भातके करते खीचडी बनानो रसोईमें सरल होवे है. पर रागमें यासु उलटो होवे है. दो रागकु मिलाके गानो बहुत कठिन है. एक राग शुद्ध गानो बहुत सरल है. ऐसे ही दो तालमें एक संग गानो बहुत

कठिन है. एक तालमें गानो बहुत सरल है. बंबईमें हमारे एक परिचित खांसाहब हैं. उनने एक दिन मेरे सामने अपने दोनों हाथ और दोनों पैर सु एक ही समय चार अलग-अलग ताल बजाके बताई अपने जैसेन्केलिये ये असम्भवसी बात है. क्योंके एक ताल सोलह मात्राकी, दूसरी दस मात्राकी, तीसरी बारह मात्राकी और चौथी ताल नौ मात्राकी. ऐसी चार तालन्की खाली-भरी एक साथ कैसे गिन सकें? आप गिनके देखो. एक पैरसु बारह मात्राकी ताल गिनो, दूसरे पैरसु नौ मात्रा गिनो ... अपन नहीं गिन पायेंगे. या तो बारह मात्रा ही गिनते रहेंगे या नौ मात्रा. ये तो बहोत अभ्यास होवे तो ही हो पावे. यासु रागन्कु मिलानो बहोत कठिन है. पर यदि अपन ये नहीं कर पावें हैं तो ठीक है. ठाकुरजीने अपनकु वैसी योग्यता नहीं दी है तो अपने ठाकुरजी भी अपन जैसो गायेंगे वामें प्रसन्न रहंगे.

श्रीगुसांईजीकी सेवक एक डोकरीकी वार्तामें आवे है के वा डोकरीके घरमें रसोई करवेकी सुविधा नहीं हती. श्रीगुसांईजीके वहांसु वाकेलिये महाप्रसादकी पातल आती हती. डोकरी वो पातल वाके ठाकुरजीकु भोग धरके पीछे खुद भोजन करती. कोई वैष्णवने जाके श्रीगुसांईजीकु या बातकी फरीयाद करी के डोकरी प्रसादी पातल अपने ठाकुरजीकु भोगमें धरे है. श्रीगुसांईजीकु भी ये बडो नागवार (अनुचित) लग्यो. डोकरीकु बुलवाके श्रीगुसांईजीने वासु ऐसो करवेको कारण पूछ्यो. वाने श्रीगुसांईजीकु कही के खायी भयी पातलपेसु उठके पाछो वामें नहीं खानो वो आप ब्राह्मणन्के घरके बच्चान्केलिये नियम होयगो, हमारे घरके बच्चाएं तो खाते-खाते खेलवे चले जायें और खेलते-खेलते खावे लग जायें हैं. आपके नियम हमारे यहां नहीं पले हैं. श्रीगुसांईजीने कही के तेरी बात सच्ची. 'तेरी बात सच्ची'' कहके श्रीगुसांईजीने अपने घरमें वाकी रीत नहीं मानी. आशय ये हतो के वाकी बात वाके घरमें सच्ची.

तो बात समझो के चाहे रूपा पौरिया होवे, चाहे ये डोकरी होवे, चाहे रजस्वलाकु सेवाकी छूट दी वो होवे या फिर गोविन्द स्वामीने ठाकुरजीकु कंकड मारे वो वार्ता होवे ह्यऐसी सब वार्तान्के तात्पर्य दोनों हो सके हैं. एक तो ये के अपन भी उनको अनुकरण कर सके हैं ऐसो तात्पर्य निकालें. अथवा ऐसो

भी रहस्य समझ्यो जा सके है के उनको सम्बन्ध उनके ठाकुरजीके संग जा तरहको हतो वामें वा बातकी शोभा है. अपनो सम्बन्ध यदि अपने ठाकुरजीके सङ्ग वैसो है तो वैसो करनेमें कोई हानि नहीं है. और यदि वैसो सम्बन्ध यदि अपनो अपने ठाकुरजीके सङ्ग नहीं है तो कोईको खोटो अनुकरण करवेकी जरूरत नहीं है. यासु ही जब गोविन्द स्वामीने ठाकुरजीकु पकडके कुंडमें स्नान करायो तब श्रीगुसांईजीने उनसु पूछी के क्या ब्रह्म छू सके है? गोविन्दस्वामीने बडो अच्छो उत्तर दियो के ब्रह्म तो नहीं छू जावे पर आपके घरकी मेंड छू जावे. यदि गिरिधरजीने कोईकु छू लियो होतो तो क्या श्रीगुसांईजी उनकु स्नान कराये बिना घरमें घुसवे देते? गोविन्दस्वामीके उत्तरपे श्रीगुसांईजीकु चुप होनो पडेगो. गिरिधरजीकु तो बिना स्नान कराये घरमें घुसवे नहीं देते. तो क्या ठाकुरजीकु आप गिरिधरजीसु कम मान रहे हो यदि गिरिधरजीकु स्नान करनो पडेगो तो फिर ठाकुरजी क्यों स्नान नहीं करेंगे ठाकुरजी छू जायेंगे तो उनकु भी स्नान करनो ही पडेगो. ये तो एक तात्पर्य भयो. अब समझो के कोई ऐसे कह दे के गिरिधरजी तो स्नान नहीं करेंगे, वो तो हमारे बालक हैं, पर ठाकुरजीकु तो स्नान करनो पडेगो. तब तो उलटो अर्थ हो गयो. अपनने तो अपरस नहीं पालवेकी सब छूट लेली, ठाकुरजीकु फंसा दिये. ये ठीक बात नहीं है.

सेवारीतिकी बारीकीकु समझो तो सब बात समझमें आ जायेगी. ऋतुक्रमकी सेवामें भी ये ही बात है. रूपा पौरियाकु राग-तालको कोई ज्ञान नहीं हतो, सब कीर्तन वो एक ही तरहसु गातो हतो. पर फिर भी ठाकुरजी वासु प्रसन्न हते. और ऐसी बात भी नहीं हती के रूपा पौरियापे ठाकुरजी प्रसन्न हते करके गोविन्दस्वामीके कीर्तन ठाकुरजीकु पसन्द नहीं आते हते. या बाजु गोविन्दस्वामीके पद भी आपकु पसन्द आवे हैं तो वा बाजु रूपा पौरियाके भी पद पसन्द आवे हैं. या बाजु आपकु राधाजी भी पसन्द आवे हैं तो वा बाजु कुब्जा भी पसन्द आवे है. आदमीके साथ ये तकलीफ है के वाकु राध तो अच्छी लगेगी पर कुब्जा दीखेगी तो खुद भग जायेगो. ठाकुरजीमें ऐसी सामर्थ्य है के उनकु कुब्जा भी पसंद आवे है और राधा भी पसंद आवे है. ठाकुरजीमें ऐसी सामर्थ्य है के उनकु जूठो भी पसन्द आवे है और ब्राह्मणके हाथकी पक्की

मरजादसु सिद्ध भयी सामग्री भी पसंद आवे है. शबरी तो भील हती. शास्त्रके अनुसार भीलकु तो शूद्रसु भी अधिक अशुद्ध मान्यो गयो है. वैसे भीलको भी पाछो जूठो ठाकुरजीने अरोग्यो है.

ठाकुरजीकु रिझानेमें गभराने जैसी कोई बात ही नहीं है. यामें रहस्य बस इतनोसो है के ठाकुरजीकु एक बखत अपनो मानो. ये ठाकुर मेरो है, मेरे माथे बिराज रह्यो है, याकु मोकु रिझानो है. फिर तो खुद ठाकुर तुमकु बता देगो और तुम ठाकुरकु बता दोगे के ऐसे नहीं, ऐसे करनो है. नागर ग्रन्थावली उठाके देख लो, नागरीदासजीने अपनी पसंदके रागके पद उनके ठाकुरजीके सामने गाये हैं के नहीं? दयारामभाईने उनके रागन्में कितने सारे प्रभातियाके पद गाये हैं. प्रभातिया अपने यहां राजस्थानमें कहां गवें हैं? अपने यहां 'सामेरी' राग गवे है. ये राग उत्तरभारतीय राग ही नहीं हतो. ये हमारे दक्षिण भारतको राग हतो. हम लोग उत्तरमें आये तब सामेरी राग लेके आये. ये राग प्रबोधिनीके दिन गवे है : ''ब्रज वेद बिदित बरसानो, ब्रषभान गोप तहां रानो''. प्रबोधिनीके दिन या रागमें कीर्तन नहीं गवे तो हमकु शादी जैसो लगे ही नहीं है करके हमने या रागमें कीर्तन गायो. तुमकु ये राग नहीं आतो होवे तो मत गाओ.

मथुरा घरके गोस्वामी बालक खयालवाले श्रीपुरुषोत्तमजी जिनने वा जमानामें छप्पन व्रजयात्रा करी हती उनकु यात्रा करते बखत कीर्तन गाने पसंद नहीं आते हते करके उनने रसिया गाने शुरु किये. उनसु पहले पुष्टिमार्गमें रसिया गाये ही नहीं जाते हते. अब स्थिति ये है के यदि होरीके दिनन्में रसिया नहीं गावें तो सूनो-सूनो लगे है. अब रसिया ठाकुरजीकु पसंद आ गये हैं. अपन गायेंगे तो ठाकुरजीकु पसंद आने लग जायेगो. अपनकु गानो आ रह्यो है तो वैसे गाओ; नहीं आ रह्यो है तो जैसो आवे वैसो गाओ.

बहुत पहले जब दादाजी (नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी) बीमार पड गये तब मैं ठाकुरजीकु पधराके किशनगढ अकेलो आया हतो. मोकु तो रसोईमें

तीन वस्तु बनानी आती हती खीर, खीचडी और मसालाभात. चौथी कोई सामग्री सिद्ध करनी मोकु आती ही नहीं हती. हमारे ठाकुरजी क्या करते? ठाकुरजी भी वो ही अरोगते. क्या करनो चौथी कोई चीज आवे तो अरोगावें न!

पद्मनाभदासजीकी वार्तामें आवे है के वो ठाकुरजीकु भोगमें केवल छोला धर पाते हते. एक बार जब वो अडेल श्रीमहाप्रभुजीके दर्शनकेलिये गये तब श्रीमहालक्ष्मीजीने उनकी परिस्थितिकु देखके रसोईकेलिये सीधो-सामग्री भिजवाई. पद्मनाभदासजीने मथुराधीशजीसु पूछी के महाराज आपकी क्या इच्छा है? आपकु छोला चलेंगे के छप्पनभोग अरोगने हैं? मथुराधीशजीने आज्ञा करी के मोकु तो तेरे छोला अरोगने हैं. चल, अपन दोनों यहांसु रवाना हो जायें. उनने ठाकुरजीकु पूछ्यो, ठाकुरजीने जवाब भी दियो है. पर अपन जब ठाकुरजीसु पूछें ही नहीं हैं तब ठाकुरजी भी सोचते होयेंगे के जब याके खुदके मनमें कोई स्पष्टता नहीं है तो फिर मैं क्यों बोलूं अपने मनमें स्पष्टता होनी चहिये के ये मेरो ठाकुर है और मोकु ही वाकु रिझानो है.

एक बात समझो के कोईकी मां कानी (काणी) होवे तब भी बच्चाकु वाकी मां प्यारी ही लगती होवे है. गाम भले वाकु कुरूप कहेतो होवे पर बच्चाकु वो बात समझमें नहीं आती होवे है. मां और बच्चा दोनों एक-दूसरेसु रीझे भये हैं. वामें मां कानी है के नहीं वाको कहां सवाल है? ऐसे ही, यदि अपने माथे बिराजतो ठाकुर अपनेसु रीझ्यो भयो है तो अपन जैसे हैं वैसेकी सेवा वो स्वीकारेगो. कोई कानेकी सेवा ठाकुरजीकु अच्छी लगे है करके अनावश्यक अपनकु अपनी एक आंख फोडवेकी जरूरत नहीं है. दो आंख हैं तो वैसे बने रहके सेवा करो. ठाकुरजीकु वासु कछु फर्क नहीं पडे है. लोग कानेको मुंह देखनो अपशगुन माने हैं. ठाकुरजी कभी काने सेवककु ऐसे नहीं कहेंगे के तु मेरी मंगला मत करायो कर. ठाकुरजी तो ये ही आज्ञा करेंगे के मेरो कानो सेवक मोकु बडो अच्छो लगे है.

तुम अपरस पाल रहे हो तो ठाकुरजी प्रसन्न हो जायेंगे के देखो, मेरो भक्त कितनी अपरस पाले है. तुम्हारे ठाकुरजी भी तुम्हारे संग अपरस पालवे लगेंगे. तुमसु अपरस नहीं पल रही है तब भी ठाकुरजी शबरीके बेर अरोगने तैयार हैं ''*दुर्योधनके मेवा छांडे शाक विदुर घर खाई, सबसे ऊंची प्रेमसगाई*''. ''सबसे ऊंची प्रेमसगाई'' या आत्मविश्वासकु रखके सेवा करोगे तब तो सेवा निभेगी. और जब ''सबसे ऊंची पोथीसगाई'' करोगे तब ऋतुकी पद्धतिएं तो तुमकु पता चल जायेंगी पर ऋतुक्रमको मजा चौपट हो जायेगो. पोथी कोई बुरी चीज नहीं है, पोथीसु ठाकुरजी नाराज नहीं हैं. ठाकुरजीकु न ज्ञानसु तकलीफ है न अज्ञानसु. ये सारी तकलीफ अपनी है. मूल बात ये है के अपने पास जो उपलब्ध है वासु ठाकुरजीकी सेवा करनी है.

मेरे साथ एक लडका पढतो हतो वाकी मांके हाथमें कोढ हतो. मैं जब वाके वहां जातो तो वो मोकु कछुक-कछुक खवाती. मोकु वाके हाथको बन्यो खावेमें बडो संकोच होतो. पर मैने अनुभव कियो के वाके बेटाकु कभी मेरे जैसो संकोच नहीं होतो हतो. वो तो अपने मांके हाथकी रसोईकी बडी प्रशंसा करतो. पर मोकु भय लगतो के कहीं मोकु भी कोढ न हो जाये. मैं आखिर एक मनुष्य हूं. पर एक बात समझो के ठाकुरजीकु, वा बेटाकी तरह, अपने सेवकके प्रति ऐसो भाव नहीं आवे है. बात बस इतनीसी है के अपने बीचमें कोई खटका नहीं होनो चहिये. अपने मनमें यदि खटका होयगो तो फिर बात खटक(बिगड) जायेगी. सेवाको मूल रहस्य यामें है. या रहस्यकु तुम समझ जाओगे तो फिर पोथीकी कोई बात यदि तुम अपना नहीं पा रहे होगे तब भी कोई समस्य नहीं आयेगी. शर्त सिर्फ इतनी है के अपनो भाव स्पष्ट होनो चहिये के मेरो ठाकुर मेरे घरमें बिराज रह्यो है, मोसु जितनी सेवा बनेगी उतनी करुंगो. फिर देखो के ठाकुर रीझे हैं के नहीं. पर यदि तुम्हारे मनमें खटका है तब तो फिर हवेलियें चलेंगी, सेवा नहीं होयेगी. हवेली-मन्दिर चलनो अलग कथा है और सेवा करनी अलग कथा है. हवेली-मन्दिरको चलनो एक दुकानदारी है.

कोई भी होटेल्में जा के देखलो, वहां तुमकु कोढवाले हाथको कोई

भी कामवालो नहीं मिलेगो. कोई होटेल्वालो ऐसे आदमीकु नौकरी नहीं देगो. पर मांको हाथ यदि कोढवालो होयगो तब भी बेटा मांके हाथसु खायेगो. मां-बेटाको जो आपसी प्रेम-विश्वास-अपनोपन है वो अपने और ठाकुरजीके बीचमें है तो बात बन गयी. और यदि हवेली-मन्दिरके जैसी होटेल्वाली बात है तब तो फिर ग्राहककु अच्छो नहीं लगेगो, ग्राहक कहेंगे के ऐसो आदमी तुमने क्यों रख्यो, याके हाथको प्रसाद हम नहीं खायेंगे ... पर मां-बेटाके बीच ऐसो नहीं होवे है. प्रभुसेवाको ये ही रहस्य है. और वो धंधाको रहस्य है. अब तो बात समझमें आयीन

कल कुछ बातें मैने आपकु नित्यसेवा और ऋतुक्रमकी सेवाको परस्पर कैसो सम्बन्ध है वाके बारेमें बतायी. नित्यसेवा नित्य प्राप्त है. और ऋतुक्रमकी सेवा नित्यसेवामें ऋतुके अनुसार परिवर्तन है ये बात भी अपनने कल देखी. साथ-साथ ऋतुक्रमकी सेवामें प्रभुके सुखके अनुकूल राग और कीर्तन प्रणालीमें अपने यहां कैसी बारीकी बरती गयी है वा विषयको भी अपनने संक्षेपमें विचार कियो हतो. या सारे विषयमें एक अतीव विचारणीय पहलू है जो मोकु आपकु पहले ही बता देनो चहितो हतो पर कोई ओर विषय छिड गयो करके मैं वाकु बता नहीं पोयो. आज वा विषयकी भी चर्चा मैं ऋतुक्रमकी सेवाके अवसरपे कर देनो चाहूंगो.

स्वमार्गमें अमान्य सेवाके प्रकार :

सेवाके कई प्रकार हो सके हैं. एक तो पगारदार नौकर पगार देनेवाले मालिककी सेवा करे वैसो हो सके है. सेवाको दूसरो प्रकार गुलामके द्वारा करी जाती सेवाको हो सके है. प्राचीन कालमें गुलाम खरीदे जाते और पाले जाते हते. आज-कल मनुष्यकु गुलाम बनानेकी प्रणाली नहीं रह गयी है. पर घोडा-गधा-ऊंट-हाथी जैसे जानवरन्कु आज भी अपन गुलाम बनाके वासु अपनी सेवा करवावे हैं. सेवाकी तीसरी प्रणाली स्वयंसेवाकी भी हो सके है. कोई

अच्छो कार्य या अच्छे उद्देश्य की पूर्तिकेलिये लोग परोपकार, दया या कर्तव्य की भावनासु अपनी इच्छासु सेवा देवेकेलिये तैयार हो जाते होवे हैं. सेवाको ये भी एक प्रकार हो सके है. वैसे अप्रासङ्गिक है पर एक प्रकार सेवाको मैने सुन्यो है वालिये बता रह्यो हूं. गोकुलमें श्रीनवनीतप्रियाजीको एक बगीचा है. वा बगीचापे कोई एक स्वामीजीने कबजा करके अपनो आश्रम बना लियो. फिर तो वहां उनके भक्तें आने लगे, खूब पैसा इकट्ठो हो गयो. ऐसेमें कुछ डकैतन्की भी आश्रमकी मुलाकात लेवेकी इच्छा हो गयी. दिसम्बर-जनवरीकी रातकी भयंकर ठंडमें उनने आश्रमपे डाका डाल्यो. आश्रमको दरवाजा नहीं खुल्यो तो गुस्सामें आके भींत तोडके अंदर घुसे. अंदर घुसके उनने स्वामीजीकु पकडे और उनसु कही के ऐसी ठंडमें हमकु इतनो परेशान कियो क्या समझ रख्यो है अपने आपकु चलो उठो, हमारेलिये चाय बनाओ और गरमागरम पकौडा तलके खवाओ बिचारे स्वामीजी क्या करते उनने चाय-पकौडा बनाके डकैतनकु नास्ता करवायो. डकैत खा-पीके सब माल बटोरके चले गये. ये कथा सुनके वा स्वामीजीके दर्शन करवेकी मेरी भी इच्छा हो गयी. गोकुल गयो तब डकैतन्की सेवा करनेवाले स्वामीजीके मैंने भी दर्शन किये. तो सेवाको एक प्रकार ये भी है के कोईसु जबरर्दस्ती सेवा करवानी. लोग शनि-मंगल आदि ग्रहन्की सेवा डरके मारे करते ही होवे हैं. देवतान्की सेवा नहीं करेंगे तो वो अपनकु मार देंगे, अनर्थ कर देंगे ऐसे लोग सोचते होवे हैं. ऑल्मोस्ट डकैतके जैसो स्वरूप अपन देवतान्को मानते होवे हैं. तो सेवाको एक प्रकार डरके मारे करी जाती सेवाको भी होवे है.

इन सारे प्रकारन्सु करी जाती सेवायें अपने यहां न तो नित्यक्रममें प्राप्त हैं, न ऋतुक्रममें प्राप्त हैं और न उत्सवक्रममें प्राप्त हैं. मनोरथकी तो बात ही दूसरी हो गयी क्योंके मनोरथ तो अपन अपने मनसु करते होवे हैं. तात्पर्य ये है के इन सारे सेवाके प्रकारन्पे अपनकु चौकडी लगानी है. क्योंके वा प्रकारकी सेवा पुष्टिमार्गीय सेवा नहीं है. अपन जा तरहकी सेवाकी बात कर हे हैं वोह्न चाहे नित्यसेवा होवे, चाहे ऋतुक्रमानुसार सेवा होवे, चाहे उत्सवकी सेवा होवे या चाहे मनोरथकी सेवा होवे ह्नइन प्रकारन्सु अलग तरहकी सेवा है.

परमात्मरति :

अपने यहांकी सेवाके सम्बन्धमें मैने आपकु नारीयलको दृष्टान्त देके पहले एक बार समझायो हतो के वाकी अनेक परते होवे हैं. जैसे नारीयलमें रस भर्यो भयो होवे है वैसे अपने यहांकी सेवाको निगूढतम भाव आत्मरतिको होवे है. अर्थात् परमात्माकी सेवा अपन आत्मभावसु करे हैं. परमात्माकु अपनेसु परायो मानके नहीं पर परमात्मा अपनी ही कोई आन्तरिक हकीकत है ऐसे समझके वाकी सेवा अपन करे हैं. आप कहोगे के जो अपनी आन्तरिक हकीकत होवे वाकी सेवा कैसे की जा सके है? अपन एक स्थूल उदाहरण सोचेंगे तो बात समझमें आ जायेगी.

समझो के अपने शरीरके भीतरको कोई अंग ठीकसु काम नहीं कर रह्यो है. डॉक्टर् अपनकु योग, एक्सरसाइझ् ... करवेकी सलाह देवे है. अब अपन जब अपने भीतरके अंगकु सुधारवेकेलिये अपन दवाई लेंगे, योग करेंगे, एक्सरसाइझ् करेंगे तब अपन कौनकी सेवा कर रहे हैं? अपन अपनी ही तो सेवा करे हैं जैसे अपनकु डायाबिटीझ्को रोग हो गयो. डॉक्टर्ने अपनकु रोज पांच मील चलवेकी सलाह दी. अपन रोज पांच मील चल रहे हैं. ये अपन कौनकी सेवा कर रहे हैं? अपनी ही तो. क्योंके अपने खूनमें रोगके कारण जो शक्कर बढ गयी है और वो अपने खूनकू खराब कर रही है वाकु अपन चलके सुधार रहे हैं. ये कोई दूसरेकी सेवा थोडी है. अपन अपने भीतर रही भयी कोई हकीकत, वो चाहे हृदय होवे या लीवर होवे या फेफडा होवे या रक्त होवे, की ही सेवा कर रहे हैं.

प्रभुसेवा करवेमें भी अपने भीतर सबसु पहले ये भाव दृढ होनो चहिये के अपन अपनेसु अलग कोई हकीकतकी सेवा नहीं करे हैं. अपन अपनी आत्माके भीतर रहते परमात्माकी सेवा करे हैं. याको नाम 'आत्मरति'; याको नाम 'परमात्मरति'. ये परमात्मरति, बात समझो, ब्रह्मज्ञानसु प्रकट होयगी. ब्रह्मज्ञानसु परमात्मरति प्रकट होयगी और फिर वा परमात्मामें अपनकु भगवद्भाव जगेगो.

भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति :

ये बहुत कठिन विषय है. एक स्थूल दृष्टान्तसु समझो. समझो के अपनकु डॉक्टर्‌ने कह दी के यदि तुम रोज पांच मील चलोगे नहीं तो तुम्हारो हृदय कमजोर हो जायेगो. अपनने रोज पांच मील चलनो शुरु कर दियो. हृदय वैसे तो अपनो एक अंग है पर अपन जब डॉक्टर्‌की बात मान रहे हैं तब ये सोचके ही तो मान रहे हैं के यदि मेरो हृदय ठीकसु चल्यो तो मैं ठीकसु जी पाउंगो या दृष्टान्तसु सोचो तो हृदय अपनो ईश्वर हो गयो के नहीं शास्त्र याकेलिये बहोत सुंदर बात कहे है ''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति''. वो तुम्हारो भर्ता है पर वाकी शर्त ये है के पहले तुम वाको भरण करो. तुम वाकी परवाह करोगे तो वो तुम्हारी परवाह करेगो. जैसे हृदयको तुम ध्यान रखोगे तो हृदय तुम्हारो ध्यान रखेगो. खूनको तुम ध्यान रखोगे तो खून तुम्हारो ध्यान रखेगो. ये बात धर्मकेलिये भी शास्त्रने समझायी है. तुम धर्मकु धारण करोगे तो धर्म तुमकु धारण करेगो. धर्मकु तुमने धारण नहीं कियो तो धर्म भी तुमकु धारण नहीं करेगो. ऐसे परमात्मा तुम्हारो भर्ता है. पर वो तुम्हारो भरण तब करेगो के जब पहले तुम वाको भरण करोगे. ये बात प्राय: सब जगह लागू होवे है.

आप अक्कलकु ले लो. अक्कलकु यदि अपन चलायेंगे तो वो अपनकु चला पायेगी. जैसे कोई विषय आयो, अपन वाके बारेमें कुछ सोचें नहीं, बस बैठे रहें. समझलो के आपकी अक्कल मर गयी. अब अक्कल आपकु नहीं चला पायेगी. आपके सारे निर्णय बेवकूफीके होयेंगे. पर जब आप अपनी अक्कलकु चलाने लगोगे तो वो भी आपकी अपनी दिशामें चलने लगेगी.

मोकु बहोत सालके बाद पता चली के मोकु एक आंखसु दीखे नहीं है. मैं डॉक्टर्‌के पास गयो तो वाने कही के आंखमें कोई तकलीफ नहीं है. बस तुमने अपनी आंखकु वापरी नहीं है वा कारणसु वाने देखनो बंद कर दियो है. अब मोकु एक आंखसु आपकी आकृति दीखे है पर अच्छी

तरह आपकु पहचान नहीं पाउं हूं. तो देखो, मैं यदि आंखको भरण करतो तो वो मेरो भरण करती. मैने वाको भरण नहीं कियो करके आंख और दिमाग कु जोडनेवाली नसें आलसी-ऐदी हो गयीं.

भक्तिकु अपन जब वापरें नहीं हैं तो भक्ति कमजोर हो जाय है. कर्मकु अपन वापरें नहीं हैं तो कर्म भी कमजोर हो जाय है. धर्मकु अपन वापरें नहीं हैं तो धर्म भी कमजोर पड जाय है. ऐसे ही यदि अपन सेवा नहीं करेंगे तो अपनो सेवकत्व भी कमजोर पड जायेगो. केवल अपनो सेवकत्व ही कमजोर नहीं पडेगो, वा बाजू अपनो सेव्य भी कमजोर हो जायेगो. क्योंके वो तुम्हार सेव्य तब है के जब तुम वाकी सेवा कर रहे हो ''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति''. वो भर्ता है, पर तुम जब वाको भरण करोगे तब.

सेवक बनोगे तो वो सेव्य बनेगो :

श्रीमहाप्रभुजीने कितनी सरल बात बताई है अपनकु. अपने पास एक दिनमें २४घंटा होवे हैं. २४घंटामेंसु तीन घंटा तो निकालो तुम्हारे परमात्माकेलिये और आपकु ये कौन कह रह्यो है के तीन घंटा एक साथ ही निकालो एक घंटा सुबह निकालो एक घंटा शामकु निकालो और एक घंटा स्मरणको निकालो. तीन घंटा तब भी निकल जायेंगे. पर अपनी स्थिति ऐसी है के अपनकु घंटान् तक टी.वी. देखनो फावे है, घंटान् छापा पढनो फावे है, यहां-वहांकी गप्प लगानो फावे है पर तीन घंटा परमात्माकेलिये नहीं निकाल सके हैं. अपनकु सब कछु रेडीमेड् चहिये है. जब फुरसत मिली तब पहोंच गये हवेलीमें. परमात्मा 'यस् सर्'' करतो तुम्हारे सामने हाजर हो गयो. तुम प्रसन्न हो गये. पर याद रखो के तुम सेवक हो. यदि तुमने परमात्माकु अपनो सेव्य नहीं बनायो तो तुम भी अधिक दिन तक सेवक नहीं रह जाओगे ''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति''. तुम वाकु अपने जीवनमें वापरनो शुरु करो. वाकु तुम श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वन्दन दास्य सख्य आत्मनिवेदन केलिये थोडो-थोडो वापरनो शुरु करो. जब तुम परमात्माकु या तरहसु वापरोगे तो वो तुम्हारो भगवान् बनतो जायेगो. तब तुमकु पता चलेगो के परमात्मा जो हमारे

भीतरकी हकीकत है वो सचमुचमें हमकु कंट्रोल करवेवालो भर्ता है, भगवान् है.

आपने योगीन्के सामर्थ्यकी बातें सुनी होयेंगी. योग क्या करे है? स्वभावसु चलती अपनी सांसकु अपनी इच्छासु चलानो सिखावे है. या प्रक्रियासु प्राणशक्तिपे अपनो कंट्रोल आयेगो. वासु अपने जीवनको माद्दा बढेगो. आपकु अपने शरीरमें जितनी गरमी बढानी होवे वो आप या प्रणालीके सहारे बढा सको हो. गरमी लगती होयगी तो आप प्राणायामके सहारे ठंडक अनुभव कर सकोगे. ठंड लगती होयगी तो आप प्राणायामके सहारे शरीरमें गरमी ला सकोगे. आदमी तेज दौडे तब वाकी सांस जैसी तेजीसु चलवे लगे है वैसी तेज सांस योगाभ्यासी बैठे-बैठे चलाके शरीरमें गरमी ला सके है. पर ये सामर्थ्य तब आवे है के जब आदमी स्वभावसुं चलती सांसकु अपनी इच्छासु चलानेको व्यायाम करे. यहां भी वो ही ''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति'' को सिद्धान्त काम कर रह्यो है.

आत्मरतिको विकसित रूप भगवद्भक्ति :

तो अब फिरसु मूल बातकु समझो के जब अपन परमात्मासु वाके माहात्म्यके ज्ञान पूर्वक सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह करनो शुरु करेंगे तब वो अपने भीतरकी हकीकत अपनो भगवान् बन जावे है. या स्थितिमें फिर वाके सम्बन्धमें अपनी आत्मरति भगवद्भक्तिके रूपमें खिल उठे है. ये भगवद्भक्ति ''मैं भक्त हूं और वो मेरो भगवान् है'' इतनो मान लेने मात्रसु नहीं हो सके है. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के वा भगवान्कु पहले अपने घरमें पधरानो पडेगो. वाकी सेवामें तुम्हारो तनु-वित्त सर्वस्वको विनियोग करनो पडेगो. मतलब वाकु तुमकु वापरनो पडेगो. जब तुम वाकु सेव्यतया वापरवे लगोगे तब वो भी तुमकु सेवकतया वापरवे लगेगो.

वचनामृतमें आवे है के एक वैष्णव ठाकुरजीके अनवसर कराते बखत पेंडा बिछानो भूल गयो तो ठाकुरजीने वाकु सानुभाव जतायो के

तुमने शय्या तक पेंडा नहीं बिछायो तो मैं पौढवे कैसे जाउं? सोचो के क्या ठाकुरजीकु चलनो नहीं आवे है? शय्यामन्दिर क्या पांच-पच्चीस मील दूर हतो? वो बात नहीं है. बात यहां ये है के सेव्य अपने सेवककु वापरनो चाह रह्यो है. अपनने क्योंके वा परमात्मा-भगवान्कु अपनो सेव्य बनायो है वालिये वो अपन(चिदंश-जीव)कु सेवकतया वापरनो चाह रह्यो है. ऐसे परस्पर जब अपन एक-दूसरेकु वापरते होवे हैं तब वो सेवा बने है. याकेलिये ही श्रीमहाप्रभुजीने **''चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्धयै तनुवित्तजा''** ये उपाय बतायो. अपने तनसु, अपने वित्तसु, अपने परिवारजनके सङ्ग मिलके वाकु सेव्यतया वापरनो शुरु करो. फिर आपकु पता चलेगो के वो कैसे आपके तनकु सेवकतया वापरे है, कैसे वो आपके वित्तकु अपनी सेवाकेलिये वापरे है, कैसे वो आपके मनकु अपनेमें लगावे है, कैसे वो आपके परिवारजनन्कु सेवामें वापरे है ... आत्मरतिके रूपमें प्रकटभयी वो कली जो भगवद्भक्तिके रूपमें थोडी बढी हती वो कली सेवाके रूपमें तब खिलेगी के जब आप वाकु सेव्यतया वापरनो शुरु करोगे. आपने यदि वाकु वापर्यो नहीं तो वो कली यों ही मुरझा जायेगी.

भगवत्सेवाको मूल ये प्रकार है. और मैने पहले जो सेवाके प्रकार आपकु बताये, नौकरीसु लेके डकैतवाली सेवाके, वो कोई अलग तरहकी सेवाके प्रकार हैं. वैसी सेवा श्रीमहाप्रभुजीने अपनकु नहीं बतायी है. अपनकु श्रीमहाप्रभुजीके बताये भये प्रकारसु वाकी सेव्यतया सेवा करनी है. जब अपन वा प्रकारसु सेवा करेंगे तो वो अपनकु सेवकतया वापरेगो. तब अपनकु वाको व्यसन होयगो सेव्यतया, वाकु अपनो व्यसन होयगो सेवकतया. याकु ही श्रीमहाप्रभुजी 'चेतस् तत्प्रवणता' कह रहे हैं. अपनो चित्त वामें इतनो प्रवण हो जाये के अपनकु वाको व्यसन हो जाये : **''ततः प्रेम तथासक्तिः व्यसनं च यदा भवेत्''**.

व्यसन होनो कोई चमत्कारकी बात नहीं है. चाय रोज पीयो हो तो चायको व्यसन हो जाय है. रोज दस बजे सो जाओ हो तो दस बजते ही नींद

आने लग जाय है. जाकी अपन आदत डालें वाको व्यसन होवे है. ऐसे ही जब अपन प्रतिदिन प्रभुकी सेवाकी आदत अपने तन-मनकु डालेंगे तो उनकु भी सेवाको व्यसन हो जायेगो. व्यसन होनेको मतलब कोई चीजकी आदत पड जानी.

बोलचालमें 'व्यसन'शब्द खराबके अर्थमें वापर्यो जाय है. पर व्यसन अच्छी वस्तु या आदत को भी हो सके है. व्यसन् है करके बुरो ही है ऐसे नहीं सोचनो चहिये. अच्छे-बुरेको निर्णय तो व्यसन् क्या विषयको है वापेसु ही हो सके है. ज्ञानकु अपन सामान्यतया अच्छो माने हैं. पर कई ज्ञान खराब भी होवे हैं. ऐसे ही शान्ति, झघडा भी अच्छे बुरे हो सके हैं. कौरव-पाण्डवको युद्ध 'धर्मयुद्ध' हतो. वो युद्ध होते भये भी अच्छो हतो. ऐसे ही व्यसन यदि भगवान्को है तो वो उत्तम व्यसन कहवायेगो. व्यसनको अर्थ है के जाको व्यसन है वाके बिना रह्यो नहीं जाये. जब अपनसु ठाकुरजीकी सेवाके बिना रह्यो नहीं जाये, सुस्ति आवे, खालीपन लगे तो समझो के थोडो-बहुत व्यसन भयो है. ये कोई चमत्कारकी बात नहीं है, मानव स्वभावकी बात है. जब ऐसो व्यसन सेवाको हो जाये है तब सेवा चित्तकी प्रवणतासु स्वत: होवे लग जायेगी. श्रीमहाप्रभुजीने जो सेवाको प्रकार बतायो है वो या तरहको है.

ऐसी सेवा ही ऋतुक्रममें भी प्राप्त है. ओर तरहकी सेवा तो अपने यहां नित्यक्रममें भी प्राप्त नहीं है तो ऋतुक्रममें कहांसु प्राप्त होयगी क्योंके सेवाको ऋतुक्रम नित्यक्रमकी सेवामें ऋतुके अनुसार कियो जातो परिवर्तन है. ये ऋतुक्रमकी सेवाकी परिभाषा है. ये बात मैं आपकु या लिये बता रह्यो हूं के सेवा क्या है वाके रहस्यकु यदि अपन नहीं समझेंगे तो ऋतुक्रमको सेवामें क्या स्थान है वाकु भी अपन समझ नहीं पायेंगे.

भगवत्सेवामें भीतरकी मूल भावना आत्मरतिकी होनी चहिये. वाके ऊपरकी परत भगवद्भक्तिकी होनी चहिये. वाके ऊपरकी परत अपने घरके

ठाकुरकी सेवाकी होनी चहिये. ''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति''. ये मेरो सेव्य है मैं वाको सेवक हूं. याको तात्पर्य समझो. ठंडीमें लोग च्यवनप्राश, उडदके लड्डु आदिको सेवन करते होवे हैं. अपन उनको सेवन करें हैं तब वो अपनकु शक्ति देवे है. ऐसे अपन जब अपने सेव्यको सेवन ऋतुके अनुसार करेंगे तो अपनो सेव्य भी अपनो सेवन करेगो के मोकु तेरेसु या ऋतुमें ऐसी सेवा चहिये है. जैसे दामोदरदासजीकु श्रीद्वारकाधीशजीने जतायो के मोकु पौढते समय गरमी लगे है. मेरेलिये हवादार शैयामन्दिर सिद्ध करवा. ये क्या है? अपनो ठाकुर अपनो सेवन करनो चाह रह्यो है. पर ठाकुरजी ऐसो कब चाहे हैं? जब सेवकने अपने ठाकुरको सेवन कियो तब. मां बच्चाकु दूध पिवावे है तब बच्चा मांको दूध पीनो चाहे है. या रहस्यकु कभी मत भूलियो. जा बच्चाकु मां दूध नहीं पिवावे है वो बच्चामें अपनी मांके प्रति स्नेहमें कमी देखवे मिले है. अखबारनमें पढवेमें आवे है के कोई बच्चाकु भेडने दूध पिवायो. बहोत पहले भेडिया बालक 'रामु' प्रसिद्ध हतो. वो बच्चा भेडियाको दूध पीके पल्यो हतो. वो भेडियाकु ही अपनी मां मानतो हतो. बच्चा वाकु ही मां माने है के जो वाकु दूध पिवावे है. ऐसे ही आप जब अपने ठाकुरजीको सेवन सेवक बनके करोगे तो वो आपको सेवन सेव्यतया करेगो.

ऋतुक्रमकी सेवामें कौनसी ऋतुकु अनुसरनो?

ऋतुक्रमकी सेवाके सन्दर्भमें एक विचारणीय प्रश्न ये खडो होवे है के ऋतु माने कौनसी ऋतु. या प्रश्नके उत्तर चार तरहसु सोचे जा सके हैं.

१. प्रभु वैकुंठमें नित्यलीलामें बिराजमान हैं और वहां सब ऋतुएं सुखद ही हैं, सब कछु सुखद है. सुखद यमुना है, कुंजें नित्य खिली भयी हैं, सुखद समीर बहे है. तो वहां तो ऋतुको कोई चक्र ही नहीं है.

२. दूसरो पक्ष लोग ऐसे सोचे हैं के ब्रजमें जब ठाकुरजी प्रकट भये वा बखत ब्रजमें जो ऋतुएं हतीं उन ऋतुनके अनुसार ऋतुसेवाको क्रम रखनो. पर समस्या यामें भी है. पुराने जमानामें आषाढमें बरसाती बद्दल घिरने शुरु

हो जाते हते. आजसु ९००-११०० वर्ष पहले कालिदासने लिख्यो है ' '**आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुं**''. पुराने जमानामें आषाढकी प्रतिपदाके दिन मेघ बरसने शुरु हो जाते हते. पर अब तो बरसातको कोई ठिकाना ही नहीं रह गयो है. बरसात बहोत आगे चली गयी है. ठाकुरजी ब्रजमें प्रकटे वा बखतकी ऋतु तो अब रही नहीं.

३. तीसरो कल्प ऐसो सोच्यो जाय है के श्रीमहाप्रभुजीने जा बखत सेवाक्रम प्रकट कियो वा बखतकी ऋतुनकु मानके ऋतुक्रमकी सेवा करनी. पर आज तो वो ऋतुएं भी नहीं रह गयी हैं. आप अपने बचपनकी स्थितिकु याद कर लो. बचपनमें जितनी ठंड पडती हती, जितनी बरसात पडती हती वो स्थिति तो अब रही नहीं है.

इन सबकु सोचवेपे ये प्रश्न खडो ही रहे है के ऋतु कौनसी लेनी.

४. अपन ये कहेंगे के तो फिर अपन जा ऋतुमें जी रहे हैं उन ऋतुनकु लेनी. समस्या तब भी कायम है. क्योंके वा स्थितिमें सेवाकी रीतमें लिखे भये बहोतसे प्रकार वार्तमान ऋतुके संग मेच् (संगत) नहीं होयेंगे.

या स्थितिमें क्या करनो ये एक बडो विचारणीय प्रश्न है. याको समाधान कैसे करनो?

कोई ऐसे सोच सके है के बडेनने जो सेवारीति प्रकट करी है वाकु विसर्जित करदो. नयी बना लो. ऐसो तो कियो नहीं जा सके है. अपन ये कहें के नित्यलीलामें जो ऋतुएं हैं वाके हिसाबसु सेवा करनी. तब ये स्थिति होयगी के आप तो शायद उन ऋतुनको सेवन कर पाओगे पर आपको सेव्य उनको सेवन कर नहीं पायेगो. क्योंके आपकी ऋतु कुछ ओर है और वाकी ऋतु कुछ ओर हो गयी या स्थितिमें परस्पर सेव्य-सेवकभाव ऋतुके सन्दर्भमें नहीं निभेगो.

समाधान :

ये गम्भीर विचारको विषय है. एक बात समझ लो के यामें कोई भी दिशामें अतिरेक खोटो है. जैसे रोडपे न अधिक दाहिनी ओर गाडी चलानी चहिये न अधिक बांयी ओर; जा ट्रेकपे अपन जा रहे होवें वाके ऊपर ही आगे बढनो चहिये. ऋतुक्रमकी सेवाके विषयमें भी ऐसी ही नीति रखनी पडेगी.

आत्मरति और भक्ति :

एक बात समझो के अपने सेव्यको जो परमात्मा होनेको स्वरूप है वो तो शाश्वत नित्य अनादि व्यापक है. अपने सेव्यके इन पहलूनकु यदि अपनने याद नहीं कियो तो अपन आत्मरतिकु समझ नहीं पायेंगे. परमात्माकु अपन जब तक व्यापक, अनादि और अपने भीतर भी बिराजमान है ऐसे नहीं मानेंगे तब तक अपने सेव्यमें आत्मरतिको भाव जग नहीं सकेगो. अपन आत्मरतिको भाव तो जगा रहे हैं पर वा आत्मरतिकु यदि अपन भक्तिके रूपमें स्वीकार नहीं पा रहे हैं तो वो आत्मरति भक्तिमार्गमें अधिक सहायक नहीं हो पायेगी. याको रहस्य समझो.

सेव्य=कृष्ण-भगवान्-परमात्मा-ब्रह्म

परमात्मा मेरो ही कोई अंदरूनी भाग है, मेरेसु कोई अलग हकीकत नहीं है ऐसे सोचनो आत्मरति है. जैसे हृदय, मस्तिष्क, पेट अपने देहके भाग होवे हैं ऐसे मैं जाकी सेवा कर रह्यो हूं वो मेरो ही कोई भाग है, मेरेसु कोई अलग हकीकत नहीं है ऐसे प्रभुके बारेमें सोचनो आत्मरति कही जावे है. परन्तु यदि केवल इतनो ही स्वरूप अपन परमात्माको मानें तब अपने अंगनमें जैसे अपनकु कोई विशेषता नहीं लगती होवे है ऐसे अपने सेव्यको भी अपनकु माहात्म्य स्फुरित नहीं होयगो. यालिये श्रीमहाप्रभुजी अपनकु समझावे हैं के ' '**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते**'' अपनो सेव्य ब्रह्म है, परमात्मा है, भगवान् है और श्रीकृष्ण है. ' '**सएव कदाचिद् जगदुध्धारार्थम् अखण्डः पूर्णः प्रादुर्भूतः सन् ' कृष्णः' इति उच्यते**''. वो ब्रह्म-परमात्मा-भगवान् जगदुद्धारकेलिये जा बखत पूर्णतया प्रादुर्भूत होवे है तब वाकु 'कृष्ण' कह्यो

जाय है. और ऐसो कृष्ण जब जगदुद्धारकेलिये नहीं पर मेरो-तेरो ऐसे एक-एक व्यक्तिके उद्धारकेलिये जा बखत अपने घरमें घरके ठाकुरतया प्रकट होवे है तब वो अपनो 'सेव्य' कहवावे है. सूरदासजीने गायो है *''नन्दनन्दन कर घरको ठाकुर आप होय रहे चेरो, यामें कहा घटेगो तेरो''.*

कृष्ण अपने घरके ठाकुरजीके रूपमें प्रकट तब होवे है के जब अपन ब्रह्मसम्बन्ध लेके वाकु ये कहे हैं के ये मेरो घर, ये मेरो देह, पत्नी, परिवार, धन ... मेरो सब कछु इष्ट तेरी सेवाकेलिये है. तू मेरो ठाकुर है, मैं तेरो दास हूं. तू मेरो स्वामी है, मैं तेरो सेवक हूं. मैं तेरो हूं. तब वो भी प्रकट होके कहेगो के अच्छा, तब फिरे मैं भी तेरो स्वामी हूं, मैं तेरो सेव्य हूं. या तरहसु कृष्ण अपने घरमें सेव्यतया प्रकट होवे है.

अपनने देख्यो के अपने सेव्यके (कृष्ण-भगवान्-परमात्मा-ब्रह्म ऐसे) एक-एक पहलू परत-दरपरत कैसे सामने आ रहे हैं. आपको ठाकुर कौन है? व्रजलीलामें प्रकट्यो भयो कृष्ण है. द्वापरमें व्रजलीलामें प्रकट्यो कृष्ण भूतलपे कितनो समय बिराज्यो? सो-एकसो दस वर्ष. भूतलपे कृष्ण चाहे कितने ही वर्ष बिराजे पर हैं वो शाश्वत भगवान्, अनादि-अनन्त अजन्मा. ये वाको विरोधी पहलू आ गयो. आपके घरमें जो प्रकट भयो है वो आपको ठाकुर है पर है वो व्रजको कृष्ण **''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः''**. और द्वारपरके अन्तमें गोकुल-मथुरामें प्रकट्यो व्रजाधिप भूतलपे बिराज्यो केवल सो वर्ष. सो वर्ष बिराज्यो करके वाको अस्तित्व क्या केवल सो वर्ष जितनो ही है? ऐसी बात नहीं है. वाको अस्तित्व अनादि-अनन्त है. या अर्थमें अपनो सेव्य ठाकुर भगवान् है. अनादि-अनन्त वाको अस्तित्व केवल वैकुंठमें ही है? नहीं. अनादि-अनन्त वाको अस्तित्व आपकी आत्माके भीतर भी है. या पक्षमें आपको सेव्य ठाकुर परमात्मा हो गयो. और यासु भी आगे बढके अनादि-अनन्त अस्तित्व वाको केवल आपकी आत्मामें ही नहीं है, वाको अस्तित्व कण-कणमें है **''अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति, कृष्णः यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सकलजगदाधारो भवति''**. जो आपकी

आत्माके भीतर बिराज्यो भयो है वो कण-कणमें व्याप्त है. या अर्थमें परमात्मा ब्रह्म हो गयो.

इन विरोधी पहलूनमें सारी बातकु जब तक अपन नहीं समझेंगे तब तक सेवाको सच्चो स्वरूप अपनी समझमें आ नहीं सकेगो. ये ही बात अपनकु ऋतुक्रमकी सेवामें भी समझनी पडेगी के आपकी ऋतु ब्रजके अनुसार होयगी. ब्रजकी ऋतु ठाकुरजी प्रकटे वा बखतके ब्रजके अनुसार होयगी. और वा बखतके व्रजकी ऋतु नित्यलीलाकी नित्य सुखद ऋतुनके अनुसार होयगी. ये विरुद्धधर्माश्रयता जब तक आप ऋतुक्रमकी सेवामें नहीं सोचोगे तब तक ऋतुक्रमकी सेवाकी रीतिको जस्टिफिकेशन आपकु नहीं मिलेगो के जो ऋतुक्रमकी सेवाकी रीति लिखी भयी है वो ऋतु अपन अनुभव नहीं रहे हैं, जो ऋतु अनुभव रहे हैं वो ऋतु ब्रजमें नहीं होवे है, जो ऋतु ब्रजमें है वो ऋतु ठाकुरजी ब्रजमें प्रकट भये वा बखतके जैसी नहीं है ... तात्पर्य ये है के आपकु हर वक्त या बातकु अपने सन्दर्भमें सोचनी है. है तो वो ब्रजको ठाकुर पर आपकु अपने सन्दर्भमें वाकु अपनो ठाकुर माननो है. ऐसे है वो ऋतु आपकी पर वा ऋतुकु आप जब तक वैकुण्ठकी ऋतु मानके नहीं चलोगे तब तक ऋतुक्रमकी सेवाकी समस्याको परिहार नहीं हो पायेगो. याकु आप एक सरल दृष्टान्तसु समझो. आपकु आज गरमी लग रही है. आप वाकु ब्रजकी गरमी समझो.

सोचो के आप अपने ठाकुरजीकु जो माखन भोग धर रहे हो वो माखन आपको है या श्रीयशोदाजीको है? यदि आप यों सोच रहे हो के वो माखन यशोदाजीको है तब तो आपको माखन ठाकुरजी अरोग ही नहीं रहे हैं और यदि आप आपको माखन धर रहे हो तब आप *''माखन-मिसरी भावे मैया मोही''* ऐसे पद कैसे गा पाओगे तो आदमी जैसे एक पैर टिकावे पीछे दूसरो पैर उठाके दूसरी जगह टिकावे है ऐसे निरन्तर अपनकु अपने देश-कालमें एक पैर टिकानो है और एक पैर वाकी शाश्वततामें नित्यलीलामें टिकानो है. नित्यलीलामें टिकाके पाछो दूसरो पैर अपनकु अपने देश-कालमें टिकानो है.

या तरहसु अपन अपने सेवाके साथीके साथ चलेंगे तो अपनी सेवा आधिदैविकी बन पायेगी. अपनी सेवाको साथी कैसो है? वो नित्य, शाश्वत, अनादि, अजन्मा भी है और जनम भी रह्यो है. वो ब्रजको ठाकुर है और वैसे ब्रह्माण्डको नायक भी है. वैसे सोचो तो ब्रह्माण्डके नायककु ब्रजको ठाकुर कहेवेपे वाकी कितनी बडी पदावनति हो रही है राजस्थानके गवर्नरकु आप अजमेरको कलेक्टर् कहो तो वाकी कितनी पदावनति होयगी गवर्नरकु ये सुनके गुस्सा आ सके है पर अने ठाकुरको मझेदार स्वभाव ऐसो है के वाकु यदि आप यों कहो के तु मेरे घरको ठाकुर है तो वाकु ऐसे कभी नहीं लगेगो के मैं इतने बडे ब्रह्माण्डको स्वामी हूं वाकु ये अपने छोटेसे घरको ठाकुर मान रह्यो है वाकु अपनो अपमान नहीं लगे है. करके आप यदि वाकु कहोगे के *''नन्दनन्दन कर घरको ठाकुर आप होय रहे चेरो''* तो वो ऐसे नहीं कहेगो के चल हट, तेरे जैसे तो कितने ही पडे भये हैं मेरे यहां. तू क्या मेरो सेवक बनेगो वो ऐसे नहीं कहेगो. उलटो वो तो ऐसे कहेगो के तू ही मेरो सच्चो सेवक है. तेरे जैसो सच्चो सेवक दूसरो आज तक मोकु मिल्यो नहीं यहां तक भी वो कह देगो. पर ऐसी सोच अपने ठाकुरकी बने वाकेलिये आपके हृदयमें पहले ये भाव होनो चहिये के तेरे जैसो स्वामी मेरो दूसरो कोई हो नहीं सके है. पहली शर्त है ''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति''. एक बखत वाकु या ढंगसु सोचो के तेरे जैसो मेरो स्वामी दूसरो कोई नहीं है तब फिर वो ऐसे सोचेगो के तेरे जैसो सेवक मेरो दूसरो कोई नहीं है.

''यादृशोसि हरेः कृष्णः तादृशाय नमोऽस्तु ते,
यादृशोऽस्मि हरेः कृष्णः तादृशं मां हि पालय''

ये जो श्रीगुसांईजी विज्ञप्ति करे हैं ऐसो भाव जब आपकु जगेगो तब ठाकुरजीकु भी ये भाव जगेगो के जैसो भी तू है वैसो तू मेरो ही है. ब्रजके लोग इन्द्रको आश्रय करवे जा रहे हते तो स्वयं ठाकुरजीने उनकु रोके के भाई अन्याश्रय क्यों कर रहे हो *''हमारो देव गोवर्धन रानो''*. कोई सोच सके है के यामें अन्याश्रय कहांसु भयो? क्या इन्द्र ठाकुरजीसु अलग है? सब देवताएं तो वाके अङ्गरूप हैं. अङ्गकी कोई पूजा करे, ठाकुरजीकु जैसे कोई कडा धरेवे, तो वामें अन्याश्रय कैसे हो जावे? पर समझो के ठाकुरजी यों कह रहे हैं के जब मैं

आखो तोकु उपलब्ध हूं तब तू (विभिन्न देवतारूप) मेरे कोई एक ही अङ्गके पीछे क्यों पड्यो भयो है? ब्रजवासी ऐसी गलती करवे जा रहे हते तब ठाकुरजीने उनकु रोक्यो. क्यों? क्योंके ठाकुरजीने उनकु अपने माने हते. ठाकुरजीने उनकु वा हद तक अपने माने हते के मैं सम्पूर्णतया तुम्हारो हूं. अपन भी जब श्रीगुसांईजीने विज्ञप्तिमें जो भाव प्रकट कियो है ऐसे भावसुं भगवत्सेवा करेंगे तब अपनी हर ऋतुकु प्रभु अपनी ऋतु मानेंगे. अपनी गरमीकु प्रभु अपनी गरमी मानेंगे. अपनी ठंडकु प्रभु खुदकी ठंड मानेंगे. अपनी बरसातकु प्रभु खुदकी बरसात मानेंगे. पर शर्त ये है के पहले अपनी ऋतुमें आप वाकु स्वीकारो. जब आप अपनी ऋतुमें वाकु स्वीकार लोगे तब वो भी आपकी ऋतुनकु अपनी ऋतु मान लेगो. और जब वाने आपकी ऋतुकु अपनी ऋतुके रूपमें स्वीकार ली तब फिर वो ऋतु नित्यलीलाकी ऋतु हो गयी. जैसी भी वो ऋतु है वो नित्यलीलाकी ऋतु है. वो अब कोई लौकिक ऋतु नहीं रह गयी. श्रीमहाप्रभुजी बहुत सुन्दर आज्ञा करे हैं के भक्त जहां भी भगवान्की सेवा करे है वो स्थल वैकुण्ठ बन जावे है, वो फिर भूतल नहीं रह जावे है. ऐसे भक्त भगवानकी जा ऋतुमें सेवा करे है वो ऋतु वैकुण्ठकी आधिदैविक ऋतु हो जाय है, वो फिर लौकिकी ऋतु नहीं रहे है.

अक्सर लोग या बातपे कहते होवे हैं के सेवाकी रीतमें ब्रजकी ही ऋतुकु मान्य कियो गयो है. पर सच बात तो ये है के आज तो ब्रजकी ऋतु भी बदल गयी है. और यदि अपन ठाकुरजी जा बखत द्वापरमें प्रकटे हते वा बखतके ब्रजकी ऋतु सोच रहे हैं तब तो वो ऋतुएं आज बिलकुल रही ही नहीं हैं. आप अभी ब्रजमें जाके देखलो. वा बखतकी ऋतुएं आज नहीं रह गयी हैं.

एक सामान्य बात बताउं हूं. आजसु ३००-४०० साल पहले तक अपनी यमुनाजी बारह महीना बहनेवाली नदी हती. वो भी इतनी बडी हती के जाके द्वारा बहोत सारो माल-सामान एकसु दूसरे शहर आतो-जातो हतो, सेनाके बडे-बडे काफलाएं यमुनाजीके मार्गसु आते-जाते हते. आज स्थिति ये

हो गयी है के वा यमुनाजीमें मथुरा-गोकुलके पास घुटना भर पानी भी बडी मुश्किलसु होवे है. तो देखो बात बदल गयी न यमुनाजी बदल गयीं.

पहले अपन गोकुल-मथुरासुं यमुनाजल भरके लाते हते, अपने यहां(किशनगढ)सु कुन्दनजी यमुनाजल पधरावे ब्रज जातो हतो और वहांसुं यमुनाजीकु पधराके पैदल किशनगढ आतो हतो. मोकु बराबर याद है के तब यमुनाजीको जल दो-दो साल तक बिगडतो नहीं हतो, वामें कभी कीडा पडते नहीं हते, दुर्गन्ध नहीं आती हती. आज स्थिति ऐसी है के आप जल भरोगे वा बखत जलमें कीडा पडे भये दीखेंगे, दुर्गन्ध आयेगी. हकीकत आज ये है के यमुनाजीकु तो दिल्लीके पहले ही बांध बनाके रोक दिये गये हैं. बांधको सारो जल दिल्लीके उपयोगमें ले लियो जाय है. अब स्थिति ये है के दिल्लीकी गटरनकु यदि यमुनाजीमें नहीं छोडें तो यमुनाजीको जल गोकुल-मथुर तक पहोंचे ही नहीं. यासु आज मथुरा-गोकुलमें जो जल बहे है वो यमुनाजीको नहीं है, सारोको सारो जल दिल्लीकी गटरको होवे है. अब वा जलमें तो कीडा होने स्वाभाविक ही हैं न दिल्ली तो जैसे देशकी राजधानी है वैसे पापकी भी राजधानी है. वाके जलमें तो कीडा होने स्वाभाविक बात है. या स्थितिकु सोचके अपने मनमें चिन्ता उठ सके है के तो फिर यमुनाजल कहांसु लानो? एक बात समझो के आपके कुवाके जलसु, नलके जलसु ''**नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा ...**'' बोलके श्रीयमुनाजीकी भावनासु वाकी झारी भरो. यमुनाजल आपकी झारीमें भी आ सके है. जा बखत आपने यमुनाजलके भावसु झारी भरी, यमुनाजलके भावसु स्नान करायो तब फिर वो जल आपके कुवा-नलको जल नहीं रह गयो, यमुनाजल बन गयो. जैसे अखिल ब्रह्माण्डको नायक आपके घरको ठाकुर बनके आ रह्यो है ऐसे ही व्रजाधिप आपके घरमें यमुनाजलसु स्नान करवे पधारेगो. वो यमुनाजलसु जरा भी न्यून नहीं है या बातकु साफ-साफ समझलो. ऐसे ही जो ऋतु आपकु प्राप्त है, जो तन आपकु प्राप्त है, जो धन आपकु प्राप्त है, जो परिवार आपकु प्राप्त है वासु जब आप व्रजकी भावनाके साथ अपने ठाकुरजीकी सेवा करोगे तो श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के भक्त जहां भी भगवत्सेवा शुरु कर देवे है वो स्थल वैकुण्ठ बन जावे

है. वहां रहवेवालो प्रत्येक वासी वैकुण्ठको वासी हो जावे है. वैकुण्ठवासी वा अर्थमें नहीं के जाकी शोकसभा करनी पडे. 'वैकुण्ठ'को बडो अच्छो अर्थ है. जहां कोई तरहकी कुण्ठा नहीं है वो वैकुण्ठ है. जिनकु कुण्ठा है, हाय-हाय है, आज ये नहीं है, आज वो नहीं है, आज लड्डु नहीं है, आज पूडी नहीं है, आज मनोरथी नहीं है, आज कोई रसीद फडानेवालो नहीं है ऐसे जो हाय-हाय करते रहे हैं वो सब कुण्ठावासी हैं, वैकुण्ठवासी नहीं हैं. पद्मनाभदासजीके अंदर कोई तरहकी कुण्ठा नहीं हती. मथुराधीशजी भी छोलाको भोग अरोगवेमें प्रसन्न हते. वो अडेल गये और वहां श्रीमहालक्ष्मीजीने उनके वहां जब सीधा भिजवायो तब पद्मनाभदासजीमें मथुराधीशजीसु ये पूछवेकी सामर्थ्य हती के आपकु सीधामें आयी भयी सामग्री अरोगनी है के मेरे छोला अरोगने हैं? मथुराधीजीकु भी कोई ऐसी कुंठा नहीं हती के उनकु छोला आरोग-अरोगके कंटाला आ गयो होवे. मथुराधीशजीने उनकु आज्ञा करी के मोकु तो छोला ही भावे हैं. पद्मनाभदासजीने सोच्यो के तब फिर चिन्ताकी क्या बात है सीधाकु पहोंचाओ पाछो श्रीमहालक्ष्मीजीके पास और अपन अपने छोला अरोगाने और वाको महाप्रसाद लेने चलो अपने घर. श्रीमहाप्रभुजीने भी ये ही बात कही के ''सीधो पठवायो तातें गयो. नाहीं तो न जातो''. क्योंके पद्मनाभदासजीके भीतर छोला मात्रको भोग ठाकुरजीकु धरवेमें कोई तरहकी कुण्ठा नहीं हती. ऐसे ही न उनके ठाकुरजीमें ही ऐसी कोई कुंठा हती के ये मोकु केवल छोला ही भोग धर रह्यो है. दोनों छोलामें राजी हते. याको नाम वैकुण्ठवास.

अपनकु हाय-हाय है के बूंदी नहीं आयी, मठडी नहीं आयी, मोहनथाल नहीं आयो. हाय-हाय हाय-हाय ... ये सब कुंठा है. अपन वैकुंठवासी नहीं हैं. अपन कुंठावासी हैं. वैकुण्ठवासी वो है के सहजतासु जो उपलब्ध होवे वामें प्रसन्न होके जो सेवा करे ''*सहज प्रीति गोपाले भावे*''. पद्मनाभदासजी छोलामें ही सब सामग्रीको भाव कर लेते हते के ये दाल अरोगो, ये कढी अरोगो, ये भुजेना अरोगो, ये मीठो भात अरोगो, ये मोहनथाल अरोगो. होते सब छोला ही छोला. पर ठाकुरजी क्योंके वैकुण्ठवासी हैं करके उनकु छोलामें मोहनथालको स्वाद आतो हतो, बूंदीको

स्वाद आतो हतो. अरोग छोला रहे हैं तो बूंदीको स्वाद आ कैसे सकेगो पर ऐसी कुंठा मथुराधीशजीकु नहीं है, ऐसी कुंठा पद्मनाभदासजीमें नहीं है करके दोनों वैकुण्ठमें वास कर रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के भगवान्‌को भक्त जहां भी सेवा शुरु कर दे है वो वैकुण्ठ बन जाय है, जा वस्तुसु सेवा करे है वो वस्तु वैकुंठकी वस्तु बन जाय है. वामेंसु सारी कुंठाएं निवृत्त हो जायेंगी.

जितने विवाद ऋतुक्रमकी सेवाके बारेमें चल रहे हैं के कौनसी ऋतुके अनुसार सेवा करनी; अपने गांवकी ऋतुके अनुसार करनी के ब्रजकी ऋतुके अनुसार करनी, ब्रजकी भी श्रीमहाप्रभुजीके समयकी ऋतुके अनुसार या ठाकुरजी प्रकटे वा समयकी ऋतुके अनुसार करनी ... ये सब क्षुद्र मुद्‌दाएं हैं. श्रीमहाप्रभुजीको राजमार्ग पकडोगे तो बात समझमें आ जायेगी के जा कालमें भक्त भगवान्‌की सेवा कर रह्यो है वो ऋतु वैकुंठकी ऋतु है. ये ऋतुक्रमकी सेवाको गम्भीरतम रहस्य है. ये नहीं समझोगे तो ऋतुक्रमकी सेवामें चूक जाओगे.

''पढ-पढ पोथी जग मुआ पंडित हुवा न कोय,
ढाई अक्षर प्रेमका पढे सो पंडित होइ''

पोथीनको ऋतुक्रम पढ-पढके बुद्धि थोथी हो जायेगी. पर यदि प्रेमके या रहस्यकु समझ जाओगे जो श्रीमहाप्रभुजीने समझायो है के भगवान्‌को भक्त जहां भी भगवान्‌की सेवा कर रह्यो है वो स्थल वैकुण्ठ हो जावे है, भगवान्‌को भक्त जा ऋतुमें भगवान्‌की सेवा कर रह्यो है वो ऋतु वैकुण्ठकी ऋतु हो जा रही है. या रहस्यकु समझके जब आप सेवा करोगे फिर ऋतुक्रमकी सेवाको क्रम न आपकु अखरेगो न वामें कोई विरोधाभास आपकु लगेगो.

प्रश्न : पुष्टिविधानम् पुस्तकमें नवरत्नके तीसरे-चौथे श्लोकको तात्पर्य समझाते भये श्लोकनकी उत्थानिकामें लिख्यो है :

''निवेदितात्मना निवेदितेषु अनिवेदितेषु वा स्वस्य स्वकीयानां वा विनियोगेपि भक्त्यर्थं क्रियमाणा चिन्ता आत्मनिवेदनस्वरूपविचारेण निवर्तनीया''.

याको तात्पर्य समझावेकी कृपा करो.

समाधान : एक स्थूल उदाहरण दे रह्यो हूं. आप सेवामें जावेकेलिये स्नान करवे जा रहे हो. पत्नी या मां ने आपके नहावेकी तैयारी कर दी. जल गरम करके रख दियो. आप नहा लिये और ठाकुरजीकी सेवामें गये. येमें ध्यानसु देखो तो सेवा आप कर रहे हो पर परिवारके जिन लोगनने आपकी सहायता करी है उनने भी एक तरहसु सोचें तो ठाकुरजीकी सेवा करी है. कैसे करी है? ठाकुरजीकी सेवा नहीं करी है, ठाकुरजीके सेवककी सेवा करी है. ये भी एक तरहकी सेवा है. क्योंके ठाकुरजीके सेवककी सेवा यदि ठाकुरजीको सेवक नहीं करेगो तो अन्तमें व्यवधान ठाकुरजीकी सेवामें ही पडेगो. तो ठाकुरजीके सेवककी सेवा भी एक तरहकी सेवा है. श्रीगुसांईजीके सेवक कणबीकी वार्तामें आवे है के ठाकुरजी उत्तम दूध अरोगें वाकेलिये वो ठाकुरजीकी गैयानकु घास धोके खवातो. इतनी सावधानीसु गायकी सेवा करतो. अब ये सेवा ठाकुरजीकी मानी जायगी के गायकी? ठाकुरजीकी ही सेवा मानी जायगी. ठाकुरजीकी गायकी सेवा ठाकुरजीकी ही सेवा है.

अब आपके प्रश्नको विचार करें. जाने आत्मनिवेदन कियो है वाको कभी निवेदितमें विनियोग हो सके है तो कभी अनिवेदितमें भी विनियोग हो सके है. जैसे, मैने जब आत्मनिवेदन कियो वा बखत मेरी बेटीको भी निवेदन प्रभुकु कियो हतो. अब मानलो के मेरी बेटी ठाकुरजीकी सेवा नहीं कर रही है, वाके पतिकी सेवा कर रही है. या स्थितिमें मोकु चिन्ता होयगी के मैने तो मेरी बेटीको निवेदन प्रभुकु कियो हतो पर वाको विनियोग प्रभुसेवामें नहीं हो रह्यो है तो मेरो निवेदन खोटो तो नहीं हो जायेगो? श्रीमहाप्रभुजी समझा रहे हैं के ऐसी चिन्ता करनी खोटी बात है. क्योंके अपनने आत्मनिवेदन प्रत्येकको नहीं, सबको कियो है.

प्रत्येक और सब में अन्तर होवे है. मानलो के या बखत प्रवचनमें

कुछ लोग सो रहे हैं. ऐसेमें मैं कहूं के ''सब लोग मेरी बात सुनो'' तो मेरो विधान सच्चो पडेगो के खोटो? मेरो विधान तब खोटो पडतो के जब मैं कहतो के ''प्रत्येक व्यक्ति मेरी बात सुने''. मैनें क्योंके हर एकके लिये विधान नहीं कियो है यासु मेरो विधान खोटो नहीं मान्यो जायगो. अंग्रेजीमें याकु *ऑल्* और *ईच एन्ड् एव्री* कह्यो जाय है. ऐसे ब्रह्मसम्बन्धमें अपनने हर एकको निवेदन नहीं कियो है, सबको कियो है. जैसे, मानलो के जा बखत अपनो ब्रह्मसम्बन्ध भयो वा बखत अपनी शादी नहीं भयी है. अपन ब्रह्मसम्बन्धमें तो पत्नी-बच्चा सबको निवेदन करे हैं. जब शादी ही नहीं भयी है तब पतकी कहां है? पत्नी ही नहीं है तब बच्चा कहांसु आयेंगे? ठाकुरजी कहेंगे के मेरे ही सामने जूठ बोले जूठ बोलवेकेलिये दूसरो कोई नहीं मिल्यो शादी भयी नहीं है और बच्चान्को समर्पण कर रहे हो समझवेकी बात ये है के मन्त्रमें पत्नी बच्चा को उच्चार *ईच एन्ड् एव्रीके* अर्थमें नहीं है सबके अर्थमें है. होवें तो सच्चे, नहीं होवें तो सच्चे. घर-धन होवें तो सच्चे नहीं होवें तो सच्चे. तात्पर्य ये है के निवेदन प्रत्येकको नहीं है, सर्वको है. सर्वको निवेदन है तब यदि वामेंसु कोई सेवामें आयो तो अच्छी बात है. सेवामें यदि नहीं आयो तो चिन्ताकी क्या बात है? अपनने तो सबको निवेदन कर ही दियो है

मैं अक्सर या बातकु या तरहसुं समझाउं हूं. अपने यहां कोई महेमान आये. अपनने वाके भोजनकेलिये थालीमें बीस-पच्चीस चीज परोस दी. वामेंसु वाकु जो वस्तु पसन्द आवे वाकु वो खावे. पर यदि कोई मेजबान महेमानके पीछे हंटर ले के पड जाय के ये खाओ, वो खाओ, ये क्यों नहीं खायो, वो क्यों नहीं खायो ... तो वो सोचेगो के महेमाननवाझी कर रहे हो के गुलामी करवा रहे हो. ऐसे कोई मेझबान अपने पीछे पड जाय तो बडी भारी परेशानी हो जाय. भाती चीज भी भानी बंद हो जाय. ऐसे ही आत्मनिवेदन करवेवालेकु प्रभुके पीछे नहीं पड जानेको है के महाराज समर्पण तो मैने कर दियो है अब याको उपयोग करो, वाको उपयोग क्यों नहीं कियो ... ठाकुरजी कहेंगे के भाई मेरी इच्छा होयगी वाको करूंगो, नहीं होयगी तो नहीं करूंगो.

तेने समर्पण कर दियो. तू अब छुट्टो. मोकु जाको समर्पण स्वीकारनो होयगो वाको स्वीकारूंगो, जब स्वीकारनो होयगो तब स्वीकारूंगो. ठाकुरजीकी सोच समर्पणके बारेमें ऐसी है. या स्थितिमें जब अपन कोईके अन्यविनियोग या प्रभुमें अविनियोग कु लेके चिन्ता करवे लगे हैं तो वाको मतलब ये है के अपन समर्पणके भावकु समझ नहीं पाये हैं.

प्रत्येकके समर्पणमें कोई तरहको अहंकार बोले है. सर्वके समर्पणमें वैसो अहंकार नहीं है. वामें तो जो है वो भी समर्पित है, नहीं है वो भी समर्पित है. पर प्रत्येकके समर्पणमें तो जो नहीं है या जो होनेवालो है वाको तो समर्पण हो ही नहीं पायेगो. प्रत्येकके समर्पणमें कुंवारो आदमी ब्रह्मसम्बन्ध ले ही नहीं पायेगो. पहले वाकु शादी करनी पडेगी. केवल शादी करनेसु भी काम नहीं चलेगो. बच्चा भी पैदा करने पडेंगे. मन्त्रमें 'आप्त' भी लिख्यो भयो है यासु दोस्त भी बनाने पडेंगे. गाममें सबनसु दोस्ती करवे निकलो. क्यों? बोले की ब्रह्मसम्बन्ध लेनो है. ऐसे प्रत्येकको समर्पण नहीं है. यहां मन्त्रमें जो बातें गिनायी गयी हैं वो प्रत्येकके अर्थमें नहीं गिनायी गयी हैं, सबके अर्थमें गिनायी गयी हैं. हम तो आपकु सब कछु समर्पित कर रहे हैं आपकु जो अच्छो लगे वाकु वापरो. या तात्पर्यसु नवरत्न ग्रन्थके पांचवे श्लोककी उत्थानिकामें कह्यो है के

''निवेदितात्मना निवेदितेषु अनिवेदितेषु वा स्वस्य स्वकीयानां वा विनियोगेपि भक्त्यर्थं क्रियमाणा चिन्ता आत्मनिवेदनस्वरूपविचारेण निवर्तनीया''

(पुष्टिविधानम् संस्कृत पृष्ठ ३०).

आत्मनिवेदन जाने कियो है वाको अथवा वाके आत्मीय जनन्को विनियोग निवेदित अथवा अनिवेदित लोगन्के कार्यमें होतो होवे तब वाकु अपनी भक्तिके विषयमें चिन्ता होवे है. ऐसी चिन्ताको निवारण आत्मनिवेदनके स्वरूपको विचार करके करनो चहिये.

आत्मनिवेदनको स्वरूप क्या है? ये कि अपनने प्रत्येकको समर्पण नहीं कियो है, सर्वको कियो है. प्रत्येकके समर्पणमें तो इन्वेन्ट्रि जैसी

कारवायी करनी पडेगी. जैसे कोई अधिकारी दूसरे अधिकारीकु चार्ज देवे तब अपने चार्जमें जितनी चीज-वस्तु होवे उन सबनकी सूचि बनाके वा सूचिसु चीज-वस्तु प्रत्यक्ष मिलाके दूसरे अधिकारीकु चार्ज देतो होवे है. वामें यदि एक भी वस्तुमें गडबड भई तो दूसरो अधिकारी चार्ज नहीं संभालेगो. वो कहेगो के सूचिमें लिखी भयी वस्तु गायब है. पर प्रत्येकको नहीं करके सर्वको समर्पण यदि अपन कर रहे हैं तो वामें सूचि बनानेकी जरूरत नहीं पडे है. भूत-भविष्य-वर्तमान सबको समर्पण कर दियो जाय है. यासु 'सर्व' कहनेसु कोई चीज घट-बढ जाय तब भी बात खोटी नहीं पडे है. पर 'प्रत्येक' कहवेपे बात खोटी पड सके है. यासु ब्रह्मसम्बन्ध प्रत्येकके अर्थमें नहीं है, सर्वके अर्थमें है. यासु कोई वस्तु प्रभुके काम आ रही है तो अच्छी बात है, नहीं आ रही है तो प्रभुकी इच्छा. तोडो फेंको रखो करो कुछ भी, दिल हमारा है एक खिलौना. जो करनो होवे सो करो. हमने तो तुमकु सब समर्पित कर दियो है. तुम खेलोगे तब भी मजा है, फेंको-तोडो तब भी मजा है.

वाजिदलि शाहके पास पन्नाको एक प्याला हतो. एक दिन वाकी चहेती एक दासी पन्नाके प्यालामें कछु पिवावे आ रही हती. अचानक वाके हाथसु वो प्याला गिरके टूट गयो. दासी बिचारी डरसु कांपवे लगी. वा दासीकु वाजिदलि शाह बहुत चाहतो हतो. वाकु डरती देखके वाने दासीकु कही के तेरे सामने या पन्नाके प्यालाकी क्या बिसात है जो वाके टूटवेपे डर रही है. जा कारणसु तू डर ही है वो तेरे डरकु निकालनो पडेगो. एक काम कर एकसु बढके एक मेरे जितने भी कीमती प्याला हैं उन सबकु अपने हाथसु तू मेरे सामने तोडदे. वाने सब प्याला तुडवा दिये. वाजिदलि शाह जितनो वाजिब है वाके करते अनेक गुनो वाजिब अपनो ठाकुर है. या रहस्यकु समझो. पर शर्त इतनी है के स्नेह होनो चहिये. आपको स्नेह वापे है तो वाको भी आपपे स्नेह है ''भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति''. शर्त स्नेह भक्ति आत्मरति की है. सेवा शुद्ध स्नेह आत्मरति भक्ति सु करवेकी है. न पगारकी लालचमें करवेकी है, न भयसु करनी है, न गुलामीसु करनी है, न डकैतकी तरह करनी है, न ठगाई करवेकेलिये करनी है, न दया-परोकार या धर्मप्रचार केलिये करनी है. ठाकुरजी

तो सकल जगतके कण-कणमें व्याप्त हैं, अपने हृदयमें बिराजते परमात्मा हैं, व्यपिवैकुण्ठ ब्रह्माण्डको नायक है. वो अपने घरमें अपने घरको ठाकुर बनके आयो है नीके राखि जशोदा मैया नारायण घर आयो, यह धन धर्महीतें पायो. ये अपने यहांकी सेवाको रहस्य है. याकु जब तक आप ऋतुक्रममें नहीं समझोगे तब तक ऋतुक्रमकी सेवा आपकु उलझन भरी लगेगी.

ऋतुक्रममें वस्त्रको प्रकार :

सेवाके ऋतुक्रमके विचारमें कुछ मौलिक बातन्को खुलासा मैने कल कियो. रागके सम्बन्धमें भी खुलासा परसों कियो हतो.

नित्यक्रममें ऋतुके अनुसार परिवर्तन करनो वाकु 'ऋतुक्रम' कह्यो जाय है. या परिभाषाकु पकडके वस्त्र-शृंगारके विषयमें अपने यहां जो बारीक सावधानीयें रखी गयी हैं उनको विचार आज अपन करेंगे.

मर्यादामार्गमें जहां भगवन्मूर्तिकी पूजाको प्रकार होवे है वहां प्राय: दो तरहसु वस्त्र-शृंगार धरावेको क्रम देख्यो जाय है. एक प्रकारके तहत शास्त्रमें वर्णित पीतांबर, आयुध, कवच, बाजुबंद, किरीट आदि प्रतिदिन धरा दिये जाय हैं. आप यदि दक्षिणमें जाओ तो वहांके विष्णुमन्दिरमें आपकु ठाकुरजीके या तरहके वस्त्र-शृंगार धरे भये दर्शन होंगे. थोडो-बहोत परिवर्तन कभी होवे है पर अधिकतर प्रकार एक जैसो रहे है. अपने यहां वस्त्र-शृंगारमें जैसी विविधता है वैसी विविधता वहां नहीं है. दूसरो प्रकार, आज-कल मर्यादामार्गीय नये मन्दिरन्में अपनी प्राचीन प्रणालीकु बंद करके साप्ताहिक प्रणालिको अनुसरण होतो दीखवे मिले है. जैसे रवीवारकु ऐसे शृंगार-वस्त्र, मंगलवारकु ऐसे शृंगार-वस्त्र ... ऐसे साप्ताहिक क्रम चल निकल्यो है. अपने यहां ऐसो यान्त्रिक क्रम नहीं है.

अपने यहांके नित्यसेवाके क्रममें जैसी विविधतासु ठाकुरजी वस्त्र धरे हैं वाको दृष्टान्त देखोगे तो आपकु आश्चर्य होयगो. जैसे ठाकुरजी जब उष्णकालमें पौढें तब यदि स्वरूप ठाडे होवें तो श्रीअंगपे तनिया धरके पौढे हैं. लालन होवें तो ऐसे ही पौढें. शीतकालमें आत्मसुख धरके भी पौढें. कई लोगन्कु ऐसी भ्रान्ति है के पौढते बखत ठाकुरजीकु दस रजाई भले ओढादो पर श्रीअंगपे कोई वस्त्र नहीं होनो चहिये. ये बेवकूफीपूर्ण कल्पना है. याको पुष्टिमार्गीय सेवाके साथ कोई लेन-देन नहीं है. शीतकालमें ठाकुरजी आत्मसुख धरके पौढे हैं. ये तो पौढते बखतको वस्त्रको प्रकार भयो.

ठाकुरजीके जागवेके पीछे वस्त्र धरवेको प्रकार अलग हो जाय है. तनिया धरके पौढे ठाकुरजी मंगलामें केवल तनिया धरके नहीं बिराजे हैं. श्रीअंगपे वस्त्र धरे हैं. ये वस्त्र भी पाछो मंगलासु लेके स्नान होनेसु पहले तक ही धरे हैं. क्योंके स्नानके बाद सन्ध्या आरती पर्यन्त धरवेके वस्त्र पाछे अलग होवे हैं. सन्ध्या आरती पीछे जब ठाकुरजीके शृंगार बडे होवें वहांसु लेके ठाकुरजी पौढें वा बीचके समयमें वस्त्र धरवेको प्रकार पाछो अलग होवे है. ये तो नित्यकी सेवाकी बात बता रह्यो हूं. सामान्यतया लालनकु ओढनी धरायी जाय है. पर ठाडे ठाकुरजीके वस्त्रमें अन्तर होवे है.

वस्त्र धरावेके प्रकारकी बारीकीको अधिक विचार करें तो ठाकुरजी जागवेसु लेके स्नान होवे वहां तकके वस्त्र, जाकु अंग्रेजीमें टाइट् फिटिंग कहे हैं, ऐसे कसे भये वस्त्र नहीं धरे हैं. अपनकु भी ऐसे कपडा सुहाते नहीं होवे हैं. आजकल अंग्रेजनकी देखा-देखी अपने यहां भी ढीले-ढाले झबर-झोला जैसे स्लीपींग् गाउन आदि पहनवेकी फैशन चली है. पर जुने जमानामें अपने यहां ऐसो प्रकार नहीं हतो. वो जो भी होवे पर वाके भीतर रहे भये सिद्धान्तकु ध्यानसु समझो. कसे भये कपडा पहनके सोवेसुं रक्तसञ्चार ठीकसु नहीं होवे है. ढीले-हलके कपडा पहनके सोवेसुं रक्तसञ्चार ठीकसु होवे है. वाके कारण अपनकु निद्रा भी ठीकसु आवे है. याको विचार करके अपने यहां ठाकुरजीकु पौढाते बखत शीतकालकु छोडके केवल तनिया धराके पौढायो जाय है.

जब ठाकुरजी जगें तब, स्नान नहीं होवे तब तक अपनकु जैसे सुस्ती रहे है और वा बखत कसे भये कपडा पहनने अपनकु अच्छे नहीं लगे हैं वैसे ठाकुरजीकु भी सुस्ती रहे है ऐसे विचारसु वाके अनुरूप वस्त्र धरे हैं. यासु ठाकुरजीकी सुस्तीमें परिश्रम पडे ऐसे वस्त्र ठाकुरजीकु धराने नहीं चहिये. करके ठाडे स्वरूप जागवेके पीछे प्राय: आडबंध धरे हैं. औरतें जैसे साडी पहने हैं वा तरहको बिना सिल्यो वस्त्र होवे है. वाको एक छोर बायें स्कन्धके ऊपरसु पीछेकी ओर जावे और दूसरो छोर छाती, कमर और घुटना कु ढंकतो भयो पीछेकी ओर जावे है. अपने यहांके वस्त्रको ये बहोत प्राचीन प्रकार है. हजारन् वर्ष पुरानी गुफान्की मूर्ति और चित्र में आपकु आडबंध पहने भये रईस-राजा देखवे मिलेंगे. पीछेसु अपने यहां वैसे वस्त्र पहनवेकी पद्धति लोकमें खत्म हो गयी. पर श्वेताम्बर सम्प्रदायके जैन साधु आज भी वा तरहके आडबंध पहने हैं. मुसलमान लोग भी जब हज करवे जावें तब आडबंध पहनते होवे हैं. तो ये अपने यहांकी नित्यसेवामें मङ्गला समय धरायो जातो वस्त्र है. यदि गरमी अधिक है तो कंधापे नहीं धराके केवल कटिपे वस्त्र धरायो जाय है. ये ऋतुक्रमकी सेवाकी बात है.

जब ठाकुरजीकु स्नान हो जावें तब लालनकु वाघा और ओढनी ऐसे दो ही तरहके वस्त्र धराये जाय हैं. वाघा बगलबंदी जैसे दो पासा वालो वस्त्र होवे है. वाके उपर ओढनी धरायी जाय है. पर ठाडे स्वरूपके वस्त्रमें बहोत विविधता है. उष्णकालमें आडबंध, पिछोडा, धोती, करघनी(महात्मा गांधी पहेनते वैसी आधी धोती), मल्लकाछ ऐसे विविध प्रकारके वस्त्र धरे हैं. ये वस्त्र भी शृंगारके अनुरूप धरे हैं. जैसे टिपाराको शृंगार होवे तो वस्त्र मल्लकाछके धरें. ये सब ऐसे वस्त्र हैं के जाकी फिटिंग कहींसु भी टाइट् नहीं है. उष्ण ऋतुके कारण प्रभुकु श्रम नहीं होवे वा विचारसु प्रभुकु ऐसे वस्त्र धराये जाय हैं.

जब जन्माष्टमी आ जावे तबसु ठाडे स्वरूपकु चाकदार वाघा, सूथन, काछनी आदि वस्त्र धराने शुरू होवे हैं. ये वस्त्र ठाकुरजी सन्ध्या आरती पर्यन्त

धारण करे हैं. ठाकुरजी गोचारण करके पाछे नन्दघरमें पधारें वा बखत श्रीयशोदाजी अपने बेटाको स्वागत करे हैं वो सन्ध्या आरती कहवावे है. ठाकुरजी गोचारण करके घर पधारे हैं. श्रमित हैं. अपन भी कहीं बाहर गये होवें तब अलग कपडा पहनते होवे हैं. जैसे वकील काले-सफेद कपडा पहनके जावे हैं, बच्चाएं स्कूल-युनिफॉर्म पहनके जावे हैं, नौकरी करनेवाले उनको युनिफॉर्म पहने हैं. लौटके जब अपन घर आवें तब बाहरके कपडा बदलनेकी इच्छा अपनकु होवे है वैसे ठाकुरजी भी बाहरके वस्त्र बदलके हलके-फुलके वस्त्र धरवेकी इच्छा करे हैं. आपने अनुभव कियो होयगो के घरमें घुसते ही लोग फटा-फट बाहरके कपडान्कु फेंकनो शुरू करते होवे हैं. ये अपनी रुचि-प्रकृतिकी बात है. याके आधारपे नित्यसेवाके क्रममें अपने यहां ठाकुरजीके वस्त्र सन्ध्या आरतीके पीछे बदलवेको प्रकार रख्यो गयो है. गोचारण करके ठाकुरजी जैसे ही घर पधारें तब उनकी अगवानी करके तुरंत धरे भये शृंगार बडे कर (उतार) दिये जाय हैं. केवल शृंगार ही नहीं, वस्त्र भी बडे कर दिये जाय हैं. क्योंके दिनभर जिन वस्त्रनकु ठाकुरजी धरे हैं वो वस्त्र घरमें पधारे पीछे धरे रहनो अच्छो नहीं लगे है. स्कूलसु जब बच्चा घर आवे तब आपने देख्यो होयगो के मां और बच्चा के बीच अक्सर ये ही बातकु लेके विवाद होतो होवे है के बच्चा स्कूलके कपडा ठिकाने क्यों नहीं रखे है, यहां-वहां क्यों फेंकतो फिरे है. अपनी ये प्रकृति है के दिन भर पहने भये कपडा घरमें आवेके पीछे अपनकु सुहाते नहीं होवे हैं. या प्रकृतिकु अपनने प्रभुमें देखी है, देखी ही नहीं है स्वीकारी है, प्रभुने भी याकु स्वीकारी है के भाई तुम यदि मेरेमें अपने जैसी प्रकृति चाह रहे हो तो ठीक है, मेरी भी प्रकृति तुम्हारे जैसी ही है. करके सन्ध्या आरती पीछे शृंगार बडे होके यदि शीतकाल होवे तो टाइट्र फिटिंगके वस्त्र श्रीअंगपे रहें (जहां जैसी रीत होवे तद्नुसार) उष्णकाल होवे तो सब वस्त्र बडे होके मंगलाके बखत धरें ऐसे ढीले-ढाले वस्त्र धरें. ये वस्त्र पौढें तब तक ठाकुरजी धरे हैं. देखो, ये तो प्रतिदिनकी सेवामें धरते वस्त्रके प्रकारमें बरती गयी सावधानी है. ऐसी बारीक सावधानी अन्य मार्गमें मिलनी बहोत मुश्किल है.

एक बखत मैं हरिद्वार गयो. रेल्वेस्टेशनके पास एक पाटीयापे लिख्यो

हतो ''गोस्वामी श्रीगिरिधरलालजी महाराजकी हवेली''. मोकु बडो आश्चर्य भयो. कभी सुन्यो नहीं के हरिद्वारमें कोई गोस्वामी बिराजे है. मोकु उनसु मिलवेकी बडी उत्कंठा भयी. मैं वहां गयो तो जान्यो के उनको एक बेटा हलवाई है, एक दरजी है और एक हवेली चलावे है. मैने उनसु पूछी के आप कहांके महाराज हो? तो वो बोले के जैसे सब हैं ऐसे ही हम भी हैं मैने कही के आपके बारेमें कभी कहीं सुन्यो नहीं या लिये पूछ रह्यो हूं. वो बोले के हम तो कई सालनसु यहां आके बस गये हैं. लोग हमकु भूल गये पर हम थोडी अपने आपकु भूल सकें मेरी जिज्ञासा और बढ गयी. मैने उनके सेव्यस्वरूपके बारेमें पूछी. उनने श्रीगोपीनाथजी या ऐसो कछु नाम बतायो. मैने दर्शन करवेकी इच्छा प्रकटकी तो बोले कि शयन हो गये हैं. लाचार हो के उनकी आज्ञा लेके मैं मन्दिरको अवलोकन करवे निकल्यो. निजमन्दिरके पास गयो तो वहांकी बत्ती जुड रही हती. मोकु आश्चर्य भयो के शयन हो गये तब भी बत्ती कैसे जुड रही है मेरी उत्कंठा ओर बढी. दरवाजाकी सेंधमेंसु मैने देख्यो तो भयंकर गरमीके दिननमें ठाकुरजी भपकादार जगमगाते जरीके वस्त्र और भारी शृंगार धरके बिराजे भये हते. मैने कही, प्रभु आप या कारागारमें पारावार परिश्रममें बिराज रहे हो. अपन और क्या कर सकें पर बात समझो के आदमी ऐसे सो नहीं सके है. एक दिन प्रयोग करके देखलो. तो देखो, पुष्टिमार्गके नामपे ऐसी हवेलियें अनेक चल रही हैं पर ठाकुरजीकी सेवाके पीछे रही भयी भावना वहां नदारद है. डेकोरेशन सब मौजूद है. यद्यपि श्रीमहाप्रभुजीने ये बात कोई दूसरे सन्दर्भमें कही है के '**'क्रिया सर्वापि सैवात्र परं कामो न विद्यते**'' पर वाकी पैरोडी पुष्टिमार्गके नामपे चलती ऐसी हवेलीन्की वास्तविकताकु समझवेकेलिये ऐसे बनायी जा सके है के ''रीतिः सर्वापि सैवात्र परं भावो न विद्यते''. रीत सब वो-की-वो है पर उन रीतके पीछे रह्यो भयो भाव वहांसु नदारद है. भाव बिनाकी रीति तो रीति=खाली है. या घटनाके पीछे मैं दो-तीन बार हरिद्वारा गयो पर गिरिधरलालजी महाराजके वहां नही गयो. जाके पापको उदय भयो होवे वो ऐसी जगह जावे, अपनकु क्यों जानो ऐसी हवेलियें अपने सम्प्रदायमें बहुत चले हैं. प्रायः वैष्णवन्की हवेलीकु देखते ही लार टपकवे लगती होवे है. पांवनमें डायनेमा घूमवे लग जाय है. प्रवाही लोगन्की रुचि ऐसी ही होवे है.

उनकु रीत ही पसन्द आती होवे है प्रीतिकी उनमें गंध भी नहीं होवे है.

क्रिश्चियन सम्प्रदायमें एक मजाक चले है. एक बखत कोई भगवान्‌को शुद्ध भक्त प्रार्थना करने चर्चमें जानो चाहतो हतो. वाकु कोईने अंदर घुसने नहीं दियो. वाने चर्चके बाहर बैठके प्रार्थना करनी शुरू करी. इतनेमें कोई एक गरीब वाके पास आके बैठ गयो. वाने गरीबसु पूछ्यो के तुम कौन हो? वाने कह्यो के मैं तो क्राईस्ट हूं. वाने कही के तुम बाहर क्यों बैठे हो? तुमकु तो चर्चके अंदर होनो चहिये वाने जवाब दियो के जबसु ये चर्च खुल्यो है तबसु मैं अंदर घुसवेकी कोशिश कर ह्यो हूं पर घुस नहीं पा रह्यो हूं. मेरे भक्त सब जरूर अंदर घुसे भये हैं पर मैं अंदर घुस नहीं पा रह्यो हूं. ऐसे ही पुष्टिप्रभु इन हवेलीन्‌में बिराजे नहीं है या रहस्यकु तुम आज समझ लो. पुष्टिप्रभु आपके घरमें बिराजे है. आपकु यदि आपके माथे बिराजते ठाकुरजीमें भाव है तो आपके घरमें पुष्टिप्रभु बिराजे है, श्रीमहाप्रभुजीकी कानिसु. प्रवाही वैष्णवें हवेलीन्‌में घुसते रहे हैं पर पुष्टिप्रभु क्राईस्टकी तरह बाहर बैठ्यो मिल जायेगो. वो बाहर कहीं बैठ्यो भयो सबन्‌कु अंदर घुसते देखतो रहे है पर खुद अंदर घुस नहीं पावे है. नो एड्‌मिशन्‌ विधाउट्‌ परमिशन्‌ पुष्टिप्रभुको हवेलीमे प्रवेश निषिद्ध है बाकी सबको प्रवेश वहां मान्य है. ये हवेलीन्‌को रहस्य है जाकु अपनकु समझनो चहिये.

नित्यक्रममें ठाडे स्वरूपके पाग, फेंटा, दुमाला आदिके शृंगार हलके शृंगार के जाय हैं. इन शृंगारनमें या तो करधनी धरें या आडबंद धरें. टिपाराको शृंगार अपने यहां ठाकुरजीके नटवरवपु होनेकी लीलाको शृंगार मान्यो जाय है. एकादशीके दिन प्राय: या तो मुकुट आवे या टिपारा आवे. उष्णकालमें अधिकतर टिपाराके शृंगार धरते होवे हैं. टिपारा-मल्लकाछमें ठाकुरजीके दर्शन करते ही अपनकु लगे के ठाकुरजीकु गरमी लग रही है. मल्लकाछ आजकल जाकु हाफ-पेंट कहे हैं वा तरहको वस्त्र है. दोनोंके बीच अंतर आगेकी ओर लटकते छोरको होवे है. पहेलवान पहेलवानी करते बखत जब वस्त्र काछे है तब आगे छोर लटके है. मल्लकाछको शृंगार उष्णकालको खास शृंगार है.

वचनामृतमें आवे है के प्राचीन बहोतसे बालकनको ये प्रिय शृंगार हतो. श्रीनाथजीकी वार्तामें तो यहां तक आवे है के कोई बालक श्रीजीकु बहोत अच्छी तरहसु मल्लकाछ-टिपारा धराते. कोई कारणवश वो बालक श्रीजीकु शृंगार धरावे पहोंच नहीं पाये तो श्रीजीने शृंगार धरवेकी ना पाडदी. वो बालक जब धरायेंगे तब ही मल्लकाछ धरुंगो. ये प्रभुकी परवशता है.

वचनामृतनमें वर्णन आवे है के कोई बालक पाग सुंदर धराते, कोई फेंटा सुंदर धराते. पागके भी अनेक प्रकार होवे हैं. सब तरहकी पाग लालन भी धर सके हैं और ठाडे स्वरूप भी धर सके हैं. आप राजस्थानको ही विचार करो तो राजस्थानके प्रत्येक स्टेटकी पाग विशिष्ट हती. वासु भी अधिक प्रकारकी पाग अपने यहां ठाकुरजी धरे हैं. ये रहस्यकी बात है. सोचो के बडेनने एक छोटीसी पागके बारेमें कितनो विचार्यो है. ठाडे स्वरूपको पागको शृंगार उष्णकालमें हलको मान्यो जाय है. लालन उष्णकालमें प्राय: टोपी ही धरे हैं. ठाडे स्वरूपकु टोपीके शृंगार कम होवे हैं. जन्माष्टमीके पीछे जब बालभावके शृंगार होवें तब ठाडे स्वरूप भी नियमसु टोपी धरे हैं. कई घरनमें लालन और ठाडे स्वरूप दोनों बिराजते होवें तो ठाडे स्वरूपकु पाग और लालनकु टोपी धरायी जाय है. पर मोकु ऐसो प्रकार कम पसंद आवे है. मैं यदि टोपीके शृंगार करुं तो सबकु टोपी ही धराउं हूं, पागके करुं तो सबकु पाग धराउं हूं. अपने-अपने घरकी रीत है. यामें इतनो हार्ड-एन्ड्‌-फास्ट नियम नहीं है.

पागमें भी बडेनने इतने प्रकार सोचे हैं के अपनकु आश्चर्य होवे. जैसे गोल, खिडकीदार, गोटीपगा, ग्वालपगा, फेटावाली पाग, दुमालाकी पाग, चीरावाली पाग ऐसे पागके अनेक प्रकार हैं. ये सब पाग भी पाछी ऋतुके अनुसार धरायी जाय हैं. बडेनने ये भी सोच्यो है के कौनसी ऋतुमें कैसी पाग प्रभुकु सुहायेगी और कैसी पाग प्रभुकु ऋतुके प्रतिकूल लगेगी. ऐसो ही विचार छोटीसी टोपीके बारेमें भी बडेनने कियो है. जैसे उष्णकालमें ठाकुरजी बिना जरीकी टोपी धरे हैं. जरीसु गरमी लगती होवे है. क्योंके जरी मेटल्‌सु बने है.

या तो सोनासु बने या चांदीसु बने है. गरमीमें जरीके तार गरम हो जावेपे ठाकुरजीकु सुखद नहीं रहे हैं. यासु गरमीके दिननमें धरवेकी टोपीपे जरीके स्थानपे कपडाकी मगजी(किनारी) लगायी जाय है. जरीवाली टोपी ठाकुरजी बालभावके टोपीके शृंगार होवें वा बखत धरते होवे हैं. वैसे सामान्यतया कसुंबा छठसु ठाकुरजी जरीकी किनारीवाले और लालरंगके वस्त्र धरने शुरू करे हैं. यासु यदि कसुंबा छठके पीछे टोपीके शृंगार होवें तो ठाकुरजी जरीवाली टोपी धरें.

अक्षयतृतीयासु वस्त्रनके रंग हलके हो जावे हैं. सफेद, चंदनी, गुलाबी, आसमानी, बदामी ऐसे हलके रंगके बिना जरीके वस्त्र ठाकुरजी धरे हैं. ऐसे वस्त्र ठाकुरजी कसुंबा छठ पर्यन्त धरे हैं. कसुंबा छठसु जैसे ही बादल घिरने शुरू होवें सो ही गहरे रंगके वस्त्र धरने शुरू होवे हैं. याको कारण मैने एक दिन आपकु बतायो हतो के गहरो रंग प्रकाशकु अधिक सोखे है. वा प्रकाशकी गरमी शरीरकु लगे है. हलको रंग प्रकाशकु कम सोखे है या परावर्तित करदे है तब वाकी गरमी शरीरकु नहीं लगे है. इतनी सूक्ष्म बातको वस्त्र धरावेमें अपने यहां ख्याल रख्यो गयो है. ठाकुरजीकु उष्णकालमें हलके रंगके वस्त्र धराने, गहरे रंगके वस्त्र नहीं धराने. रंगकी विविधता हलके रंगमें भी सम्भव है. हलको गुलाबी, हलको पीलो, हलको बदामी आसमानी ऐसी कई विविधताएं हलके रंगमें भी सम्भव है. उन विविधताको लाभ क्यों नहीं लेनो. यदि अपनकु वो रंग सुखद होते होवें तो अपने प्रभुकु भी वाको सुख क्यों नहीं देनो. ये ऋतुक्रमकी सेवामें वस्त्रकी बारीकीको विचार है.

कसुंबा छठसु जब बादल घिरने शुरू होवें तबसु ठाकुरजी गहरे रंगके वस्त्र धरे हैं. क्योंके जब बादल घिरने लगें तब फिर प्रकाशके कारण होती गरमी कम हो जाय है. गहरे रंगकी शोभा भी तब अधिक लगे है. बादल घिरनेके बाद हलको रंग अधिक हलको लगे है, चमकतो नहीं दीखे है. जब बादल नहीं होवे हैं, तेज धूप होवे है तब हलको रंग भी चमकतो लगे है. पर जब बादल होवें तब गहरो रंग अधिक चमके है. करके कसुंबा छठ जा दिन

श्रीमहाप्रभुजीके पिता श्रीलक्ष्मणभट्टजीको जन्म दिन भी है, वैसे वाको सेवाप्रकारके साथ कोई खास सम्बन्ध नहीं है, पर वा दिनसु ठाकुरजी लाल आदि गहरे रंगके वस्त्र धरने शुरू होवे हैं. जैसे-जैसे ऋतु आगे बढती भयी सावन तक पहोंचे है वैसे-वैसे लहरिया, चुनरी आदि रंगबिरंगी जरीवाले वस्त्र ठाकुरजी धरे हैं.

यहां एक बात खास ध्यानसु समझो के अभी भी ठाकुरजी श्रीअंगपे वस्त्र नहीं धरे हैं. क्यों? वाको कारण समझो के जितनी देर बरसाद बरसे है उतनी ही देर ठंडक रहे है बाकीके समयमें तो गरमी ही लगे है. करके वर्षाकालमें धराये जाते वस्त्रके रंगमें परिवर्तन होवे है पर श्रीअंगपे वस्त्र धरवेको जो सिद्धान्त है के गरमीमें टाईट् फिटिंग् वाले वस्त्र अनुकूल नहीं होवे हैं वाके कारण ठाकुरजीकु वर्षाकालमें श्रीअंगपे वाघा नहीं धराये जाय हैं, ढीले-ढाले हलके-फुलके वस्त्र ही धराये जाय हैं. पर जब जन्माष्टमी आवे, बरसात पड चुकी है, गरमी शान्त हो गयी है तबसु ठाकुरजी श्रीअंगपे वस्त्र धरने शुरू करे हैं. वामें जरी भी चले है. गहरो रंग तो कसुंबा छठसु ही शुरू हो चुक्यो है.

जन्माष्टमीके बाद जब नवरात्री आवे तबसु छापाके वस्त्र धरने शुरू होवें. छापाके वस्त्र कैसे होवे हैं? वस्त्रपे जरीकी किनारी तो होवे है पर साथमें पूरे वस्त्रपे चांदी-सोनाके टिपका भी लगे होवें. जरीके टिपकावाले वस्त्रकी गरमी नवरात्रीके कालमें ही सुखद लगे है वासु पहले नहीं.

दशहरासु पूरी जरीके वस्त्र धराये जाय हैं. ये वस्त्र प्रबोधिनी पर्यन्त और वाके बाद तक भी धरे हैं.

रेशमी वस्त्र ठाकुरजी प्रबोधिनीके पीछे धरे हैं. यामें अपने यहां तीन क्रम विचारे गये हैं : रेशमी वस्त्र, कीनखाबके वस्त्र और जरीके वस्त्र. प्रबोधिनी पीछे धीरे-धीरे जरीके वस्त्र धरने बंद होवें और कीनखाबके वस्त्र और रेशमी वस्त्र धरने शुरू होवें.

आगे बढते-बढते जब कडाकेकी ठंड पडनी शुरू होवे तबसु फिर रेशमी वस्त्रके स्थानपे सूती छींटके मोटे वस्त्र धरने शुरू होवे हैं. ये सब वस्त्र अस्तरवाले होवे हैं. कई वस्त्रनमें पतली रुई भी भरी जाती हती. ये क्रम वसन्तपञ्चमीके पांच-छे दिन पहले तक चले है.

वसन्त पञ्चमीके पहले पाछे जरीकी किनारीवाले सफेद वस्त्र शुरू होवे हैं. बसन्तमें सफेद वस्त्र धरानेको कारण समझो. ठाकुरजीकु रंगनसु खिलानो है. रंगीन वस्त्रनपे रंगसु खिलावेमें क्या आनन्द आवे करके ठाकुरजी सफेद वस्त्र धरे हैं. जो जा रंगसु ठाकुरजीकु खिलावे वा रंगकी शोभा तो निरख सके अब कपडा ही यदि रंगीन होवे तो रंगसु खिलावेकी मजा कैसे आवे यामें भी पाछी विविधता होवे हैं. वाके विस्तारमें अपन नहीं जायेंगे.

होरीके पीछे ठाकुरजी पाछे जरी-छापाके वस्त्र धरें. गणगौरमें ठाकुरजी पाछे लहरिया-चूंदरी धरें. वाके पीछे फिरसु गहरे रंगके वस्त्र धरते-धरते अक्षय तृतीयासु पाछे हलके रंगके वस्त्र धराये जाय हैं.

ऋतुके अनुसार ठाकुरजीकु वस्त्र धरावेको इतनो सुविशद विचार ओर कहां है. ये ऐसी बात है के *''सबसे मिल आओ तो एक बार मेरे दिलसे मिलो''* सब जगह देख आओ, सब जगह दर्शन कर आओ, कहीं है इतनो विचार, कहीं है इतनी बारीकीको खयाल, कहीं है इतनो ठाकुरजीके सुखको, सौंदर्यको ऐसो बारीक विचार. ऐसो विचार ओर कहीं नहीं कियो गयो है. ये विचार अपने श्रीगुसांईजीने कियो है.

शृंगारको क्रम :

ऋतुके अनुसार ठाकुरजीके शृंगारको भी अपने यहां उतनो ही सुविशद विचार कियो गयो है. जैसे उष्णकालमें ठाकुरजी मोती और सीप के शृंगार धारण करे हैं. याको कारण ये है के सोनेके और जडाउ शृंगार धातुके

होनेसु बाहरकी गरमीसु गरम होके ठाकुरजीकु परिश्रम देनेवाले हो जावे हैं. यासु इनके विकल्पमें बाहरकी गरमीसु गरम नहीं होवें ऐसे मोती और सीप के शृंगार उष्णकालमें धराये जाय हैं. कई लोग चन्दनके भी शृंगार धरावे हैं. वो भी ठीक है, वामें कोई दोष नहीं है. ये उष्णकालको शृंगार है.

कसूंबा छठसु जब बादल घिरने शुरू होवें, लू चलनी बंद हो जावे तबसु पाछे जडाउ शृंगार शुरू हो जावे हैं. सामान्यतया चार ही रंगके शृंगार ठाकुरजी धरते होवे हैं. चार रंगको प्राधान्य गुणनके विचारसु है. सात्विक, राजस, तामस और निर्गुण ऐसे चार भावसु चार रंगके शृंगार धरे हैं. सफेद, लाल, हर्यो और आसमानी ऐसे चार रंगके शृंगार अधिकतर ठाकुरजी धरे हैं. पर नवरात्रीमें अपने यहां ठाकुरजी एक-एक दिन एक-एक रंगके शृंगार ऐसे नौ रंगके शृंगार धरे हैं. अन्य घरनमें याको प्रकार अलग भी हो सके है. कोई घरमें ठाकुरजी श्रीमहाप्रभुजी-श्रीगुसांईजीको उत्सव, दिवाली आदि बडे दिननमें नौ रंगके शृंगार धरे हैं. सामान्यतया सभी घरनमें जन्माष्टमी प्रभृति उत्सवनमें लाल रंगके शृंगार खास धरे हैं. वाको कारण समजवे जैसो है. जन्मके उत्सवनमें हमारे यहां केसरी वस्त्र धारण करनो शगुन मान्यो जाय है. केसरी वस्त्रके साथ सफेद रंगको शृंगार उतनो खुलके निखरे नहीं है जितनो लाल शृंगार निखरे है. यासु अपने यहां या बातको भी विचार कियो गयो है के कौनसे रंगके वस्त्रपे कौनसे रंगको शृंगार अच्छो लगेगो. यासु जा रंगके वस्त्रपे जैसो शृंगार खुले वैसे शृंगार धराये जाय हैं.

रंग आधारित शृंगारकी विविधताके अलावा शृंगारमें भी अपार विविधता है. जैसे मालाकु ही अपन लेवें तो मालाएं भी अनेक प्रकारकी होवे हैं. माला और हार ये मालाके मुख्य दो भेद हैं. याके अलावा चन्द्रहार, पवित्रा, वल्लवीहार, कमलमाला, गुंजामाला आदि अनेक भेद हैं. कई घरन्में गुंजामाला नियमसु नहीं धरे हैं. हमारे यहां ऐसो नियम है के दूसरे कोई शृंगार धरें के नहीं पर गुंजामाला तो अवश्य धरें. याको कारण समझो. गुंजाके चार प्रकार होवे हैं: सफेद-लालरंगकी गुंजा राजस, लाल-

काले रंगकी गुंजा तामस, केवल सफेद रंगकी गुंजा सात्विक और डोरामें पोई गयी गुंजा निर्गुण. गुंजा धराके अपन अपने चारों भावनकु ठाकुरजीकु समर्पित कर देवे हैं. यासु सारो शृंगार धरा दियो पर गुंजा नहीं धराई तो शृंगार अपूर्ण रहे है. गुंजामाला धरानेसु शृंगारकी परिपूर्णता होवे है ऐसी एक भावना है. बडी मीठी भावना है के अपने हृदयके चाहे सात्विक भाव होवें, राजस या तामस भाव होवें या फिर निर्गुण भाव होवे उन सब भावनकु प्रभु अपने श्रीअंगपे धारण करे हैं. शृंगारनकी विविधता इन भावनके कारण सोची गयी है. अभी तो अपनने केवल मालाके थोडे प्रकार देखे पर प्रत्येक अंगके शृंगारकु अपन गिनें तो उनके तो इतने सारे प्रकार है के गिनत न आवे पार उन शृंगारनमें भी उत्सवके अनुसार परिवर्तन होतो रहे है. शृंगारके प्रकारमें परिवर्तनको सम्बन्ध ऋतुके करते उत्सवसु ज्यादा है.

शृंगारकी विविधताको चार तरहसु वर्गीकरण कियो जा सके है.

१. हलको शृंगार
२. मध्यम शृंगार और
३. भारी शृंगार और
४. उत्सवके अति भारी शृंगार.

हलके शृंगारको मतलब अपन ऐसे समझ सकें के एक हार, दो माला और गुंजामाला. बस, वासु अधिक शृंगार रोज नहीं धरानो. क्योंके शृंगार धरनेमें भी प्रभुकु कुछ परिश्रम हो सके है. प्रभु वो परिश्रम अपने भावकु देखके स्वीकारे हैं वो प्रभुकी अपनेपे कृपा है. वो बात अलग है. पर भारी शृंगार प्रभुकु उत्सवपे ही धराने चहिये. हलके शृंगार भी अपने सेव्यस्वरूपके श्रीअंगपे अवकाश होवे वाके अनुसार धराने. यदि श्रीअंगपे अवकाश नहीं होवे तो हार नहीं धराके केवल माला भी धरायी जा सके है. हारकु गादीपे भी धरायो जा सके है.

बात चली है तो आपकु बताउं हूं. बडे मंदिरमें हमारे बालकृष्णलाल

अंगुठा जितने छोटे हैं. पर उनकु गादीपे धरानेको हार इतनो बडो है के यदि वो हार मैं पहेनुं तो वो मेरे कंधासु लेके नाभी तक आवे. ऐसो क्यों होवे है? बात समझो. ठाकुरजीके श्रीअंगपे धरानेके शृंगार श्रीअंगके नापके धराये जाय हैं. और ठाकुरजीकी गादीके शृंगार ठाकुरजीके नापके नहीं धराके हमारे नापके धराये जाय हैं. हम जा नापके शृंगार पहनते वा नापके धराये जाय हैं जासु कि हमारे और ठाकुरजी के बीच तादात्म्य स्फुरित होवे. ठाकुरजीके साक्षात् श्रीहस्तके कडा ठाकुरजीके श्रीहस्तके नापके धराये जाय हैं और हमारे हाथके नापके कडा ठाकुरजीके आगे पधराये जाय हैं. या ढंगसु शृंगार धरावेसु ठाकुरजीके स्वरूपके नापमें भी कोई गडबड नहीं होवे है और आखिर हमारो समर्पण भी तो प्रभुकु स्वीकारनो है करके हमारे नापके शृंगार ठाकुरजीकी गादीपे धराये जाय हैं. या व्यवस्थासु दोनों बातें निभ जावे है. हमारे नापके हार-कडा ठाकुरजीकी गादीपे धराये जाय हैं और ठाकुरजीके नापके शृंगार ठाकुरजीके श्रीअंगपे धराये जाय हैं. या तरहसु ठाकुरकु हमारे नापसु नापते और हमकु ठाकुरके नापसु नापते. इतनो ही नहीं हमारे यहां शादी-ब्याहपे पहनवेके हमारे शृंगार ठाकुरजीके शैया मन्दिरमें रहते. और जब श्रीस्वामिनीजी-श्रीयशोदाजी पधारें तब वो शृंगार उनकु धराये जाते और जब घरमें शादी-ब्याहको प्रसंग आतो तब ठाकुरजीकी आज्ञा लेके उन शृंगारनकु हम पहनते. और जब प्रसङ्ग सम्पन्न हो जातो तब उन शृंगारनकु धोके पाछे ठाकुरजीके शैया मंदिरमें पधरा दिये जाते. शैया मंदिरमें पधरानेको कारण चोरको डर नहीं हतो. कई लोग ऐसो सोचते होंगे. पर सच बात तो ये है के ठाकुरजीके शृंगार तालामें बंद रहते और हमारे शृंगार खुलेमें मुढ्ढाजीमें (बांसके डब्बामें) रहते. वामें ताला नहीं लगतो हतो. तो बात समझो के शैयामंदिरमें हमारे पहनवेके शृंगार रखवेको कारण हमने ठाकुरजीकु वा हद तक अपनो मान्यो हतो वो हतो. हमारे आभूषण ठाकुरजीके पास रहने चहिये, ठाकुरजीके आभूषण हमारे पास रहने चहिये ऐसी ऊंची भावना वाके पीछे हती.

निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यात् :

प्राचीन कालमें हमारे घरनमें वहां तक परम्परा हती के जब भी कोई

नयो कपडाको ताका आतो तब वाकी पिछवाई बना देते. जब घरमें कोई प्रसंग आतो तब ठाकुरजीकी पिछवाई नयी हो जाती और पुरानी पिछवाईके कपडासु हमारे पहनवेके कपडा सिलाये जाते. बीचके कालमें रंग-बिरंगी कपडा पहननेकी पद्धति ही खत्म हो गयी हती. आज-कल पाछी वो पद्धति शुरू भई है. लडकाएं लडकीनके जैसे रंग-बिरंगी कपडा पहनने लगे हैं. लडकीएं लडकानके कपडा पहने हैं. पर फिर भी इतनो अंतर अभी भी है के लडकीएं तो लडकानके जैसे पैंट पहने हैं पर लडकानने फ्रोक-मिडी पहननो अभी शुरू नहीं कियो है. वो जो भी होवे पर बात समझो के क्यों हमारे यहां इतनी बडी-बडी पिछवाई-साज बनाये जाते हते. मूल कारण हतो :

''असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्,
निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्याद् इति स्थितिः''.

हम हमारे नापकी ठाकुरजीकी शैया बनाते हते, हम हमारे नापकी ठाकुरजीकी रजाई बनाते ... ठाकुरजी रजाईकु ओढ लेते पीछे उन रजाईनकु ओढते. ठाकुरजीकु नयी रजाई पधराते. ये क्रम चक्रवत् चल्यो करतो. ठाकुरजी अंगुठा जितनो छोटो पर उनकु धरानेको गद्दल हम हमारे नापको बनाते. गद्दल माने रूईकी बंडी. ठाकुरजीके श्रीअंगके वस्त्र तो ठाकुरजीके नापके ही धराते पर जब ठाकुरजी गद्दलमें बिराजते तो वो गद्दल हमारे नापको होतो. जब ठंडी आती तब ठाकुरजीकी आज्ञा लेके ठाकुरजीके प्रसादी गद्दल हम पहनते और ठाकुरजीकु नये गद्दल पधराते. या तरहसु ठाकुरजी हमारे साथ बिराजे हैं और हम ठाकुरजीके साथ रहे हैं. बचपनमें मैने बहोत गद्दल पहने हैं. १५-१६ वर्षके होनेके बाद मैने गद्दल पहननो बंद कर दियो और धोती-उपरणा ही स्वीकार लियो. पर फिर भी यहां किशनगढमें अभी भी मेरे पहनवेके ठाकुरजीके प्रसादी गद्दल रखे भये हैं.

ठाकुरजीके ओढवेकी और ठाकुरजीकी शैयापे बिछावेकी प्रसादी चादरनकी हम धोती-उपरणा पहनते हते. जब हमकु धोती-उपरणाकी जरूरत पडती तब हम ठाकुरजीसु मांग लेते और ठाकुरजीकेलिये नये पधरा देते. या तरहसु ठाकुरजीके साथ जीनेको एक अद्भुत प्रकार अपने यहांको है.

ये जीवनको प्रकार जैसे वस्त्रमें है वैसे ही शृंगारमें भी है. या प्रकारमें जो मुख्य भाव प्रकट होवे है वो ये के अपनने ठाकुरजीकु कैसे अपने माने हैं और ठाकुरजीने अपनकु कैसे अपने माने हैं. ये प्रकार वा भावकु केवल जाननेको ही नहीं है, वा भावकु जीनेको प्रकार है.

एक सामान्य बात आपकु बताउं हूं के श्रीगुसांईजीमें वो माद्दा हतो के उनके समयमें ऋतुके अनुसार जो-जो भी वस्त्रके प्रकार हते उन सारे वस्त्रनके प्रकारकु ऋतुक्रमके अनुसार एरेंज् करके आपने ठाकुरजीकु धराये और स्वयं भी धारण किये. आज हम लोगनमें और आप लोगनमें वो माद्दा नहीं रह्यो के जो आपके वस्त्रकु ठाकुरजीके श्रीअंगपे नहीं तो साजपे, साजपे नहीं तो पिछवाईपे, पिछवाईपे नहीं तो यार, कही भी कैसे भी ठाकुरजीके विनियोगमें ला सकें. मैं एक बार बैंगलोर गयो तब मोकु एक वैष्णव मांने अपनी लडकीके विरुद्ध फरीयाद करी के जब मेरी लडकी सिनेमा देखवे जावे है तब वाके ठाकुरजीकु भी साथ पधरा जावे है. आप याकु समझाओ. फरीयाद सुनके मोकु भी बडी विचित्र बात लगी. मैने वाकु बुलाके समझायो के ऐसो ऊधम क्यों करे है? ऐसो नहीं करनो इत्यादि. पर जब मैने वाके सेवाप्रकारको दर्शन कियो दो मोकु बडो आश्चर्य भयो. वो लडकी खुद जैसे कपडा-डिझाईन्-रंगके फ्रोक पहनती वैसेकि वैसे कपडा-डिझाईन और रंग के वस्त्र ठाकुरजीकेलिये भी सिद्ध करके धराती. वाको एक फ्रोक ऐसो नहीं हतो के जाके जैसे ठाकुरजीके वस्त्र वाने सिद्ध नहीं किये होवें. तो देखो ये ऋतुक्रममें ठाकुरजीके संग जीनेको एक तरीका है. 'देवो भूत्वा देवं यजते'' को सिद्धान्त जैसे अपन पाल रहे हैं वैसे 'भक्तो भूत्वा भगवान् सेव्यते'' सिद्धान्तकु भगवान् भी पाल रहे हैं. आवश्यक नहीं है के आप जो कपडाकु पहनो वाकु आप ठाकुरजीके श्रीअंगपे ही धराओ. ठाकुरजीके सिंघासनपे बिछा सको हो, पिछवाईके रूपमें लगा सको हो. ऐसे कोई तरहसु आपके उपयोगकी वस्तुको प्रभुकी सेवामें विनियोग करके पीछे जब आप वाकु वापरोगे तब आपकु वाकी दिव्यताको अनुभय होयगो. या सायकल्कु जीनेसु आपकु पता चलेगो के ठाकुरजीके साथ अपनो कैसो तादात्म्य होवे है और ठाकुरजीको अपने साथ कैसो तादात्म्य होवे है. या

क्रमकु यदि अपन जीयें तो बच्चानकु भी समर्पणको सिद्धान्त अपने आप समझमें आ जायेगो के ये कपडा घरमें नयो आयो है वाकु पहले ठाकुरजी धरेंगे वा पीछे मैं पहनूंगो. जैसे वा बच्चीके हर फ्रोकके जैसो ठाकुरजीको वस्त्र हतो ऐसे बच्चानकु भी समझमें आ जायेगी. अपनो बच्चा कोई भी सिद्धान्तज्ञान और ठाकुरजीके माहात्म्यज्ञान के बिना ही समर्पणकु जीने लग जायेगो. बच्चाकु लड्डु खावेकी इच्छा होयगी तो वो खुद आपकु आके कहेगो के ठाकुरजीकु लड्डु अरोगाओ. जा दिन बच्चा ऐसी तरह लड्डु मांगवे लगेगो वा दिनसु आपके घरमें पुष्टिमार्ग लडुवाकी तरह लुडकवे लगेगो. और साथ-साथ ये भी समझ लो के जा दिन आपको बच्चा ऐसी भाषा बोलने लगे के मोकु लड्डु खानो है, हवेलीमें भेट लिखाके लड्डु ले आओ वा दिन पुष्टिमार्ग आपके जीवनमेंसु खतम हो गयो समझो, वा दिन पुष्टिमार्ग बिक गयो, वा दिन पुष्टिमार्गको सत्यानाश हो गयो.

पुष्टिमार्ग अपने घरमें ठाकुरजीके साथ जीनेको मार्ग है. ठाकुरजी आपके संग आपके घरमें बिराजके ऋतुक्रमकु जीनेकेलिये तैयार हैं. शर्त बस इतनीसी है के क्या आप ठाकुरजीकु घरमें पधराके ठाकुरजीके संग ऋतुक्रमकु जीनेकेलिये तैयार हो? यदि हो तो समझलो के पुष्टिमार्गकी ऋतु आपके घरमें आ रही है. ठाकुरजीके संग यदि आप अपने घरमें जी रहे हो तो आप पुष्टिमार्गकी ऋतुकु आपके घरमें आती अनुभव करोगे. या तरहसु आज अपनने संक्षेपमें पुष्टिमार्गीय सेवामें ऋतुके अनुसार वस्त्र और शृंगार को कैसो क्रम है वाको विचार कियो.

ऋतुक्रममें भोगादिको प्रकार :

ऋतुक्रमके विचारके अन्तर्गत राग, वस्त्र और शृंगार की अपने यहां प्रभुकी सेवामें कैसी सूक्ष्मता विचारी गयी है वाकी अपनने थोडी झलक पानेको प्रयास कियो.

आज अपन ऋतुके परिवर्तन होनेपे जा तरहके विविध भोग, सुगन्ध

आदि ठाकुरजीकु अपने यहांके सेवाके क्रममें निवेदित किये जाये हैं वामें कैसी बारीकी रखी गयी है वाको विचार करेंगे.

सबसु पहले, जैसे कि मैने आपकु बतायो है, सेवाके नित्यक्रममें ऋतुके अनुसार परिवर्तन करनो वाकु 'ऋतुक्रम' कह्यो जाय है. तदनुसार अपन ठाकुरजीकु जो नित्य भोग धरे हैं वामें ऋतुके अनुसार जो परिवर्तन कियो जाय है वो ऋतुक्रमकी सामग्री कही जाय है.

मङ्गलभोग :

नित्यक्रममें जब ठाकुरजीकु जगाके मङ्गलभोग धर्यो जाय है वा बखत गावेके पदन्में मङ्गल भोगकी जिन सामग्रीन्को वर्णन आवे है वामेंकी सब सामग्री मङ्गल भोगमें धरवेकी प्रणालिका प्राय: देखवे नहीं मिले है. कीर्तनमें वर्णित कुछ ही सामग्री मङ्गल भोगमें धरी जाय है. कई लोगन्के मनमें कीर्तन गाते बखत ये सोचके दुविधा होती होवे है के अपन ठाकुरजीकु भोग एक सामग्रीको धरे हैं और पद दूसरी सामग्रीको गावे हैं तो वाको समन्वय कैसे करनो.

याको एक कारण ये है के जिन भगवदीयन्ने वो पद गाये हैं वो भगवदीय उन पदन्कु गाते समय प्रभुकी कोई लीलाको दर्शन कर रहे हैं. यासु लीलामें वा बखत जो सामग्री प्रभु अरोग रहे हैं उनको वर्णन भगवदीय पदमें कर रहे हैं. भगवदीयन्ने पद प्रणालिकाकु पढके नहीं गाये हैं. उनकु तो जैसी अनुभूति हो रही है वाके अनुसार वो पद गा रहे हैं. यासु ये कोई जरूरी नहीं है के भगवदीय उन पदन्कु जा सेव्य ठाकुरजीके सन्मुख गा रहे हते वा बखत वो सेव्य ठाकुरजी वो ही सामग्री मङ्गल भोगमें अरोग रहे होवें. ये सहज सम्भव है के पदगान करनेवालेकु लीलामें ठाकुरजीको दर्शन माखन-रोटी अरोगते भये होते होवें पर जहां वो पद गा रहे हैं वहां मङ्गल भोगमें रोटी धरी नहीं गयी होवे. क्योंके वैसे भी सेवाकी प्रणालिका के अनुसार नित्यक्रमकी सेवामें मङ्गल भोगमें दूध और दूधघरकी सामग्री, उष्णकालमें ठोर और शीतकाल होवे तो सेवके

लड्डु आदि भोग आते होवे हैं. पर अपन जब उन भगवदीयनके पदनकु सेवामें गावे हैं तब उनके पदनमें वर्णित लीलाकी भावना अपन अपने ठाकुरजीकी सेवामें करे हैं. या बातकी समझ जिनकु नहीं है उनकु कीर्तन और सेवा में विरोधाभास लगतो होवे है.

भावके फिक्सेशन्के कारण समस्या :

एक समस्या अपने यहां ये भी भयी है के सर्वभावसु ठाकुरजीकी सेवा करवेको सिद्धान्त होते भये भी लोगनने बैठे बिठाये ऐसे सोच लियो के पुष्टिमार्गमें तो बालभावकी ही सेवा है. अपने यहां बालभावकी सेवा है ये बात सच है पर केवल बाल भावकी ही सेवा अपने यहां नहीं है. सेवा अपने यहां सर्वभावसु है. जैसे जब अपन ठाकुरजीके शृंगार करते होवे हैं वा बखत श्रीयशोदाजीको भाव होवे है. याके कारण ही शृंगार करवेवालो ठाकुरजीके सन्मुख गादीपे बैठके शृंगार कर सके है. पर शृंगार हो जावें वाके पीछे भाव बदल जावे है. कोई बखत खंडिताको भाव आ जावे, कभी उरहानेको भाव आ जावे ... ऐसे अलग-अलग ऋतुके अनुसार भाव बदलते रहे हैं. इन सब भावनमें एक भाव ये भी है के मैं पुष्टिजीव हूं, मेरो ठाकुर पुष्टिप्रभु है, और हम दोनोन्के बीच सेव्य-सेवक भाव है. ये भी एक भाव है. पर यदि या भावकु भी अपन फिक्स कर देंगे तो फिर पाछी समस्या आयेगी. तब फिर अपन ठाकुरजीके सन्मुख यशोदाजीके भावसु गादीपे बैठ नहीं सकेंगे. सेवक अपने स्वामीके सन्मुख गादीपे कैसे बैठ सके? पर यदि कोई एक भावमें अपन बंध नहीं गये हैं तो फिर वो साधुबाबाकी थालीकी तरह अपन सब भावसु अपने ठाकुरजीकी सेवा कर पायेंगे, सब तरहके कीर्तन भी गा सकेंगे, अपन मल्टिपरपझ हो पायेंगे. प्रभुके साथ सब तरहके सम्बन्धसु जुडनेकी अपनी जो क्षमता है वाकु श्रीमहाप्रभुजी 'सर्वभाव' कहे हैं. श्रीमहाप्रभुजी वा तरहको प्रभुको स्वरूप भी बतावे हैं. क्योंके प्रभुके स्वरूपमें भी अपनकु फिक्सेशन् (रूढभाव) नहीं लानो चहिये. मतलब अपनकु ऐसे नहीं सोचनो चहिये के ये यशोदाजीको लाल ही केवल है, मेरो तो कुछ नहीं है. हम कौन? अरे भाई यशोदाको लाल है तो हमारो भी ठाकुर है. परमात्मा भी है, भगवान् भी है,

ब्रह्माण्डको नायक भी है. ब्रह्माण्डनायक है पर वाको भी फिक्सेशन् नहीं हो जानो चहिये. क्योंके यदि वो केवल ब्रह्मांडनायक ही है तो फिर वाकु भोग धरनेवाले अपन कौन? ब्रह्मंडनायक अपनकु खवावे के अपन वाकु खवावें फिरसु लफडा हो जायेगो. ब्रह्मांडनायककु यदि अपन पौढायेंगे तब तो सारो ब्रह्मांड ही सो जायेगो, खतम हो जायेगो. यासु ब्रह्मांडनायक तो जगतो रहे ये ही अभिलषित है. यासु ठाकुरजीकु पौढाते समय अपनकु यशोदाजीके लालाको भाव होवे, श्रीस्वामिनीजीके प्रीयतमको भाव होवे.

तो समझनेकी बात ये है के अपने यहांकी सेवा कोई एक भावसु नहीं है. ऋतुक्रमकी सेवाकी बात छोडो, नित्यसेवामें भी कोई एक भावसु सेवाको प्रकार अपने यहां नहीं है. सर्वभावसु प्रभुसेवा अपने यहां है या बातकु नहीं समझवेके कारण पुष्टिमार्गमें सेवाके नामपे बडे-बडे घोटाला हो रहे हैं.

रीतकी पोथी पढ-पढके पंडित बने कई लोगन्ने ये सोच लियो के ठाकुरजीकु इतनो तो भोगमें आनो ही चहिये, इतनो नेग तो होनो ही चहिये, या दिन ये सामग्री नहीं आवे तो सेवा हो ही नहीं सके. ऐसे जडाग्रहके कारण सम्प्रदायमें अनेक विकृतियें आयीं हैं. रीतके जडाग्रही जब स्वयं सेवा करवे समर्थ नहीं रहे तब अपनेसु हो सके उतनो सेवाको क्रम रखनेके बजाये मुखिया-भीतरीयान्की फौजसु वो सेवा करानी शुरु करी. उनने ये सोच्यो के नेग-भोगको क्रम घटानेसु ठाकुरजीकु परिश्रम होयगो. याके अतिरेकके कारण अनेक दूषण सम्प्रदायकी सेवा प्रणालीमें घुसे.

नेग-भोगके जडाग्रही कई लोगनसु जब द्रव्यसंकोचके कारण नेग-भोग निभनो सम्भव नहीं रह्यो तब उनने गाम-परगामके लोगनसु ठाकुरजीके नेग-भोगकेलिये भीख मांग-मांगके सेवा करनो शुरु कर दियो. शुरुमें ठाकुरजीके परिश्रमके विचारसु गामसु सेवा-भोग-सामग्री-मनोरथके नामपे भीख मांगी जाती हती. ये क्रम थोडो समय चलतो रह्यो. पीछे तो ठाकुरजीके परिश्रमको विचार एक बाजु रह गयो. पीछे तो सबनने समझ लियो के

ठाकुरजीके नामपे गामसु भीख मांगके पुष्टिमार्गमें ठाकुरजीकी सेवा करनो पाप नहीं है. अब तो दुष्ट लोगनने सेवाको धंधा ही करनो शुरु कर दियो है.

मतलब ये के अपनने ठाकुरजीमें कोई एक भाव फिक्स कर दियो. ठाकुरजीमें अपनने सर्वभावसु भावित हो पानेकी फ्लेक्सिबिलिटि (लचीलोपन) नहीं रहवे दी. जैसे शनिके ऊपर तेल चढाओ तो ही वो अपनी पूजा माने, जल चढाओ तो मान्य नहीं होवे ऐसे शनिकी तरह अपनने अपने ठाकुरजीको स्वरूप सोच लियो.

दूसरी ओर कुछ लोग कहवे लगे के ठाकुरजीकु कोई चीजकी गरज थोडी है. ठाकुरजी तो केवल 'भावके भूखे'' हैं. अब तो गुजरातीमें कह्यो जाय है के ''दाईनो घोडो रमतो झमतो छुट्टो'' वैसे कोई बातको नियम ही नहीं रह्यो ऐसे बदमाश लोगनने ठाकुरजीकु मिश्रीको टुकडा भोग धरनो शुरु कर दियो. मैं उनकु 'बदमाश' बहोत सोच-समझके कह रह्यो हूं. क्योंके पद्मनाभदासजी उनके ठाकुरजीकु केवल छोला धरते हते तो खुद भी केवल छोला ही लेते हते. पर ये लोग खुद तो ढोकला-फाफडा सब कछु खावे हैं पर खुदके ठाकुरजीकु केवल मिश्रीको टुकडा मात्र भोग धरके भावको पाखंड करे हैं.

ऐसे ही कुछ लोग अपरस नहीं निभनेको बहाना निकालके कहते होवे हैं के ''हमसु अपरस निभे नहीं है यासु हम तो ठाकुरजीकु नागरी भोग धरे हैं''.

समझनेकी बात ये है के या तरहके सभी फिक्सेशन् श्रीमहाप्रभुजीकी ''**सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः**'' की पुष्टिमार्गीय गाईड् लाईन् सु विपरीत दिशामें जाते फिक्सेशन् हैं. ऐसे फिक्सेशन्सु पुष्टिमार्गमें कभी सेवा की नहीं जा सके है.

मैं अक्सर पद्मनाभदासजीको दृष्टान्त देतो होऊं हूं. पद्मनाभदासजी कैसे सहज भावसु मथुराधीशजीकु छोला अरोगाते हते. साथ-ही-साथ उतनी

ही सहजतासु वो छोलामें विविध सामग्रीको भाव भी करते हते. ऐसे अपन भले नित्य माखन-मिश्री भोग नहीं धर सकते होवें, बतासा ही धर सकते होवें तो भी माखन-मिश्रीको भाव तो अपन पदमें गा ही सके हैं. और यदि माखन-मिश्री भोगमें धर रहे हैं तो वामें अपने बतासाको भाव भी कर ही सके हैं. तात्पर्य ये है के अपनी मानसिकता इतनी अकठोर-मृदु होनी चहिये के प्रभु अपनेसु जा तरहसु सेवा लेनो चाहें वा तरहसु ले सकें. अपन जा तरहसु सेवा करनो चाहें वा तरहसु कर सकें. अपन अपनी झोंपडीमें भी नन्दालयकी भावना कर सके हैं. आप एक बात सोचो के ग्रीष्मकालमें ठाकुरजीके सामने एक छोटीसी थाली भरके धरी जाये है. अपन वामें श्रीयमुनाजीकी भावना करे हैं. यमुनाजी इतनी छोटी कभी हो सके हैं? पर अपनी वैसी भावना है. अपनकु ऐसो फिक्सेशन् नहीं है के यमुनाजी केवल मथुरामें ही हो सके हैं. यासु यमुनाजीकी थाली पधराके अपन ठाकुरजीकु बिनती करे हैं के आपकु गरमी लगे तो यमुनाजीमें स्नान करीयो.

हमारे घर बिराजते स्वयं श्रीमहाप्रभुजीने रेणुकासु सिद्ध किये हैं. जब उनकु एक सेवकके घर पधराये तब सेवककु ऐसो सन्देह भयो के रेणुकासु सिद्ध भये स्वरूपकु स्नान करायेंगे और रेणुका बिखर जायेगी तो ये सोचके डरके मारे वो ठाकुरजीकु स्नान नहीं करातो. पर ठाकुरजी इतने ऊधमी के वो सेवक जब ठाकुरजीके उत्थापन करातो तब ठाकुरजी सिंहासनके बजाये यमुनाजीके थालमें ही बिराजे मिलते. अब सेवक क्या कर सके पीछे श्रीमहाप्रभुजीने ही वाकु आज्ञा करी के जब ठाकुरजीकु स्नान करवेकी इतनी इच्छा होवे है तो स्नान करायो कर. श्रीयमुनाजीकी रेणुकासु सिद्ध भये हैं तो श्रीयमुनाजीसु इनको क्लोझ् कोन्टेक्ट है. पांचसो सालसु अभी तक ठाकुरजी स्नान करते आ रहे हैं, कछु भी नहीं भयो है. तो समझनेकी बात है के कोई तरहको फिक्सेशन् सेवामें नहीं हो जानो चहिये. पुष्टिमार्गमें भावकी, वाणीकी, व्यवहारकी, सामग्रीकी मृदुता होनी चहिये. जा तरहसु जो सहजतासु निभतो होवे वाकु सहजतासु निभाते चले जानो. पर सिद्धान्तको पालन तो कठोरतासु करनो. सिद्धान्त कभी तोडनो नहीं.

यालिये अपन जब मङ्गलभोगके पद गावे हैं *''मैया मोहे माखन रोटी भावे''.* पर नित्यसेवाके क्रममें मङ्गल भोगमें माखन-रोटी धरवेकी अपने यहां रीत नहीं है. अपन मङ्गल भोगमें दूधघर धरे हैं. जिनके यहां सुविधा ज्यादा है तो मठडी भोग धरे हैं, यदि उष्णकाल होवे तो. और शीतकालमें चासनी चढायी भयी सामग्री सुखद नहीं लगती होवे है करके सेवके लड्डु भोगमें धरे जाये हैं. पर पाछो इनको भी फिक्सेशन् नहीं है. क्योंके जब बहोत ठंड होवे तब मङ्गलभोगमें ठाकुरजीकु सखडीकी समग्री बेजरकी रोटी, गुड आदि भी धरी जायें हैं.

शृंगारभोग :

मङ्गल भोग सरनेके बाद मङ्गला आरती होके जब ठाकुरजीके स्नान-शृंगार कराये जाये हैं तब ठाकुरजीके पास शृंगारभोग पधराये जाये हैं. ये भोग दूसरे भोगके जैसो नहीं होवे है. क्योंके ये भोग पधरावेमें भावना अरोगावेके करते ललचावेकी अधिक होवे है. यदि आप शृंगार शन्तिसु धरलोगे तो आपकु ये अरोगने मिलेगो. यालिये शृंगार भोग ठाकुरजीके पास ढंकके पधराये जाये हैं. शृंगार भोगमें भी पाछो फिक्सेशन् नहीं है. जिनकु सुविधा अधिक होवे वो लड्डु-मठडी भी धरे हैं. सामान्यतया मिश्री, सूकोमेवा, माखन-मिश्री, दूधघरकी सामग्री भोग धरी जाये है. यामें कोई तरहको फिक्सेशन् नहीं लानो चहिये के ये ही आनो चहिये और ये नहीं आ सके है. बदाम-मिश्रीके टूक भी भोग धर सको हो. वामें विविध सामग्रीकी भावना भी कर सके हैं. क्योंके अपन शृंगार धराते बखत जब अपनेमें श्रीयशोदाजीकी-श्रीस्वामिनीजीकी भावना भी कर सके हैं और साथ ही साथ एक क्षुद्र पुष्टिजीव भी हो सके हैं तब ठाकुरजीकु भोग धरी सामग्रीमें भी लीलामें धरी जाती सामग्रीकी भावना भी कर सके हैं और लीलामें धरी जाती सामग्रीमें अपन अपनी सामग्रीकी भावना भी कर सके हैं. यासु इन विषयमें कोई तरहको फिक्सेशन् करनो ये श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तसु सम्मत बात नहीं है.

राग-भोग-शृंगार अनिवार्य नहीं हैं :

श्रीमहाप्रभुजी तो **'सर्वभावेन'** आज्ञा कर हे हैं. श्रीमहाप्रभुजी

पुष्टिमार्गीन्सु सर्वभावके मूडमें प्रभुकी सेवा करवानो चाहते हते. लोगन्ने सिद्धान्तकु पढे-समझे बिना ही सेवा-भावना-भोग-शृंगार सबमें अनेक तरहके फिक्सेशन् कर दिये. यामें भी मठडीने तो पुष्टिमार्गको ऐसो कबाडा कर दियो है के पूछो मत. एक ओर लोग ये हल्ला मचावे हैं के पुष्टिमार्गमें बालभावकी सेवा है और दूसरी ओर मठडीको भोग धरे बिना सेवा हो ही नहीं सके ऐसो माहात्म्य मठडीको बना दियो. मठडी भोग नहीं आयी तो ठाकुरजीकु जाने कछु हो जायगो, शनिकी साढेसातीकी तरह, ऐसे लोग सोचवे लगे हैं. विचारो तो सही, यदि ठाकुरजी बालस्वरूप हैं तो फिर मठडी को क्या काम बच्चा दूध पीये के मठडी खावे. ठाकुरजी यदि बालक हैं तो मठडी कैसे अरोग सकें ये सब समस्याएं सिद्धान्तकु नहीं समझनेके कारण पैदा भयी हैं. ठाकुरजीके स्वरूपमें ऐसो कोई फिक्सेशन् नहीं है करके अपन ठाकुरजीकु बालक मानते भये भी मठडी धर रहे हैं और मठडी धरते भये भी ठाकुरजी बालक हो रहे हैं. तो देखो श्रीमहाप्रभुजी जा मूडमें अपनेसु ठाकुरजीकी सेवा करवानो चाहते हते वा मूडमें और अपने नेग-राग-भोग-शृंगारके दुराग्रहवाले मूडमें कितनो अंतर पड गयो. अपनकु यों लगे है के नेग-भोग-राग-शृंगार ही पुष्टिमार्गीय सेवाको मुख्य सिद्धान्त है. यदि ये बात सच है तब फिर पद्मनाभदासजी जो केवल छोला भोग धरते हते उनने सेवा नहीं करी ये कहनो पडेगो और दिनकरदास तो ठाकुरजीकु केवल रोटी ही भोग धरते हते, शाक भी नहीं धरते हते. उनके पास केवल उतनी ही सुविधा हती. तो क्या उनने सेवा नहीं करी उनकी सेवा इतनी बडी मानी गयी के प्रभु उनकु सानुभाव जताते हते. **''चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा, ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर् ब्रह्मबोधनम्''** उनकु भयो हतो के नहीं भयो हतो तो सिद्ध हो गयो के राग-भोग-शृंगारकी जा तरहकी अनिवार्यता अपनने आज मानली है वैसी अनिवार्यता उनकी सेवामें नहीं है. हां, उपयोगिता जरूर है.

अनिवार्यता और उपयोगिता :

अनिवार्यता और उपयोगिता के बीचको अन्तर समजो. अपनी जा चीजको भी उपयोग प्रभुकी सेवामें हो सकतो होवे, जाको विनियोग प्रभुकी

सेवामें करवेसु अपनो भाव प्रभुमें बढतो होव, जाके विनियोगसु प्रभुके सुखको विचार बढतो होवे वाको विनियोग तो प्रभुसेवामें करनो ही चहिये. ये तो बहोत अच्छी बात है. पर कोई वस्तु प्रभुसेवामें उपयोगी है करके वाकु अनिवार्य बनादेनो ये पुष्टिमार्गीय सेवाको प्रकार हो नहीं सके है. रजोबाईने श्रीमहाप्रभुजीकु स्पष्ट कह दियो के आपने घीकु अनिवार्य मान्यो वासु ही मोकु लग्यो के ये कोई पुष्टिमार्गकी बात नहीं लगे है. ठाकुरजीकु केवल जलकी लोटी भी धरी गयी है. पर जो कछु भी धर्यो जावे वो बदमाशीसुं नहीं धर्यो होनो चहिये. ठाकुरजीकु तो जलकी लोटी धर देवें और अपन खुद रसगुल्ला उडाते होवें. ये बदमाशी है. वा वैष्णवने जलकी लोटी मात्र धरी तो वो खुद भी केवल जल लेके रह्यो. अपने यहां ऐसी फ्लेक्सिबिलिटी भी है. कितनी रेंज्की फ्लेक्सिबिलिटी है या बातकु तो कभी सोचो कितनी बडी बात अपनी साधनाप्रणालीकी ८४-२५२ वैष्णवन्के दृष्टान्तन्के द्वारा श्रीमहाप्रभुजी-श्रीगुसांईजी और अपने बडेन्ने अपनकु समझादी है यापे तो कभी ध्यान दो कभी तो याकु पसन्द करो ओर कहीं भी साधनाप्रणालीमें देखोगे तो आपकु ऐसे-ऐसे कठोर नियम मिलेंगे के ऐसो करो तो साधना सच्ची और ऐसो नहीं करो तो साधना खोटी. और वाके सामने अपनी साधनाप्रणाली देखो के जो कर रहे हो वो सच्चो है यदि सच्चाईसु कर रहे हो. और यदि सब कछु कर रहे हो पर यदि मनकी सच्चाई नहीं है, भावनाकी सच्चाई नहीं है तो सब कछु खोटो. ये कैसी गजबकी फ्लेक्सिबिलिटी है अपनी साधनाप्रणालीमें. कितनो यामें सौकर्य है, कितनो सौलभ्य है. या बातकी कृतज्ञता अपन्ने कभी श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी, ८४-२५२ वैष्णवन्की नहीं मानी ऐसे कृतघ्न अपन आधुनिक पुष्टिमार्गी हैं. 'त्याग' और 'भोग' दोनों शब्द अपनी साधनाप्रणालीके आगे तुच्छ बन जाये हैं. ये ऐसे तरहकी एक जीवनप्रणाली है. ये अपनी बात अपनकु पसंद आनी चहिती हती. और यदि ये अपनी बात अपनकु पसंद आती तो ऐसे क्षुद्र विचार के अपनो ठाकुरजी शनिश्चर जैसो है, या ऐसे क्षुद्र विचार के अपने ठाकुरजी निरपेक्ष हैं, उनकु कोई वस्तुकी जरुरत ही नहीं है, मिश्रीको एक टुकडा धरदो, बस, हो गयी सेवा ऐसे क्षुद्र विचार कभी अपने दिमागमें नहीं आते.

यासु ऋतुक्रमके अनुसार जो भी सामग्री ठाकुरजीकु धरी जाये हैं वो लीलाभावनाकी सामग्री प्राय: नहीं हैं. वो सामग्रीको विस्तार श्रीगुसांईजीने सोच्यो है के या ऋतुमें ठाकुरजीकु ये सामग्री अच्छी लगेगी. या भोगमें ये सामग्री अच्छी लगेगी. जैसे ठंडीमें सुहागसूंठ धरवेकी रीत रखी. पर यामें भी अपन बदमाशी करे हैं. अपनकु सुहागसूंठ अच्छी लगे है करके ठंडी बीत जाये तब भी अपन ठाकुरजीकु सुहागसूंठ अरोगाते ही रहे हैं. ठाकुरजीको कस काढनो होवे ऐसो व्यवहार कभी अपन ठाकुरजीके साथ करते होवे हैं. ये पद्धति अच्छी नहीं है. ये सेवाभावनाकी भावना नहीं रह गयी है. श्रीगुसांईजी परदेश पधारे हैं वाहांसु श्रीगिरिधरजीकु पत्र लिख्यो है के मेरे श्रीनाथजीकु ओट्यो दूध भावे है, कभी-कभी धर्यो करियो. कभी-कभी धरवेमें भावकी जैसी सरसता होवे है वो एक अलग ही तरहकी होवे है. अपन्ने बांच लियो के श्रीगुसांईजीने धरवेको लिख्यो है तो अपन ठाकुरजीके पीछे ही पड गये. मंगलामें भी ओट्यो दूध, दोपहरमें भी ओट्यो दूध, शामकु और शयनभोगमें भी ओट्यो दूध, बंटामें भी ओट्यो दूध, पलनामें भी ओट्यो दूध ... ऐसे कोई पीछे पड जाये तो कोई चीज भाती होवे तो भी भाती बंद हो जाये. ऐसो व्यवहार यदि अपन करे हैं तो ठाकुरजीके स्वरूपकु समझवेमें अपनी विफलता माननी चहिये.

अन्नकूटके पदमें आवे है ''*भयो भातको कोट ओट गिरिराज छुपायो*''. इतनो भात भोगमें आयो के वाके पीछे गिरिराजजी छिप गये. ये लीलाभावनाको पद है. याको कैसो भद्दो अनुकरण हवेलीन्की सेवामें होवे है ये आपकु बताउं हूं. हवेलीन्में अन्नकूट भोग साजे जायें तब भात पधरावेके पहले नीचे खाली टोकराएं उलटे रखे जायें. जब टोकरान्को ढगला बन जावे पीछे वाके उपर-उपर भात ठला दिये जायें. देखवेपे ऐसो लगे के जैसे भातको पर्वत होवे. दर्शनिया भगतें वैभव देखके मन्त्रमुग्ध हो जायें. पर अंदर तो सब पोलं-पोल है सोचो, ऐसो सब करके कौनकु ठग्यो जा रह्यो है? भगवान्कु? तो देखो, कोई तरहको ये फिक्सेशन् है. यासु बचो. अरे, एक कटोरी जितने भातको छोटोसो कोट होयगो न तो भी वाकी ओटमें गिरिराज छुप सके है यदि तुम्हारो भाव ऐसो होयगो तो. अन्नकूट साजवेमें उलटे टोकरापे भात साजनेको

नाटक करनेकी जरूरत नहीं है. ये सब पाखंड दर्शन करानेके कारण शुरु भये हैं. लोगन्कु दिखानो है करके ऐसे छल-कपट सेवामें किये जाये हैं. अपने घरमें सेवा करनेवालो कभी ऐसो छल-कपट नहीं करे है. वाके मनमे ऐसो विचार भी कभी नहीं आवे है. दर्शन करनेवालेन्कु राजी करनेकेलिये ठाकुरजीकी फूलमंडलीमें फूल दर्शनार्थीन्की ओर बांधे जायें हैं. फूलमंडलीके भीतर बिराजते ठाकुरजी तो फूलके डंठुल और डोरा के ही दर्शन करते होवे हैं. ये क्या नाटक है क्या याको नाम पुष्टिमार्ग है इतनो गंदो पुष्टिमार्ग हो सके है? इतनो गंदगी पूर्ण विचार श्रीमहाप्रभुजीको श्रीगुसांईजीको अपने ठाकुरजीके बारेमें कभी हो नहीं सके है. विचारकी ये सब विकृति अपने भीतर ठाकुरजीको प्रदर्शन करानेके कारण आयी है. अपन गामकु अन्नकूट दिखानो चाह रहे हैं, अपन गामकु फूलमंडली दिखानो चाह रहे हैं वाके कारण ये सब गंदकी पुष्टिमार्गमें आयी है. आप कोई भी मंदिरमें जाके देख लीजो, उष्णकालमें ठाकुरजीक पंखा करनेवाले मुखियाजी-महाराज पंखा ठाकुरजीकी ओर हिलाते होवे हैं और देखते पब्लिककी ओर होवे हैं अरे भाई जाकु पंखा कर रह्यो है वाकु हवा पहोंच रही है के नहीं वो तो देख ये सब विकृति ठाकुरजीको प्रदर्शन करनो शुरु भयो वाके कारण मार्गमें आयी है.

तो मूल बात समझो के ऋतुक्रमकी सेवामें भोगको प्रकार प्रभुके सुखकेलिये है. वामें अपनकु ये नहीं सोचनो चहिये के ठाकुरजीकु तो कोई वस्तुकी गरज ही नहीं है यालिये मिश्रीको टुकडा धर देंगे तो भी ठाकुरजी मान लेंगे. और अपनकु ऐसे भी नहीं सोचनो चहिये के रीतमें अन्नकूटके दिन इतनो भोगको नेग लिख्यो भये है यासु इतनो तो कोई भी तरहसु ठाकुरजीकु धरनो ही चहिये. अपनी शक्ति नहीं होवे तो गामसु भीख मांगके भी धरनो चहिये. ये दो विकृतीन्में अपन जी रहे हैं. इन विकृतीन्के फिक्सेशन् ऋतुक्रमकी सेवाके केन्द्रीय भावकु खतम करनेवाले हैं. इनसु बचनो बहोत जरूरी है.

ऋतुक्रममें जल :

सामग्रीके बाद जलकी बात आपकु बताउं हूं. पहले भी मैने आपकु थोडी बातें बतायीं हतीं. उष्णकालमें अपन मिट्टीकी मथनी जल भरके वामेंसु ठाकुरजीकी झारी भरे हैं. शीतकालमें मिट्टीकी मथनीकी जगह धातुकी हांडीमें जल भर्यो जाय है. वो तांबा, पीतल, चांदी ऐसी कोई भी धातुकी हो सके है. वामें कोई फिक्सेशन् खडो नहीं करनो चहिये. आजके जमानामें स्टील चल रह्यो है तो स्टीलकी हांडीमें भी जल भर्यो जा सके है. याको मूल कारण ये है के शीतकालमें जल उतनो ठंडो नहीं होनो चहिये के जो ठाकुरजीकु अरोगवेमें सुहानो बंद हो जाये. उष्णकालमें धातुकी हांडी या लिये नहीं भरी जाय है क्योंके वा बखत बाहरी गरमीसु धातुके गरम होयवेसु वामें भर्यो भयो जल भी गरम हो जाये है. और आप अनुभव करके समझ सको हो के उष्णकालमें अपने यहां मथनीको जल इतनो ठंडो हो जावे है के अपनकु फ्रीझकी भी जरूरत नहीं पडे है.

जलके विषयमें अपने यहां एक ओर सूक्ष्मता विचारी गयी है. उष्णकालमें अपने यहां मथनीमें खसकु मलमलकी पोटलीमें बांधके पधरायो जाय है. वासु जलमें खसके तंतु भी नहीं गिरें और वाकी सोंधास भी आवे. वाके अलावा गुलबजल या केवऽाजल भी मथनीमें पधरायो जा सके है. पर ये सब उपचार ठंडके दिननमें अच्छो नहीं लगे है करके ठंडके दिनमें सादो जल ही रख्यो जाय है. इतनी सावधानी अपने यहां जलके सम्बन्धमें रखी गयी है.

ओर भी देखो तो उष्णकालमें झारीको नेवरा गीलो रख्यो जाय है. क्योंके गीले नेवराकु हवा लगवेपे झारीकु ठंडक मिलेगी और वाके कारण वामें भर्यो भयो जल भी ठंडो रहेगो. परन्तु शीतकालमें झारीको नेवरा आग्रह पूर्वक सूखो रख्यो जाय है. झारी भरती बखत असावधानी वश नेवरा गीलो हो जातो होवे है. शीतकालमें गीली झारी पकडनी ठाकुरजीकु सुखद नहीं लगे है यासु नेवराके ऊपर एक ओर मोटो वस्त्र ढंक्यो जाय है. इतनी बारीकी अपनने केवल

जल अरोगावेके सम्बन्धमें सोची है. याके पीछेको भाव ये ही है के अपन ठाकुरजीके संग ऋतुक्रमकु जीनो चाहे हैं.

ऋतुक्रममें अत्तर :

ऐसी ही सावधानी अपने यहां ठाकुरजीकु समर्पवेके अत्तरमें भी रखी गयी है. मैं एक बखत कोई बालकके घर गयो हतो. वहांकी पद्धति देखके मोकु बडो रोमांच भयो. वहां स्नान करके लगावेके तिलक और चरणामृत के संग अत्तर भी रख्यो जाय है है. वहां ऐसी पद्धति है के जो भी स्नान करके सेवामें जावे वो तिलक-चरणामृत करके अत्तर भी लगावे. अरे भाई, ठाकुरजीके पास अपन जा रहे हैं तो क्यों दरिद्रतासु जावें सुगंधित होके जानो चहिये कोई याकु निभा सके कोई नहीं भी निभा सके वो बात अलग है. पर प्राचीन कालसु ही अपने यहां याको विकल्प ऐसो भी रख्यो गयो है के ठाकुरजीके पास एक डिबियामें अत्तर लगायी भयी रुई रखी जाय है. जब ठाकुरजीको स्पर्श करनो होवे तब वा रुईमें उंगली छुवाके हाथकु सुगंधित करके पीछे ठाकुरजीकु स्पर्श कियो जाय है. इतनो तो सहजतासु हो सके है.

एक सच्ची बात बताउं हूं. आज दिन-प्रतिदिन अत्तर गायब होते जा रहे हैं. सच्चे-खोटेको भेद समझमें नहीं आवे है. अत्तरको स्थान टेलकम् पाव्डर् ले रहे हैं. लोगन्में ऐसी मान्यता है के पाव्डर् अपरसमें छू जावे है. पर सच कहूं तो पाव्डर्में ऐसी कोई चीज नहीं होवे है के जो छू जावे. तो यदि कोईमें अत्तर लगावेकी सामर्थ्य नहीं है तो वो पाव्डर्सु भी अपने आपकु सुगंधित कर सके है. पर भाव वामें अपनो ऐसो होनो चहिये के अपन्कु ठाकुरजीके पास जानो है यासु अपन सुगंधित हो रहे हैं. कई लोग ऐसे सोचे हैं के वापे अंग्रेजीमें 'टेल्कम्' लिख्यो होवे है वाके कारण वो छू जावे है. तो ऐसे तो आज अत्तर और पैसान् पे भी अंग्रेजीमें लिख्यो होवे है. ये सिद्धान्त सच्चो होवे तो पहले रुपये लेनो तो बंध करो रुपैया लेने तो कोईकु बंद नहीं करने हैं पुराने जमानामें नोटें छू जाती हतीं. पर आजकल तो बडी कठोर अपरस पालनेवाले भी नोटसु नहीं छुवावे हैं. ये नाटक पुष्टिमार्गीन्को कैसो है ये बात

समझमें नहीं आवे हैं. बहोत गम्भीर पंक्तिएं हैं. बहोत ग्रन्थें पढे पर इन पंक्तिन्को रहस्य समझमें नहीं आयो के नोट क्यों नहीं छू जाय है. नोट तो आते ही बटोरने लग जावे हैं. खैर...

ठाकुरजीकेलिये अत्तर खरीदवेके विषयमें अपने यहां ऐसी व्यवस्था है के अत्तर ठाकुरजीके लायक है के नहीं वाकी परखकेलिये यदि वाकु सूंघनो पडे तो वाके कारण अत्तर अपनो प्रसादी (भुक्त) नहीं हो जावे है. सिद्धान्तरहस्यमें लिख्यो है के '**' निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्याद् इति स्थितिः''** सब कछु समर्पित करके ही वापरनो. अब अत्तर तो अपनने पहले सूंघ लियो. ठाकुरजीकु तो बादमें सर्प्यो. पर ऐसो करवेमें दोष नहीं है. ये अपनो समर्पण ही है. अपन ठाकुरजीके सुखके विचारसु बदाम-ककडी आदि वस्तुकु चखके वाकी उत्तमताको निर्णय करके पीछे जैसे ठाकुरजीकु समर्पण करे हैं वैसे ही अत्तरमें भी कियो जा सके है.

ठाकुरजीकु अत्तर समर्पवेके सम्बन्धमें अपने यहां ऐसी नीति रखी गयी है के जा ऋतुमें जा फूलन्की माला ठाकुरजीकु धराई जावे उन फूलनके अत्तर ठाकुरजीकु उन ऋतुन्में समर्पे जावे हैं. कोई भी अत्तर ठाकुरजीकु कभी भी धरा देनो ऐसो नहीं होवे है. जैसे ठंडके दिनन्में ठाकुरजीकु केशर, कस्तूरी, हीना, अम्बर ऐसे अत्तर समर्पे जाये हैं. ये अत्तर उष्णकालमें नहीं समर्पे जाये हैं. वर्षा ऋतुमें वर्षाकालीन फूलन्के अत्तर धराये जाये हैं. ग्रीष्मकालमें खस, गुलाब आदि फूलन्के अत्तर धराये जाये हैं. ऐसे जा ऋतुमें जो फूल खिलतो होवे वा फूलके ही अत्तर ठाकुरजीकु समर्पे जाये हैं.

अत्तर कैसे समर्पनो ?

ठाकुरजीकु अत्तर समर्पवेकी अपने यहां एक विशिष्ट पद्धति है. ऐसे नहीं के अत्तर लियो और ठाकुरजीके वस्त्रन्पे चुपड दियो. पहले अत्तर अपने हाथपे लेनो चहिये, बादमें दोनो हाथन्कु मिसलनो चहिये ओर पीछी वो हाथ ठाकुरजीके वस्त्रन्पे धीरेसु फिराने. ऐसे अत्तर समर्पवेसु अत्तरके दाग भी वस्त्रन्पे नहीं पडेंगे

और अत्तरकी सुगंध भी वस्त्रपे बैठ जायेगी.

जब अपन ठाकुरजीकु जगावे जावें वा बखत अपनी जैसे सामर्थ्य होवे वाके अनुसार अपने वस्त्रन्पे अथवा हाथमें अत्तर समर्पके पीछे ठाकुरजीकु जगाने चहिये. इतनो भी सामर्थ्य यदि नहीं होवे तो अपन भावना तो कर ही सके हैं. यदि अपनी भावनामें सुगंध है, अपनो मन सुगंधित है तो ठाकुरजी वाकु माने हैं. और ध्यान रखो के खुब अत्तर लगा लियो पर यदि अपने मनमें सुगंध नहीं है तो वो लगायो भयो सब अत्तर ठाकुरजीकेलिये बेकार है.

सेवामें जावेवालो जो अत्तर वाके कपडापे लगावे है वो अत्तर समर्पित होनो चहिये. याकेलिये सेवाकी प्रणालिकामें वाकी व्यवस्था विचारी गयी है. जब दिवाली जैसे बडे उत्सव आवें तब ठाकुरजीके अनवसरकी सजावटमें अत्तरकी शीशीएं ठाकुरजीकु धरी जावे हैं. वो शीशीएं दूसरे दिन प्रसादी अत्तरके रूपमें बहार आ जाती होवे हैं. वा प्रसादी अत्तरको उपयोग सेवामें जावेसु पहले अपन करते होवे हैं.

ऐसे ही कुंकुमको भी होवे है. विचार करो के अपने ठाकुरजी कितनेसे, वामें भी ठाकुरजीको तिलक कितनो छोटोसो. वा तिलकपे यदि कुंकुमको तिलक करनो होवे तो अपनकु कुंकुम कितनोसो चहिये? पर बडे उत्सवन्पे जब ठाकुरजीकु तिलक कियो जाय है वा बखत ऐसे-ऐसे बडे-बडे कुंकुमके गोला थालमें सजाये जाये हैं. एक बार वामेंसु ठाकुरजीकु तिलक करके पीछे वा प्रसादी कुंकुमसु अपन वर्ष भर तिलक करे हैं. या तरहसु

'त्वयोपभुक्त स्रग्गन्ध वासोलंकार चर्चितः,
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि''

ठाकुरजीके द्वारा उपभुक्त फूलकी माला चंदन अत्तर आदि सब कछु अपन दास्यभावसु वापरे हैं.

फूल-मालाके सम्बन्धमें आजकी रूढी ऐसी हो गयी है के वो कोईके

केवल स्वागत करवेके ही उपयोगमें लिये जाय हैं. बाकी जीवनमें लोगन्ने फूलकी माला पहननो बंद कर दियो है. भारतकी प्राचीन संस्कृतिमें हर समृद्ध अच्छे परिवारके लोग सुबह तैयार होते तब जैसे आज अपन घडी पहनें, पाव्डर् लगावें, खीसामें पेन रखें ऐसे फूलन्की माला पहनते हते. तब ये जीवनमें हतो. फूलन्सु स्वागत होवे है ये बात सच्ची है. पर फूल केवल कोईके स्वागतकेलिये ही है जीवन प्रणालीकेलिये नहीं है ऐसी बात नहीं है. आप लोगन्कु अच्छी तरह याद होयगो के नहेरुजी रोज एक लाल फूल अपने कोटकी जेबमें लगाते हते. अपने यहां प्राचीन कालसु ही फूलन्के साथ लोगन्में लगाव हतो. फूल जैसे महकते उनके स्वभाव हते. फूल जैसे महकते उनके भाव हते. अब अपनकु फूलसु उतनो लगाव रह नहीं गयो है. करके अपन्ने फूलकु बडी विचित्र स्थितिमें रख दियो है. कोईके स्वागतकेलिये अपन वाकु ''आओ आओ'' करके फूलकी माला पहनावें. पहननेवालो भी क्षण भरमें मालाकु गलेमें उतारके रख देवे. इतने छोटेसे कर्मकांडकेलिये फूलको बिगाड क्यों करनो पर प्राचीनन्को व्यवहार ऐसो नहीं हतो. करके उनने ठाकुरजीकी सेवाके क्रममें भी फूलन्को विनियोग सोच्यो हतो.

ऋतुक्रममें फूल-माला :

आप कभी फूलन्की मालाके विषयमें सोचके देखो. सोचोगे तो आपकु पता चलेगी के अनेक फूलन्की मालामें अपने पुष्टिमार्गकी माला अलग ही दिखलाई देगी. सबसु बडी विशेषता अपने यहांकी मालामें ये होवे है के अपन मालामें फूल तो सजावे हैं पर फूलन्के डंठुल नहीं रखे हैं. दूसरे जगहकी मालान्में आपकु फूलके संग फूलके डंठुल भी मिल जायेंगे और कभी तो पान भी मिल जायेंगे. पर अपने यहां उत्तमको ही समर्पण करनो चहिये ऐसे विचारसु केवल फूल ही मालामें रखे जाये हैं. इतनो सूक्ष्म विचार केवल अपने यहां ही है.

याके अलावा मालन्के प्रकार यदि सोचें तो-तो उनको कोई पार नहीं है. एक मणकावाली माला, एकसु अधिक मणकावाली माला, मृदंग

आकारके मणका वाली माला, गोल मणका वाली माला, लंबे-छोटे मणकावाली माला, दोहरी माला, लहेरियाकी माला, केवडा-चम्पाकु बंद करके उनके मणकाकी माला वगैरह अनेक प्रकार हैं.

या तरहसु अपनने ऋतुक्रमके अनुसार ठाकुरजीकु अरोगावेकी सामग्री, जल, अत्तर, फूलकी माला आदिमें बहोत सूक्ष्म विचार कियो है.

ऋतुक्रममें आरती :

आप आरतीकी बात सोचोगे तो सिहरन(रोमांच) होवे ऐसी बात है. अपने यहां उष्णकालमें सोलह या आठ बातीकी आरती नहीं होवे है. वासु ठाकुरजीकु गरमी लगे. यासु चार बातीकी आरती होवे है. आरतीमें खंड होवे हैं. सबसु ऊपर चार बाती होवें, वासु नीचे आठ होवें और वासु नीचे सोलह होवें. खंड जितने बढें उतनी बाती मल्टिप्लाय् होती चलि जावे है. पर उन सारे खंडनमें अपन बाती उष्णकालमें नहीं प्रकटावे हैं. गरमी लगे. शीतकालमें अधिक बातीकी गरमी सुहावे है करके अपन सारे खंडनमें बाती रखे हैं. सोचो के प्रभुसुखको कितनो विचार अपने यहां आरतीके जैसी छोटीसी बातमें रख्यो गयो है. कहां तो अपनी भावनाकी ये उंचाई और कहां आजकी हवेलीन्की सेवा. जरा तुलना करके देखो. आज गामसु भीख मांगके ठाकुरजीके छप्पनभोगके प्रदर्शन आयोजित किये जाये हैं तब ठाकुरजीके माथापे हजार-हजार वोट्की हेलोजन लाईट् जलाई जाये है के जासु ठाकुरजी एकदम चकमक-चकमक होते रहें. एक ऐसे ही छप्पनभोगके प्रदर्शनमें ऐसो भयो के उन बडी-बडी लाईट्की गरमी इतनी बढ गयी के ठाकुरजीकु शृंगार धरनेको मोम पिघलने लग्यो. आखिरमें ठाकुरजीके सब भारी शृंगार वडे हो गये. ऐसो क्रूर प्रदर्शन देखने आये मूर्ख लोगन्ने जय-जयकार करदी *''देखी हरि नंगम-नंगा''*. अरे पुष्टिमार्गी तुम्हारी क्या दुर्दशा हो गयी है, सोचो तो सही ठाकुरजीके कितने विकृत प्रदर्शनकु तुम सेवा-भक्ति समझ रहे हो ये पुष्टिमार्ग नहीं है. ऐसो पुष्टिमार्ग हो नहीं सके है. तो सोचो के आरती जैसी छोटीसी वस्तुमें अपनने प्रभुके सुखको कितनो विचार ऋतुक्रमके अनुसार रख्यो हतो.

जैसे फूलकी मालाके सम्बन्धमें अपनने पुष्टिमार्गीय मालाकी विशिष्टता मर्यादामार्गीय मालासु देखी ऐसे ही आरतीके प्रकारके विषयमें सोचोगे तो आपकु पता चलेगो के इन दोनोन्में कितनो अन्तर है. आधे घंटा तक ढंढणन्-ढंढणन् घंटा-टकोरा बजते ही रहें. अपनकु सुनते ही पता चल जाये के ये मर्यादामार्गीय आरती हो रही है. अपने यहांकी आरती कितनी छोटी होवे है. श्रीगुसांईजी विरचित आरतीके श्लोक याद करो तो पता चलेगो के कोई चार श्लोककी आरती, कोई छह श्लोककी आरती है. बस इतनी छोटीसी आरती अपने यहां होवे है. वामें भी घंटा मधुर और मंद अवाजवाले ही बजानेकी पद्धती हती. टकोरा, शंख आदि तो बहोत बडे उत्सवनपे ही बजाये जाये हैं.

आरतीके सम्बन्धमें कई लोगन्में ऐसो फिक्सेशन् डेवलप् हो गयो है के आरती तो केवल गोस्वामी बालकन्के यहां ही हो सके है, वैष्णवन्के घर बिराजते ठाकुरजीकी आरती नहीं हो सके है. यदि ये बात सच होत तो आप (किशनगढके) लोग सोचो के किशनगढ दरबारके यहां ३००-४०० सालसु ठाकुरजीकी नित्य आरती कैसे हो रही है? न जाने कौनने ऐसी विचित्र बात फैलादी है के आरती तो केवल गोस्वामी महाराजन्के यहां ही हो सके है. ऐसी बहोतसी जूठी बातें अपने सम्प्रदायमें चल रही हैं. उन सब बातनके पीछेको गंदो रहस्य केवल इतनो ही है के जितनो हो सके उतनो वैष्णवन्कु उनके घरमें होती सेवासु विमुख करो, विरत करो जासु कि वो दुकानदारीकेलिये खोली गयीं हवेलीन्में दर्शनकेलिये चक्कर काटतो ही रहे. क्योंके यदि वैष्णव अपने घरके ठाकुरजीकी आरती करेगो तो फिर वो हवेलीन्में आरतीके दर्शनकेलिये क्यों भटकेगो? वैष्णवन्के यहां आरती नहीं हो सके है ऐसे दुष्प्रचारके कारण कई लोगन्कु हवेलीन्की आरतीमें ऐसो माहात्म्य लगे है के जब आरती होती होवे तब वो लोग ठाकुरजीके स्थानपे मुंडी गोल-गोल फिराके आरतीके ही दर्शन करते होवे हैं.

अपने यहां आरती उतारके आरती ली नहीं जावे है. क्यों? कारण

समझो. मर्यादामार्गमें आरतीके दीपसु देवको सत्कार कियो जाय है. जा दीपसु देवको सत्कार भयो होवे वो दीप देवको प्रसादी बने है. प्रसादी दीपकी आरती लेनेमें भावना ऐसी हती के ये दीप हमकु भी आलोकित करे. अपने यहां दीपसु प्रभुको सत्कार तो है पर वामें ऐसो फिक्सेशन् नहीं है के वो केवल सत्कार ही है. वामें अपनो ये भाव भी है के इतनी देर अपनकु प्रभुके दर्शन नहीं भये वाके कारण अपने हृदयमें जो आरती भयी वाकु अपन्ने प्रभुके ऊपर वारदी. अब जा आरतीकु अपन्ने वारदी वाकु पाछी क्यों लेनी या भावनाके कारण अपने पुष्टिमार्गमें आरती पाछी ली नहीं जाये है.

एक कारण आरतीके माहात्म्यके पीछेको ऐसो भी है के पुराने जमानामें बिजली होती नहीं हती. ठाकुरजी जहां बिराजते वहां छोटोसो दिया मात्र होतो. वाके कारण ठाकुरजीके दर्शन भी अच्छी तरहसु हो नहीं पाते हते. जब ठाकुरजीकी आरती उतारी जाती वा बखत अधिक प्रकाश हो जातो. वाके कारण ठाकुरजीके प्रत्येक अंगके दर्शन अच्छी तरहसु होते. यासु ही आरती उतारनेकी पद्धती भी ऐसी हती के सबसु पहले ठाकुरजीके चरणकी आरती उतारनी. पीछे चरणसु उपरके श्रीअंगकी उतारनी. ऐसे करते-करते मुखारविंदकी आरती उतारनी. और सबसु छेल्ले पूरे श्रीअंगकी आरती उतारनी. ऐसे अंग-प्रत्यंगकी आरती उतारके ठाकुरजीकु अपन अपने नेत्रके द्वारा अपने हृदयमें पधरावे हैं. और इतने समय तक ठाकुरजीके दर्शन नहीं होनेकी हृदयमें जो आरती भयी होवे है वाकु अपन ठाकुरजीके अंग-प्रत्यंगके दर्शन करके ठाकुरजीपे वार देवे हैं. ऐसो अपनो भाव हतो. यासु जा आरतीकु अपनने वारदी है वाकु अपन पाछी क्यों लेवें? या भावसु अपने यहां आरती ली नहीं जावे है. और या भावसु शीतकालमें आरतीमें बाती ज्यादा होती हती, उष्णकालमें उतनी ज्यादा नहीं होती हती. क्योंके उष्णकालमें प्रकृतिकी उष्णताके कारण मानव स्वभावमें भी आरती कम होवे है.

ऐसे अपन्ने ऋतुक्रमकी सेवामें हर छोटी-बडी बातन्को बहोत सूक्ष्मतासु विचार कियो है. वाको सौन्दर्य समझोगे तो अपने यहांकी सेवाकी

रेंज् समझमें आयेगी. जैसे सतरंगी लहेरिया होवे ऐसे अपने यहांकी सेवाको सतरंगी प्रकार है. कोई एक प्रकारको फिक्सेशन् नहीं है. पर सतरंगको पाछो इतनो अस्वाभाविक स्वरूप नहीं होनो चहिये. ऐसो दुराग्रह नहीं है के सतरंगको मतलब सात रंग ही होने चहिये. ठाकुरजी अपने एक रंगकु सात रंग मानने तैयार हैं. इतनो पाछो लचीलोपन भी अपने यहां है. जाके देखलो, सेवाप्रकारकी इतनी विविधता, इतनो समृद्ध स्वरूप ओर कहीं देखने नहीं मिलेगो.

प्रश्न : आरतीको अर्थ समझावेकी कृपा करो.

समाधान : संस्कृत शब्द है: 'आरार्त्रिकम्'. हिन्दीमें वाको अपभ्रंश 'आरती' अथवा 'आर्ति' ऐसे दोनों ढंगसु भयो है. ये तो शब्दकी बात भयी. 'आर्ति'को अर्थ होवे है कोईसु मिलवेकी उत्कटता. और 'आ-रती'को अर्थ होवे है पूर्ण स्नेह. संस्कृतको 'आरार्त्रिकम्' तो सत्कारके अर्थमें है, मर्यादामार्गमें. अपने यहां ठाकुरजीके सत्कारको भाव तो स्वीकार्या ही है पर वहां तक वाकु सीमित नहीं करके हृदयकी बात भी वामें स्वीकारी गयी है. यासु 'आरती' वालो भाव भी वामें है और 'आर्ति' वालो भाव भी वामें है. 'आरती'के बहाने अपन ठाकुरजीके अंग-प्रत्यंगकु निहार सकें. यामें 'आ-रती' है. और जब वार रहे हैं तब वो 'आर्ति' है. जब अंग-प्रत्यंगके दर्शन हो गये तब अपनी आर्ति ठाकुरजीपे न्योछावर हो गयी.

प्रश्न : ठाकुरजीकी सेवामें अपन अत्तर लगाके जा सकें?

उत्तर : लगानो ही चहिये के जासु ठाकुरजीके चरणारविन्दकी सुगंधसुं तुम महेको. नहीं महेको तो तुम्हारे दुर्भाग्य. ठाकुरजीके चरणकी सुगंधसुं अपन नहीं महेके तो अपने दुर्भाग्य हैं. मैं तो यहां तक कहूंगो के अत्तर लगावेकी सामर्थ्य कोईकी नहीं है तो पाव्डर् लगावे. ठाकुरजीके पास तो महेकते भये जानो चहिये. जैसे एक पत्नी अपने पतिके पास महेकती भयी जावे है ऐसे अपनकु अपने ठाकुरजीके पास महेकते भये जानो चहिये. ठाकुरजीके पास बासते भये क्यों जानो चहिये क्यों दरिद्रतासु जानो सज-धजके जानो चहिये.

हमारे गोस्वामी परिवारमें तो प्रायः नियम है के जब बहु-बेटीयें ठाकुरजीकु झुलावे आवें तब ठाकुरजीके वस्त्रके जैसी साडी पहेनके झुलावें. हम तो वैसे वस्त्र पहेन नहीं सकें करके ठाकुरजीके वस्त्रके जैसी इकलई ओढके झुलावे हैं. ये कोई गोस्वामीन्की ही मोनोपालि होवे ऐसी बात नहीं है. आप लोगकु भी ऐसो ही करनो चहिये यदि कर सको तो. नियम नहीं है पर कर सको तो करनो चहिये.

प्रश्न : प्रसादी वस्त्र-अत्तर नहीं होवें तो क्या करनो?
उत्तर : प्रसादी होवे तो वासु उत्तम ओर क्या हो सके? सोनामें सुगंध है. यदि प्रसादी नहीं है और तुम ठाकुरजीके सामने जावेकेलिये अत्तर लगा रहे हो तो अत्तर प्रसादी भले नहीं है पर समर्पित तो भयो के नहीं? तुमने ठाकुरजीकेलिये लगायो है, अपनेलिये नहीं लगायो है तो वो समर्पित है ही.

मैने गये बरस भी ये बात समझायी हती के प्रसाद और समर्पित एक वस्तु नहीं है. प्रसाद और समर्पित कु एक मान लेवेसु पुष्टिमार्गमें बहोत घोटाला भये हैं. 'समर्पित'को मतलब है: अपने द्वारा वापरी जाती कोई भी वस्तु के जाकु अपन भगवान्केलिये वापर रहे हैं. और प्रसादी वो है के जाकु भगवानने वापरी है और सेवककी हैसियतमें वाकु वापरनेकेलिये भगवानने अपनकु दी है. तो, प्रसादी यदि है तो सोनामें सुगंध है. और प्रसादी नहीं है तो नहीं है. हर चीज कैसे प्रसादी हो सके? अपन जूता पहने हैं. ठाकुरजीकु अपनो जूता कैसे पहनायेंगे? वो कैसे प्रसादी हो पायेगो? अपनकु जुकाम-शरदी हो जावे तो अपन सेरिडोन् खायेंगे. अब ठाकुरजीकु सेरिडोन कैसे भोग धरनी? पर अपनी शरदी सेवामें प्रतिबन्धक नहीं होवे वाकेलिये यदि अपन सेरिडोन खा रहे हैं तो सेरिडोन समर्पित हो गयी. या रहस्यकु समझो. सेरिडोन खानेकेलिये वाकु ठाकुरजीकु भोग धरवेकी जरूरत नहीं है. और न ऐसे अतिरेककी जरूरत है के सेरिडोन तो अनप्रसादी है तो वाकु खानो कैसे? अरे भाई, सुर्‌ड् सुर्‌ड् .... करते-करते ठाकुरजीकु शृंगार धराने वाके करते सेरिडोन खाके, स्वस्थ होके शृंगार क्यों नहीं धराने?

चश्मा अपन ठाकुरजीकु कहां धरावे हैं? ठाकुरजी कहेंगे के मेरे थोडी नंबर हैं के मोकु तुम चश्मा पहेना रहे हो. चश्माकु अपन प्रसादी नहीं करा सके हैं. पर ठाकुरजीके दर्शन अच्छी तरहसु होवें, शृंगार ढंगसु धरा सकें वाकेलिये यदि अपन चश्मा पहन रहे हैं तो चश्मा समर्पित है. चश्मा अपनो है, समर्पित ठाकुरजीकु है. या भावसु सब समर्पित हो सके है. श्रीमहाप्रभुजीने समर्पणकी रेंज् ऐसी रखी है के जीवनको कोई पहलू भगवद्भक्तिकी साधनासु बाहर न रह जाये. भगवद्भक्तिकी साधना ऐसी है के जो जीवनके हर कोनेमें फैली भयी है. जहां देखोगे वहां वाकी कुछ न कुछ महक मिलेगी. बशर्त वा मनोभावसु करो.

प्रश्न : आज-कल नाथद्वारामें आरती लेवेकेलिये रखी जाय है, सन्मुखमें भेंट करी जाय है, प्रसाद बेच्यो जाय है. या सम्बन्धमें आप समझावेकी कृपा करो.
उत्तर : आज-कल नाथद्वारामें सत्तर प्रतिशत् मर्यादामार्गी जावे हैं. पुष्टिमार्गी तो तीस प्रतिशत् ही जावे हैं. मर्यादामार्गी लोगनकु न पुष्टिमार्गके सिद्धान्त और भावना को ज्ञान है न वो लोग वाकु जाननो चाहेंगे. उन लोगनकु जब अपन अपने यहां घुसवे देवें हैं तब दूसरी सब जगह जैसो चलतो होवे वैसो उनकु अपने यहां आवेपे भी मिले ऐसी उनकी अपेक्षा होवे है. अपन तो पहलेसु ही अपनो सब कछु छोड चुके हैं. उनकु खुश करवेकेलिये अपनने भी आज-कल लोगनके सामने आरती रखनी शुरु करदी है.

ऐसी ही स्थिति भेटकी है. अपने यहां जन्माष्टमी, पवित्रा और दिवाली के अलावा ठाकुरजीकु भेट होवे ही नहीं है. ओर दिननमें ठाकुरजीकु भेट करवेकी साफ मनाई है. वो तीन दिनकी भेट भी मर्यादामार्गी पूजामें जा तरहसु भेट होवे है वा तरहकी अपने यहां नहीं है. जन्माष्टमीमें पलनाकी भेट व्रजवासी नन्दरायजीकु पुत्रजन्मकी बधाई देवे हैं वा भावसु घरके लोगनकु करनी चहिये. ठाकुरजीकु पुष्टिमार्गीय दीक्षामन्त्रके आद्य उपदेशक गुरु मानके पवित्रा धराके घरके लोग ठाकुरजीकु भेट करे हैं. और दिवालीकी भेट ठाकुरजीकु जुआ खेलवेकेलिये नन्दरायजी पैसा देवे हैं वा भावसु घरके लोग करे हैं.

अब तो ये हाल हो गयो है के लोग ठाकुरजीके सामने ऐसे टपा-पट टपा-टप पैसा फेंके हैं के जाने ठाकुरजी बेट्स्मेन् होवें और लोग बोलर्. या घृणित व्यवहारकु कोई रोके नहीं है. कोई मना करनेवालो नहीं है के ऐसो मत करो, ये पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तसु विरुद्ध है. ट्रस्टी-महाराज क्यों मना करेंगे उनको तो ''**टका कर्म टका धर्म टका हि परमेश्वरः, यस्य हस्ते टका नास्ति हाटके टक-टकायते**'' टका इकठ्ठे करनो ही लक्ष्य है. पर यदि एक बखत लोगन्के सामने पैसा उठाके फेंकदोगे तो लोग डर जायेंगे. फिर पैसा नहीं फेंकेंगे. पर टेरा खोलनेवालेन्कु ये सब पसंद आतो होवे है, यासु ही तो दर्शन खोले हैं. कई जगह तो मन्दिर-हवेलीवाले ऐसो भी करते होवे हैं के दर्शन खोलके दर्शनार्थीमें अपने लोगनकु खडे करके ठाकुरजीके सामने पैसा फिंकवाते होवे हैं जासु कि जिन लोगनकु पैसा फेंकवेको विचार नहीं आतो होवे वो भी समझ जावें के यहां पैसा फेंकनेके हैं. फिर तो टपा-टप पैसा बरसवे लगे है. ये क्या नाटक है बिचारे श्रीमहाप्रभुजीकु कल्पना भी नहीं होयगी के उनके वंशज पुष्टिमार्गके ऐसे हाल केरेंगे. डूबे वंश कबीरका जो उपजे पूत कमाल ऐसे बहोत सारी गंदी बातें अपने यहां चल रही हैं कि जिनको श्रीमहाप्रभुजीके साथ, पुष्टिमार्गीय सेवाके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है.

प्रसादकु बेचनो तो इतनो बडा पाप है कि यदि कोई ब्राह्मण प्रसाद बेचे है तो वो तत्क्षण, भंगी नहीं, चांडाल बन जावे है. प्रसाद बेच्यो और चांडाल जितने अपवित्र हो गये. मरे जानवरकी खाल खींचनेवालो चांडाल कह्यो जावे है. सर्वे करोगे तो आपकु पता चलेगो के पुष्टिमार्गी लोग चांडाल बनवेकी दौडमें आपकु सबसु आगे दौडते मिलेंगे. कोई भी सिख्खनके गुरुद्वारामें जाओगो तो वो लोग आजीजी करके प्रसाद लेवे बिठावेंगे, कोई आपसु पैसा नहीं मांगेगो. पुष्टिमार्ग यामें ही एक्सपर्ट है. प्रसाद ही बेचेंगे भले चांडाल जितने अपवित्र हो जावें. पुष्टिमार्गी भी पाछे ऐसे ही हैं. उनकु घरमें सामग्री सिद्ध करके अपने ठाकुरजीकु अरोगाके शुद्ध प्रसाद लेनो अच्छो नहीं लेगे है. कौन इतनी माथा-पच्ची करे पैसा फेंको और तैयार मठडीको स्वाद चखो. सबनकु ऐसो ही अच्छो लगे है. जो भी खरीद्यो जा सके

वाकु खरीदो. खुद कुछ मत करो. जब आप खरीदवे बैठे हो तो बेचवेवाले तो खुश-खुशल हैं. आप जो मांगोगे वाकु वो बेचेंगे. उनको तो एक ही धंधा है: बेचो, जो मांगे वो बेचो. ठाकुरजीकु बेचो, ठाकुरजीकी कथाकु बेचो, कीर्तनकु बेचो, प्रसादकु बेचो. ... पर समझो, इन सबको पुष्टिमार्गके साथ दूर-दूरतक कोई सम्बन्ध नहीं है.

प्रश्न : अपने यहां दीया प्रकटायो जा सके के नहीं?

उत्तर : ठाकुरजीके साथ याको साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं है. प्राचीन समयमें हिन्दु लोग पितरन्की पूजाके रूपमें दीया जलाते हते. अपने यहां ठाकुरजी अपनी गृहस्थीमें बिराजे हैं. यालिये ठाकुरजी भी अपने लोगन्के कई रीति-रिवाज पाले हैं. जैसे ग्रहण आवे तब ठाकुरजीके निमित्तसु ग्रहणमें दान कियो जाय है. वाके संकल्पमें ऐसो कह्यो जाय है के ये ग्रहण हमारे ठाकुरजीकु बाधा न पहोंचावे वाकेलिये ये दान कर रहे हैं. लोग या डरसु दान करते होवे हैं के ये ग्रहण भारी है, हमारो अनिष्ट कर देगो. यासु ''दे दान छूटे ग्रहण'' करके लोग दान करते होवे हैं. पर अपन ऐसे डरसु दान नहीं करे हैं. अपन तो इतनो सोचे हैं के हमारे ठाकुरजीकु ग्रहण नडनो नहीं चहिये, बस.

अक्षयतृतीयाके दिन कूष्मांडको दान कियो जाय है. वा दानके संकल्पमें भी ऐसो कह्यो जाय है के या दानको पुण्य प्रभुकु जावे. हमारो ठाकुर सुखसु बिराजे. ऐसे ही होलिकाको पूजन होवे है. अपने यहां (किशनगढमें) भी होली पूजते हते. वाके भी संकल्पमें ये ही कह्यो जावे है के हमारे ठाकुरजीपे कोई संकट न आवे. या तरहसु बहोत सारे लौकिक और शास्त्रीय उत्सव अपन मनाते हते. पर उनकु लौकिक और शास्त्रीय भावनासु नहीं मनाके भक्तिमार्गीय भावनासु अपने सेव्य ठाकुरजीकेलिये मनाते हते. ऐसे ही अपने यहां दशहराको पूजन होतो हतो. वो भी ठाकुरजीकेलिये ही कियो जातो हतो. ऐसे ही नवरात्रीके समय अंकुरारोपण होतो. वो तो शुद्ध देवीके पूजनकी प्रक्रिया है, वैष्णव प्रक्रिया नहीं है. पर अपन वो भी करते हते. अपने ठाकुरजीकेलिये सब करते हते. शिवरात्री भी अपन मनाते हते. अपने ढंगसु मनाते हते. ठाकुरजीके

सन्मुख अपन शिवरात्रीके दिन कीर्तन गावे हैं ''वाघंबर ओढे सांवरो''. वा दिनकी सेवाकी रीतमें ऐसो लिख्यो है के शिवरात्रीके दिन ठाकुरजीके वस्त्रकु, वस्त्र यदि बहोत छोटे होवें तो ठाकुरजीकी गादीकु एक लकीर चन्दनकी और एक लकीर श्याम रंगकी या तरहसु रंगनो जासु कि बाघपे ठाकुरजी बिराजे होवें ऐसो लगे. गणेश चतुर्थी अपन मनाते हते ठाकुरजीके सन्मुख डंडा रखके. वाकु डंडाचौथ भी कह्यो जाय है. अपने ठाकुरजी डंडा बजावें वा भावनासु.

दानादिक दुनियाके लोग भी करे हैं पर उनके दानको संकल्प उनके खुदके सुख-समृद्धि-पुण्यकेलिये होवे है. अपन भी वा सब तरहके दान करे हैं पर अपनो संकल्प उनमें अपनी सुख-समृद्धिको नहीं होवे है अपने सेव्य ठाकुरके सुखको होवे है. वहां तक की जब अपन अपनी लडकीके कन्यादानको संकल्प करे हैं तब भी वाके संकल्पमें अपन ये ही बोले हैं के या कन्याके दानको जो कछु पुण्य होवे वो हमारे सेव्य ठाकुरके सुखकेलिये होवे. ब्याह करानेवाले पंडितनसु पूछो के सारी दुनिया कन्यादानको क्या संकल्प बोले है. लोग बोलते होवे हैं के मेरी पिछली सात पीढी और आनेवाली सात पीढी या लक्ष्मीरूपी कन्याके दानके पुण्यसु तर जावे वाकेलिये मैं ये कन्याको दान कर रह्यो हूं. अरे तरनो क्यों है अपनकु तो ठाकुरजीके संग या भवसागरमें ही तैरते रहेनो है. हम क्यों तरें. हम तैरनो जाने हैं फिर क्यों तरें तरे तो वो के जो तैरनो नहीं जानतो होवे. हम तो हमारे प्रभुके संग तैरनो जाने हैं. यासु हम जितने जन्म लेंगे उतनी बखत ठाकुरजीकी सेवा करेंगे. ठाकुरजीकु भी हम कहेंगे के चलो थोडी देर तुम भी हमारे संग भवसागरमें तैरो. यासु हम ऐसो संकल्प कभी नहीं करेंगे के हमारी सात पीढी तर जाये. हमारो संकल्प तो इतनो है के हम हमारे ठाकुरजीकी सेवा करते रहें. पुण्य मिलनो होवे तो मिले, न मिले तो भाडमें जाये.

तात्पर्य ये है के अपन पुष्टिमार्गमें दान, व्रत, तप, जप, संयम, भोग आदि जो कछु भी करे हैं वो सब ठाकुरजीकेलिये करे हैं. ''*कीजीये जो भी मनमें आये शकिल लेकिन उसकी खुशी मुकद्दम*'' ये अपनो सिद्धान्त है.

वाकी खुशी मुकद्दम होनी चहिये. वाकी खुशी मुकद्दम मानके कियो तो वो भक्ति है, अपनी खुशी मुकद्दम मानके कियो तो फिर वो संसार है. और न वाकी खुशी और न अपनी खुशी केलिये कुछ कियो, करनेकेलिये कर दियो तो फिर वो ज्ञानमार्ग वैराग्यमार्ग हो गयो. तुम भवसागरसु डर गये. हम क्यों डरें क्षीरसागरको स्वामी जब अपने संग या भवसागरमें तैरवे तैयार है तो फिर अपन भवसागरसु क्यों डरें ये अपनी धारणा है.

प्रश्न : अपने यहां आरतीमें फूलवाट-फूलबाती प्रकटा सकें?
उत्तर : मैं आपकु पहले कह चुक्यों हूं के अपने यहां फिक्सेशन् कोई बातको नहीं है. मूल बात ये है के अपन आरतीमें जो चार बाती-वाट रखे हैं वो अपने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष पुरुषार्थ हैं के जिनकु अपन अपने ठाकुरजीपे वार देवे हैं. और अपने यहांकी आरतीकी डिझाईन् ही ऐसी होवे है के वामें फूल बाती रखी ही नहीं जा सके है. फूलवाटकी आरती उतारनो कोई अपराध नहीं है. हर कामकु करनेकी कोई पद्धति होवे है. जैसे राजस्थानमें कोईकु गाली देनी होवे तो 'कांई सा'ब, आप कैसी गांडी-घेली बात कर रह्या हो'' ऐसे आदरके साथ निन्दा करी जावे है. ये एक पद्धति है, कल्चर है. ऐसे अपने यहां आरतीकी पद्धति अलग है, फूलवाट अपने यहां नहीं आवे है.

प्रश्न : बाती चार होनी आवश्यक है?
उत्तर : एक बाती है तब भी अपन चार बातीकी भावना कर सके हैं. पर यदि अपने पास सुविधा है तो अपन चार रखे हैं.

भगवत्सेवामें उत्सवक्रम

अभी तकके प्रवचनमें सेवाके ऋतुक्रमके बारेमें जो भी कछु बतायो जा सकतो हतो वो अपनने देख्यो. भोग, राग, शृंगार वगरे कई सन्दर्भनमें. वाके बाद अब उत्सवक्रमकी विचारणा प्राप्त होवे है.

परिभाषा:

'उत्सव'को मतलब होवे है: 'उत्'=आनन्द. 'सव'=प्रसव. आनन्दको पैदा होनो वाको नाम 'उत्सव'.

नित्यसेवाके क्रममें गोचारण करके ठाकुरजी सन्ध्या आरतीके समय व्रजमें पधारे हैं वाके सम्बन्धमें भागवतमें बहोत सुन्दर लिख्यो है के वा समय व्रजभक्तन्के नेत्रन्में एक उत्सव प्रकट हो जावे है. मतलब, वो जो छबी है, व्रजमें पधारनेकी,

''आगे गाय पाछे गाय इत गाय उत गाय,
गोविन्दकों गायनमें बसवो ही भावे ...
नन्ददास प्रभु जहां-जहां ठाडे हो ...
काहुसों हां करी काहुसो ना करी''...

भागवतमें बहोत सुंदर आवे है के प्रभुके मुखारविंदपे गोचरणको परिश्रम झलक रह्यो है. वाके दर्शन करके व्रजभक्तन्के नेत्रन्में एक उत्सव प्रकट होवे है के प्रभु गोचारण करके व्रजमें पाछे पधारे.

निरोधलक्षण ग्रन्थमें भी याही लिये श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं :

''उद्धवागमने जातः उत्सवः सुमहान् यथा,
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्''.

नित्यप्रति भगवद्गुणगान करनेवाले व्रजभक्तन्कु भी उद्धवजीके साथ

जब भगवद्गुणगान करनेको अवसर प्राप्त भयो तो श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के **''उत्सवः सुमहान् यथा... मे मनसि क्वचित्''.**

उत्सव माने आनन्दको प्रसव. वाके निमित्त एक नहीं अनेक हो सके हैं. और स्पष्टतया अभी तकके प्रवचनमें अपन या बातकु देख गये के अपने सेव्यस्वरूपके अनेक पहलू हैं: वो ब्रह्म भी है, परमात्मा भी है, भगवान् भी है, व्रजमें अवतीर्ण नन्दात्मज भी है, अपने घरमें प्रकट भयो सेव्य-कृष्ण भी है, आजकी भाषामें कहें तो श्रीमहाप्रभुजीके संग एग्रिमेंट्पे साईन् करनेवालो भी वो है :

''श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि,
साक्षाद् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते... सर्वदोषनिवृत्तिर्हि''

ये ठाकुरजीने प्रकट होके श्रीमहाप्रभुजीके संग एग्रिमेंट् कियो है. ऐसे अनेक पहलू वाके हैं. इन सारे पहलून्के साथ-साथ अपनेमें जैसे भाव वो जगावे वैसे भावके अनुरूप वाको स्वरूप भी है ही. इतने सारे जब वाके पहलू हैं तो अपन सहज समझ सकें के इनमेंसु कोई भी पहलूमेंसु अपनेकु उत्सव प्रकट हो सके है. मैं यहां फिरसु आपकु पहलेकी बात बताउंगो के यामें यदि फिक्सेशन् होयगो तो उत्सव प्रकट नहीं होयगो, फ्लेक्सिबिलिटी होयगी तो याके हर पहलूमेंसु उत्सव प्रकट हो सके है. जा पहलूकी बारी जा बखत आ जाये वा बखत वा पहलूमेंसु उत्सव प्रकट होयेगो.

अंशाशीभाव उत्सव है :

एक बात समझो के जैसे वो ब्रह्म है वैसे अपन वाके नाम-रूप हैं. जैसे वो परमात्मा है वैसे अपन जीवात्मा हैं. माने अपन वाके बाहरी कवच हैं, वो वाके भीतर रह्यो भयो स्वरूप है. वो भगवान् है अपन भक्त हैं. वो व्रजमें अवतीर्ण होनेवालो व्रजाधिप नन्दात्मज है, अपन वाकी भावना करनेवाले, वाकी कथामें आनन्द लेनेवाले वाके शरणागत होनेवाले वाकु समर्पित होनवाले व्रजभक्तन्के भावुक हैं. वो अपने घरमें ठाकुर बनके प्रकट भयो है, अपन वाके सेवक हैं. तो देखो के अपने पहलूसु भी उत्सव आ सके हैं. ये सारे पहलू अपने

हैं. इनमेंसु अपने कौनसे पहलूको कौनसो उत्सव प्रकट होयगो वाके विषयमें कोई भविष्यवाणी या राशीकी तरह निर्धारण नहीं कर सके हैं के या बखत ये उत्सव प्रकट होयगो. जा बखत जा पहलूके कारण जापे निगाह गयी वामें उत्सव प्रकट हो सके है. ये अपने और वाके स्वरूपके बीचमें ...

ब्रह्मसम्बन्ध भी उत्सव है :

पाछी एक बात ध्यानसु देखो के जब वो ब्रह्म है और अपन वाके नाम-रूप हैं तो या अंशाशीभावकी जा बखत अपनकु समझ आयी वो अपने जीवनमें एक उत्सव है. या अंशाशीभावकेलिये जा बखत अपन कमिटेड् भये के हमारे बीच अंशाशीभाव है ऐसो हम दृढतर माने हैं तो अपनो ब्रह्मसम्बन्ध हो गयो अपने जीवनमें ब्रह्मसम्बन्ध भी एक उत्सव है. आज तो ''टके सेर भाजी टके सेर खाजा'' की तरह चालु खातामें ब्रह्मसम्बन्ध लियो-दियो जाये है करके ब्रह्मसम्बन्धमें लोगनकु उत्सव नहीं लगे है. बाकी ब्रह्मसम्बन्ध होनो तो जीवनको बहोत बडो उत्सव है. प्राचीन भगवतीय तो कहते के ब्रह्मसम्बन्ध अपनो द्वितीय जन्म है. ब्रह्मसम्बन्ध भयो तो दूसरो जन्म भयो. ये उत्सव अपने और वाके बीचमें होती सम्बन्धकी स्थापनाको उत्सव है.

घरमें ठाकुरजीको पधारनो एक उत्सव है :

अपने घरमें ठाकुरजी पुष्ट होके पधारे वो एक उत्सव है. ये उत्सव ब्रह्मके अंशी होनेको और अपने वाके नाम-रूपात्मक अंश होनेको नहीं है. ये उत्सव वा विषयको है के वाने आज अपने साथ स्वामी-सेवकभाव सम्बन्ध स्वकार्यो है. ''तेरे घरको ठाकुर मैं हूं'' एसे वो अपने घरमें पाट बिराजे वाको उत्सव है. ये दूसरे छोरपे दूसरे तरहको उत्सव है.

श्रीनाथजी जा बखत प्रकटे तब श्रीमहाप्रभुजीने सदुपांडे आदि व्रजवासीन्कु कही के तुम श्रीजीकी सेवा करो. पर स्वरूप इतने बडे के सेवा कौन कर सके सबनने इन्कार कर दियो के हमसु इनकी सेवा करी नहीं जायेगी. और श्रीनाथजीने भी ऐसी इच्छा प्रकट करी के मेरेलिये देवमन्दिर बनाओ.

श्रीनाथजीने पूरणमल्लको श्रीमहाप्रभुजीके साथ सम्बन्ध होनेसु पहले ही वाकु देवालय बनावेकी स्वतन्त्र आज्ञा करदी हती. वो भी वहां आयो भयो हतो. वाने देवालय बनायो और अक्षयतृतीयाके दिन श्रीनाथजी पाट बिराजे. पाट तो बिराजे पर पुष्टिमार्ग श्रीनाथजीको अक्षयतृतीयाको पाटोत्सव नहीं मनावे है. अपन श्रीनाथजीको पाटोत्सव फागुन वदी सप्तमीको मनावे हैं. क्यों? क्योंके वा दिन श्रीनाथजी श्रीगुसांईजीके घर पधारे और वा दिन श्रीनाथजीने श्रीगुसांईजीके कुलकु अपनो सेवक मान्यो. देवमन्दिरकी मर्यादाकु छोडके गोस्वामी घरकी मर्यादामें पाटपे बिराजे. श्रीगुसांईजीको घर मेरो घर है, वाको में स्वामी हुं, देवमन्दिरको मैं स्वामी नहीं हूं. व्रजरायजी महाराज याहीलिये लिखे हैं के यासु बडो उत्सव पुष्टिमार्गमें हो नहीं सके है. अपनकु आश्चर्य होवे के क्या जन्माष्टमीसु भी बडो उत्सव है ऐसो कहके व्रजरायजी कौनसे उत्सवकी महात्ताकु कैंसल् कर रहे हैं? मोकु भी बडे दिन पझल् होती रही के जन्माष्टमी तो बहोत बडो उत्सव है के जा दिन ठाकुरजी व्रजमें प्रकटे. श्रीमहाप्रभुजी भी आज्ञा करे हैं के

''स एव कदाचिद् जगदुद्धारार्थम् अखंडः पूर्णः सन्
'कृष्णः' इति उच्यते''.

वो जो ब्रह्म है, परमात्मा है, भगवान् है वाकु जब ऐसो मूड आवे के जीवके साधनन्की परवा मोकु नहीं करनी है. जीवके साधनकी परवाह किये बिना जीवके बीचमें प्रकट होनो है. श्रीगुसांईजी भी यासुही कहे हैं :

''निःसाधनफलात्मायं प्रादुभूतोऽस्ति गोकुले,
अतएवास्ति नैश्चिन्त्यम् ऐहिके पारलौकिके''.

गोपालदासजी भी कहे हैं *''निःसाधन जन हित करेवा प्रकट्या परमदयाल''*. निःसाधन जनके उद्धारार्थ आप प्रकट भये हैं. श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं : **''असाधनमपि साधनं करोति''**. जब निःसाधन जीवनके बीच प्रभु प्रकट भये हैं तब प्रभु या समझके साथ प्रकटे हैं के ये सब निःसाधन हैं, दिनमें दूध-दहीको धंधा, गायन्कु चरानो, शामकु थकके सो जानो. या तरहके गोप संस्कृतिमें जीनेवाले व्रजभक्तन्के पास कौनसे उद्धारके साधन होयेंगे भागवत तो स्पष्ट कहे है :

' ' ते नाधीत श्रुतिगणा नोपासीत महात्तमा
केवलेन हि भावेन गोप्यो गावः खगामृगाः
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धामामीयुरञ्जसा''

न तो उनने कोई शास्त्र पढ्यो, न उनने कोई सत्संग करे, उनके बीचमें कृष्ण ऐसो प्रकट्यो के जो स्वतः आकर्षक है. वाके स्वतः आकर्षणके कारण उनकु वा कृष्णमें भाव स्थापित हो गयो के ये हमारो है. याके अलावा उनके पास कोई ओर साधन नहीं हतो. ये हमारो है ऐसो उनको भाव स्थापित भयो. बसे हे ही उनको साधन हतो.

या भावकु स्थापित करनेकेलिये ठाकुरजी, जो कारागृहमें चतुर्भुज स्वरूपसु प्रकटे हते, उनके दर्शन करके देवकीजीने ठाकुरजीसु कही के या रूपकु देखके तो कंस आपकु पहचान जायेगो. तो ठाकुरजीने कही के तुमने ऐसो वरदान मांग्यो हतो करके मैं या रूपसु प्रकट्यो हूं. अब तुमकु कंसको डर लग रह्यो है तो लो, मैं अपनो रूप बदल लउं. फिर ठाकुरजीकी आज्ञासु वसुदेवजी ठाकुरजीकु नन्दरायजीके घर पधरा आये.

जा बखत नन्दके घर ठाकुरजीकु पधराये वहां भी आप द्विभुज क्यों रहे वहां तो चतुर्भुज हो सकते हते श्रीमहाप्रभुजीने सुबोधिनीमें याकी बहोत सुंदर विवेचना की है के गोपन्के घरमें यदि चतुर्भुज प्रकटेंगे तो गोप उनकु अपनो गोपबालक कैसे मानेंगे और यदि वो लोग ठाकुरजीकु गोपबालक नहीं मानेंगे तो ठाकुरजीमें उनको भाव स्थापित नहीं होयगो. वो यदि नहीं भयो तो आगे जो निःसाधनफलात्मिका लीला होनेवाली है वो लीला ही केंसल् हो जायेगी. यासु ही जा बखत भगवान्के मुखमें यशोदाजीकु ब्रह्मांडके दर्शन भये वा बखत क्षण भरकेलिये यशोदाजीकु ऐसो भयो के ये सब क्या है, भूतबाधा है, प्रेतबाधा है, के मेरो बच्चा ही ऐसो अलौकिक है के वाके मुखमें ब्रह्मांड दीख रह्यो है ठाकुरजीकु भयो के यदि ये बात चालु रही तब तो लीला कैंसल् हो जयेगी. ब्रह्मज्ञान चालू रह्यो तो लीला कैंसल् यासु ठाकुरजीने पाछो अपनो ऐसो बाल स्वरूप दिखायोके जाके कारण यशोदाजीकु मुखमें ब्रह्मांड दीखवेकी

बात ही भुला गयी.

ठाकुरजी वहां निःसाधनफलात्मा होके प्रकटे हैं. जन्माष्टमीको उत्सव निःसाधनफलात्माको उत्सव है. वो भी एक उत्सव ही है. महाप्रभुजी सर्वनिर्णय निबन्धमें कहे हैं के परमात्माकु यदि साधनन्सु प्राप्त करनो है तो बडी-बडी कठिनाईएं हैं. क्योंके शास्त्रवर्णित साधनन्को अनुष्ठान भलीभांती होनो मुश्किल है. पर फिर भी यदि अपन प्रभुकी शरणागति स्वीकार रहे हैं :

' ' सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वतः,
पापपीनस्य दीनस्य श्रीकृष्णः शरणं मम''.

और शरणागत होके प्रभुके प्रति समर्पित होनो चाह रहे हैं तो साधनन्को अनुष्ठान भलीभांती नहीं भी होवे तो न सही पर अपन कोई गुनाह तो नहीं कर रहे हैं प्रभुके प्रति शरणागत होनेमें रिस्क क्या है? शरणागत हो जाओ. यदि वाकु तारनो होयगो तो तारेगो, नहीं तारनो होयगो तो नहीं तारेगो. नहीं तारेगो तो भी अपनी स्थितिमें कोई नुकसान नहीं होने वालो है. यासु भी आदमीकु शरणागति और भक्तिको भाव प्रभुके प्रति रखनो चहिये. निभ पावे तो ठीक है. और समझोके शरणागति और भक्ति नहीं निभी तो कमसु कम शरणागति और भक्ति को भाव मनमें रखनेमें क्या समस्या है? ये श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं. वहां श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के शायद अपनकु निःसाधन समझके प्रभु ऐसे विचारें के मैं कृष्णके अवतारमें तो निःसाधनफलात्मा हूं और ये मोकु कृष्णके रूपसु ही भजनो चाह रहे हैं तो फिर मैं इनकु निःसाधनतया भजूंगो. निःसाधनफलात्माके रूपमें मैं इनकु भजुंगो. **' ' भजतो हि भजन्त्येके''** रास पञ्चाध्यायीमें आवे है. जो भजे वाकु वैसे ढंगसु भजनो. **' ' ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्''.** ये जब मोकु निःसाधनफलात्माके रूपमें भज रहे हैं तो मैं भी इनके पाससु साधननकी अपेक्षा रखे बिना इनकु फलानुभूति कराउंगो. ऐसो क्यों नहीं हो सके है हो ही सके है करके जन्माष्टमी भी अपने यहां एक उत्सव है. पर ध्यानसु देखोगे तो वो एक दूसरे तरहको उत्सव है. और ब्रह्मसम्बन्धको उत्सव कोई अलग तरहको उत्सव है.

एक दिन अपने मनमें सेवा करते-करते ऐसो भाव दृढ हो जाये के ये चीज जो मोकु अच्छी लग रही है वो मेरे ठाकुरकेलिये है. आत्मरति प्रकट हो गयी माने अपनकु जो चीज भा रही है, जो चीज अच्छी लग रही है...

''यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः,

येन स्यान् निर्वृतिश्चत्ते तत् कृष्णे साधयेद् ध्रुवम्''

ह्वये जो श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं वाके अनुसार जो चीज अपनकु पसंद आ रही है वाको उपभोग, वाको आनन्द अपन अपने लिये लेनेके बजाय यदि ठाकुरजीकेलिये उपयोगमें लेनेको थोडो भी भाव जग्यो तो अपनी परमात्मरति प्रकट हो गयी. क्यों प्रकट हो गयी? उपनिषद् और भागवत समझावे हैं :

''न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति,

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति''

पत्नी अपनकु या लिये प्रिय नहीं लगे है के पत्नीमें कोई तरहकी प्रियता है, पर अपनकु अपनी आत्मा प्रिय लगे है, और अपनी आत्मासु पत्नीको सम्बन्ध है करके अपनेकु पत्नी प्रिय लगे है. पुत्र अपनेकु या लिये प्रिय नहीं लगे है के पुत्र प्रिय है. पर पुत्रके साथ अपनकु अपनो कछुक सम्बन्ध दिखलाई दे रह्यो है करके पुत्र प्रिय लगे है. यदि अपनोपन खण्डित हो जाये तो पुत्र भी दुश्मन लगने लग जाये, पत्नी भी दुश्मन लगने लग जाये. अपनोपन खंडित हो जाये तो प्रिय लगनेवालो घर भी अप्रिय लगने लग जाये है.

तो जो चीज अपनेकु प्रिय लग रही है वो अपनेकु ठाकुरजीकेलिये प्रिय लगने लगी तो अपनी परमात्मरति जुड गयी. वो दिन आयेगो कभी. वो सुबह कभी तो आयेगी. श्रीमहाप्रभुजी कह रहे हैं :

''चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा

ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिः ब्रह्मबोधनम्''

तुम तनुवित्तजा सेवा करोगे, व्रजभक्तन्की भावनासु सेवा करोगेह्वपर सेवाको धंधा नहीं करोगे, मनोरथनको धंधा नहीं करोगे, लोगनसु अपने ठाकुरजीकी सेवा-मनोरथकेलिये भेट-सामग्रीकी भीख नहीं मांगोगे, घरकी

जगह अपने ठाकुरजीकु सार्वजनिक हवेलीन्में नहीं बैठाओगेह्वतो वो सुबह कभी तो आयेगी. जा दिन वो सुबह आयेगी वो दिन भी अपने जीवनमें उत्सवको होयगो.

जैसे-जैसे प्रभुके पहलू हैं, वा सन्दर्भमें जैसे अपने पहलू हैं उन सारे सन्दर्भनके अनेकानेक उत्सव हैं.

वो भगवान् है यासु वाकी भगवत्ताकु निभानेकेलिये भगवच्छास्त्रमें जो उत्सव प्रकट भये हैं वो भी अपने यहां सेवामें मनाये जाये हैं. यासु उत्सवको कोई एक प्रकार नहीं है. अपनेकु उत्सवके कोई एक प्रकारको फिक्सेशन् डेवलप् नहीं करनो है. अपने मनकु फ्लेक्सिबल् रखनो है के जब उत्सव आवे तब अपने मनमें आनन्द प्रकट होनो चहिये. करके श्रीहरिरायजी प्रभृति बालकन्ने या बातको स्पष्ट उल्लेख कियो है के सेवामें जब-तक अपनेसु शक्य होवे तब-तक उत्सवको लोप नहीं करनो. क्योंके प्रभु भी उत्सवकी बाट देखे हैं. अपने उत्सवसु प्रभुकु उत्सव होवे है. और प्रभुके उत्सवसु अपनेकु उत्सव है. उत्सव ऐसे परस्पर है.

आज तो ऐसी दुरवस्था हो गयी है के लोग जन्माष्टमी, अपने ठाकुरजीको पाटोत्सव जैसे बडे उत्सवके दिन अपने घर छोड-छोडके बहारगाम रखडते फिरे हैं. आज अपनकु अपने ठाकुरजीके साथ उत्सव मनानो अच्छो नहीं लगे है. कारण क्या है? कारण इतनो ही है के अपनकु अपने घरमें बिराजते ठाकुरजी अपने लगे ही नहीं हैं ठाकुरजी ही नहीं लगे हैं.

वार्ता पढोगे तो पता चलेगो के एक वैष्णवकु कोई कार्यवश बहारगाम जानो पड्यो. इतनेमें बैंगन दशमी आयी. वो जा कामकेलिये गयो वाके कामसु हाजीपुरको सुलतान खुश भयो. सुलतानने वैष्णवसु कछु मांगवेकी कही. वैष्णवकु अपने घर पहोंचके अपने ठाकुरजीकु बैंगन दशमीके दिन बैंगन भोग धरने हते. तो वाने हाजीपुरके सुलतानसु एक घोडा मांग्यो. सुलतानने वासु

पूछी के मांग-मांग के बस एक घोडा ही क्यों मांग्यो? वैष्णवने कही के अभी तो मोकु घोडा की ही बडी जरूरत है. वो ही हमारेलिये बडी बात है. बात इतनीसी हती के वैष्णवकु अपने ठाकुरजीकु बैंगन भोग धरने हते. घोडा मिलते ही वैष्णव अपने घर काशी गयो. जब वो लौटके आयो तब सुलतानने पूछी के ऐसी क्या बात हती? वैष्णवने ये नहीं कही के वो ठाकुरजीकु बैंगन भोग धरवे बिहारसू काशी गयो हतो. वाने कही के घर-गृहस्थी है, गृहस्थीको काम आ गयो हतो वाके कारण घोडाकी जरूरत पड गयी. तो देखो, वैष्णवने अपने ठाकुरजी सम्बन्धी उत्सवकु अपनी गृहस्थीको उत्सव मान्यो. वाके ठाकुरजी भी निश्चित ही वाके घरकु अपनो ही घर मानते होंगे. वाके उत्सवकु वाके ठाकुरजीने अपनो उत्सव ही मान्यो होयेगो.

तो बात समझो के उत्सवके आनेके अनेक द्वार हैं. उन अनेक द्वारन्मेंसु पाछो एक-एक उत्सव ही आवे है ऐसी बात नहीं है, एक-एक द्वारमेंसु अनेक-अनेक उत्सव आवे हैं. ये तो अपन यदि अपने यहांके उत्सवन्की सूचि देखें तो पता चल सके.

मेरे पास एक बखत नोर्वेकी एक महिला पुष्टिमार्ग पढवे आयी. पांच-छे महीना पढनेके बाद वाने अपने यहांके उत्सवके विषयमें जिज्ञासा करी. मैने टिप्पणी लेके वाकु उत्सव बताने शुरु किये. एक के बाद दूसरो उत्सव आतो गयो. एक भी महीना ऐसो नहीं हतो के जामें दो-चार उत्सव नहीं आये होवें. वो ये सुनके चकरा गयी. वाने मोसु पूछी के आपके यहां कोई महीना बिना उत्सवको है के नहीं? मैने कही ऐसो तो कोई महीना नहीं है. ये हमारो सौभाग्य है. तुम बरसमें एक बखत क्रिस्मस् मनाओ हो. हम हर महिना उत्सव मनावे हैं. हमारो ठाकुर उत्सवप्रिय है, हम उत्सव प्रिय हैं. हमारो आचार्य ''आनन्दः परमानन्दः'' है.

तो देखो के अपने यहां अपने प्रभुके भिन्न-भिन्न पहलून्के विचारसु, अपने भिन्न-भिन्न पहलून्के विचारसु और अपने और प्रभुके सम्बन्धके

पहलून्के विचारसु अनेक तरहके उत्सव मनाये जाये हैं. उत्सवन्के आनेके ऐसे अनेकानेक द्वार हैं. उन द्वारन्सु पाछे अनेकानेक उत्सव आते रहे हैं.

उत्सवके प्रकार :

उत्सवन्को सामान्य वर्गीकरण करनो होवे तो ऐसे कियो जा सके है :

१. शास्त्रवर्णित उत्सव :

ये उत्सव अपने सेव्य प्रभुके 'भगवान्' पहलूसु जुडे भये उत्सव हैं.

२. व्रजलीलाके उत्सव :

व्रजाधिप अपनो भजनीय है करके प्रभुने व्रजमें जो उत्सव प्रकट किये वा प्रकारके ये उत्सव हैं. उन उत्सवनकु भी अपन मनावे हैं.

३. भक्तिमार्गीय उत्सव :

श्रीमहाप्रभुजीकु चिन्ता हती के सदोष जीवको सम्बन्ध निर्दोष प्रभुके संग कैसे करानो. कृष्णने श्रीमहाप्रभुजीके संग एक एग्रिमेंट् कियो है के तुम जाकु ब्रह्मसम्बन्ध दे के मेरी सेवामें प्रवृत्त करोगे वाके दोष निवृत्त होवें के नहीं होवें पर वाकेद्वारा करी जाती सेवामें मैं वाके दोषकु सेवाप्रतिबन्धकतया नहीं मानूंगो. ये प्रभुको श्रीमहाप्रभुजीके संग कियो गयो एग्रिमेंट् है. या एग्रिमेंट्के तहत भी अपने यहां सेवामें उत्सव आवे हैं. पवित्रा ग्यारस वा ही तरहको उत्सव है. मैने आपकु कल भी बतायो हतो के अपने पुष्टिमार्गमें तीन ही भेंट ठाकुरजीकु होती हती :

१. पवित्राकी
२. दिवालीकी और
३. जन्माष्टमीकी.

चोथी भेटको प्रकार अपने यहां हतो ही नहीं. इन तीन दिनके अलावा आज-कल जो ठाकुरजीकु भेट करी-करवायी जाय है वो सेवाकु धंधा

बनानेवालेन्को षडयन्त्र मात्र है.

वो तीन भेट भी मर्यादामार्गीय पूजामें करी जाती भेट जैसी नहीं है. उन भेटनके पीछे अपनी अलग ही भावना है. पवित्राकी भेट ठाकुरजीकु पुष्टिमार्गके आद्य गुरु मानके करी जाय है. क्योंके सबसु पहली ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा श्रीमहाप्रभुजीकु ठाकुरजीने दी हती ''**साक्षात् भगवता प्रोक्तम्**''. यासु पवित्राके दिन अपन ठाकुरजीकु देव तरीके नहीं परन्तु गुरु तरीके भेट करे हैं. या दिन ठाकुरजीने श्रीमहाप्रभुजीकी चिन्ताको निवारण कियो. सदोष जीवकी भी सेवाकु मैं स्वीकारुंगो ऐसो वचन ठाकुरजीने श्रीमहाप्रभुजीकु दियो. यासु ये बहोत बडो उत्सव है. ये बहोत दुर्लभ अवसर है. अपन पवित्रेके दिन ठाकुरजीकु गुरु और अपनेकु शिष्य भावसु देखे हैं. पर फिरसु ध्यान रखियो, याको फिक्सेशन् नहीं है. नहीं तो तो पंचायत हो जायेगी. ये बस एक दिनकी बात है. दूसरे दिन फिर अपनो ठाकुरजी ''**सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः**'' है.

४. सम्प्रदायके उत्सव :

कुछ उत्सव लीला, शास्त्र और भक्तिमार्ग सु अलग साम्प्रदायिक भी मनाये जाये हैं.

५. लोकके उत्सव :

अपन ठाकुरजीकी सेवा लोकमें रहके करे हैं करके ठाकुरजी अपने लोकके उत्सव भी मनावे हैं.

६. पारिवारिक उत्सव :

वार्तामें आवे है के श्रीगुसांईजी अपनो जन्मदिन सेवामें नहीं मनाते हते. श्रीनाथजीने वा दिन आज्ञा करी के मोकु श्रीगुसांईजीको जन्मदिन मनानो है. तब रामदासजी और सबनने दौडा-दौड करके सामग्री सिद्ध करी और फिर जन्मदिन मन्यो. श्रीगुसांईजीकु भी आश्चर्य भयो सब दौड-भाग देखके. आपने

पूछी तब सबनने कह्यो के आज श्रीजीने आपको जन्मदिन मनायो है.

वैष्णवनकु बहेका दियो है के वैष्णवकु तो प्रणालिकामें लिख्यो होवे बस उतनो ही करनो, वासु अधिक नहीं करनो. याके कारण ही वैष्णव अपने पारिवारिक उत्सव अपने ठाकुरजीके साथ मनावे नहीं हैं, हवेलीन्में भटकते फिरे हैं. पर सच्ची बात तो ये है के हर वैष्णवकु अपने पारिवारिक उत्सव अपने घरके ठाकुरजीके संग मनाने ही चहिये. यदि वैष्णव अपनो जन्मदिन अपने घरके ठाकुरजीके संग नहीं मनावे तो वाको जन्मदिन व्यर्थ गयो.

गोस्वामी परिवारमें तो ऐसी ही रीत है के घरके कोई भी बालकको जन्मदिन आवे तो वा दिन ठाकुरजीकु केशरी वस्त्र धराये जायें, विशेष सामग्री धरी जाये. और जन्मदिन यदि कोई विशेष उत्सवके दिन नहीं आतो होवे तो स्पष्ट विधान है के जाको जन्मदिन होवे वो वा दिन जैसे शृंगार ठाकुरजीकु धराना चाहे वैसे धरावे. मेरे ठाकुरजीकु मेरे जन्मदिनके दिन शृंगार पोथी पढके नहीं धराउं हूं. जो शृंगार धरानेमें मोकु मजा आवे वो शृंगार में धराउं. कोईकु टिपार धरानेमें मजा आवे, कोईकु टोपी धरानेमें मजा आवे, कोईकु मुकुट या कुल्हे में मजा आवे... हमारे जीवनलालजी तातजी कुल्हेपे मुकुट धराते. सामान्यतया कुल्हेपे मुकुट धरायो नहीं जाये है. पर तातजीकु ऐसी इच्छा होती के मेरे जन्मदिनपे ठाकुरजीकु ऐसे शृंगार करने के जो कभी नहीं धरे होवें. तो वो वैसे शृंगार धरते. दोहरा मंडानको उत्सव करते. आप लोग भी अपने परिवारके आपके घरके ठाकुरजीके संग मना सको हो. आपकु खोटो भरमा दियो है के प्रणालिकामें लिख्यो होवे वासु अधिक कुछ भी नहीं करनो. पर एक बात समझो ''**दमला यह मार्ग तेरेलिये प्रकट कियो है**''. ये आज्ञा दामोदरदासकु भयी है. तो जो मार्ग वैष्णवकेलिये प्रकट कियो है वा अधिकारसु वैष्णवकु कैसे वंचित रख्यो जा सके है के वैष्णव अपने जन्मदिनकु अपने ठाकुरजीकु अपने मनके शृंगार धरा नहीं सके? मनको उत्सव अपने ठाकुरजीके साथ न मना सके तो बात समझो के अपनो जन्मदिन भी ठाकुरजीकेलिये उत्सव है.

हमारे यहां तो, यालिये, हर घरमें हमारे जितने भी पूर्वज हैं उन सबनको उत्सव हमारे ठाकुरजी मनावे हैं. क्योंके ठाकुरजी हमारे घरमें बिराज रहे हैं. कई बखत तो ऐसो होवे है, ये मैं अपनी बात बता रह्यो हूं, के हमकु पता नहीं होवे आज कौनसे तातजीको उत्सव है, पर जब हम सेवाविधिकी पुस्तक देखें तब पता चले है के आज फलाने तातजीको उत्सव है. तो देखो, ठाकुरजी हमारे घरकेनको उत्सव मनावे हैं करके हमकु पता चले है. मतलब, ठाकुरजी हमकु याद दिवावे हैं के आज तेरे दादाको उत्सव है. हम तो भूल जावे हैं, इतने सारे पूर्वज भये, कौन-कौनके जन्मदिन याद रख सके आदमी और वामें भी मेरे जैसो भुलक्कड आदमी के जाकु खुदको भी जन्मदिन याद नहीं रहेतो होवे वाकु दूसरेको जन्मदिन कैसे याद रहे सके पर हमारे ठाकुरजी सब याद रखे हैं. ठाकुरजी घरके हैं यासु घरकेनको उत्सव मनावे हैं. वो जैसे हमारे यहां मनावे हैं, ये कोई हमारी मोनोपोलि नहीं है ''दमला यह मारग तेरेलिये प्रकट कियो है'' यासु वैष्णवकु भी अपने घरके जन्मदिन अपने ठाकुरजीके संग मनाने ही चहिये. वार्ता अपनकु समझावे है के जब तक पुष्टिमार्ग है तब तक दामोदरदासजीको प्राकट्य मार्गमें होतो ही रहेगो. वैष्णवकु क्योंके बरगला दियो गयो के वो अपने घरके उत्सव अपने ठाकुरजीके संग नहीं मना सके करके वैष्णव ऐसे समझवे लगे के वैष्णवके घरमें बिराजते ठाकुरजी कम वोल्टेज्के होंगे, और बालक क्योंके उनके घरके जन्मदिन उनके ठाकुरजीके संग मनावे हैं यासु उनके ठाकुरजी १०० वोल्टेज् या २०० वोल्टेज् के होंगे. लिहाजा वैष्णवन्को भाव उनके घरके ठाकुरजीमेंसु खंडित हो जावे है. वैष्णवकु या तरहसु बरगलानेमें भी भीतरी दुर्भाव पाछो वो ही है के वैष्णवो भाव जब वाके घरमें बिराजते ठाकुरजीमेंसु खंडित हो जायेगो तो वाकु वहां असंतोष रहेगो, असंतोष रहेगो तो वो तथाकथित ज्यादा वोल्टेज् वाले ठाकुरजीके दर्शन-मनोरथकेलिये हवेलीन्के चक्कर काटतो रहेगो. वैष्णव ऐसे चक्कर काटतो रहेगो तो हवेलीको धंधा चलतो रहेगो. जा पत्नीकु अपनो पती पसंद है, जा पतिकु अपनी पत्नी पसंद है वो दूसरेकी ओर ताकेगो क्यों? पर यदि कोई दुष्ट व्यक्ति सुखी दम्पत्तिके बीच कलह करा देवे तो कोई कोईकु उडाके ले जावे, कोई शूर्पणखा बन जावे तो कोई रावण बन जावे. पुष्टिमार्गमें

ये सब उत्सवको नहीं परमदुःखको चक्कर है.

हवेलीन्में वैष्णवन्की भारी भीडकु लोग बडो उत्सव समझे हैं वो सचमें देखो तो भारी दुःखको विषय है. वैष्णव अपने घरके ठाकुरजीके संग उत्सव नही मनाके यहां-वहां भटकतो फिरे है वासु बडो दुःख क्या हो सके है? ये उत्सव नहीं है दुःखसव है, कष्टसव है. सच्चो उत्सव तो तब है के जब तुमकु अपने ठाकुरजीकी सेवामें तल्लीनताके कारण हमारे जन्मदिन-उत्सव भी याद न रहें.

तो फिरसु समझो के उत्सव के अनेक प्रकार हैं. कुछ उत्सव परिवारके भी हैं के जो घरके ठाकुरजी मनावे हैं. जैसे, अपने यहां ठाकुरजीकु शहेराके शृंगार बरसमें कई बार धराये जाये हैं. शहेरा ब्याहको शृंगार है. अपनकु विचार होवे के ब्याहको दिन तो बरसमें एक बार आतो होवे है. ठाकुरजीको ब्याह प्रबोधिनीके दिन अपन मनावे हैं. फिर भी ठाकुरजी बरसमें अनेक बार शहेरा धरे हैं. याको कारण ये है के हमारे यहां जब भी कोई ब्याहको प्रसंग आवे तब ठाकुरजीभी हमारो ब्याह मनावे हैं. वा दिन ठाकुरजीकु शहेराके शृंगार धराये जाये हैं. उन दिननकु याद करके ठाकुरजी बरसमें कई बखत शहेराके शृंगार धरे हैं के आज फलाने बालकको ब्याह भयो हतो तो आज मोकु तुम शहेरा धराओ.

गोकुल-कामवनके घरमें ऐसो नियम है के घरको कोई बालक अपने ठाकुरजीको कोई मनोरथ करे तो बरसके बरस ठाकुरजी वा मनोरथको उत्सव मनावे हैं. जैसे आज मैने ठाकुरजीको फुलमंडलीको मनोरथ कियो. अब आजके दिन बरसके बरस ठाकुरजी मेरे फूलमंडलीके मनोरथको उत्सव मनायेंगे के आजके दिन बालकने फूलमंडली करी हती. कितनो दयालु है अपनो ठाकुर अपन कुछ मनोरथ करें वाको उत्सव अपनो ठाकुर मनावे है

ठाकुरजीकी भक्तपरवशताकी दृष्टिसु सोचो तो ये नियम बहोत मीठो

है के ठाकुरजी मनोरथको भी उत्सव मनावे हैं. पर याकु ही एक ‘ नियम’की दृष्टिसु सोचें तो यामें थोडी कडवाहट भी है. हर चीजमें सुख-दुःख दोनों होवें ही है. या नियमके डरसु वहां बालक मनोरथ करवेमें भी डरे हैं. क्योंके फिर तो हर बरस वा दिन ठाकुरजी उत्सव मनायेंगे याको परिणाम ये आयो के वहां एक ऐसो भी नियम बन गयो के ज्यादाके मनोरथ करने ही नहीं के जासु हर साल वाको उत्सव मनानो पडे. ये या निमको कडवोपन है पर याको मीठोपन भी अपनकु भूलनो नहीं चहिये.

अपन उत्सवप्रिय हैं याको एक बहोत सुंदर प्रसंग श्रीगोकुलनाथजीके प्रसंगमें वर्णित भयो है. एक दिन श्रीगोकुलनाथजीके वहां चाचा हरिवंशजी आये. आके उनने श्रीगोकुलनाथजीके विषयमें पूछी तो कोईने कही के आप तो सेवामें है. चाचाजीके मुखसु यों निकल गयो के ‘ ‘ सेवा तो पिता-पुत्र कर गये, ये तो लकीर पीट रहे हैं’’. श्रीगोकुलनाथजी कानमें ये उद्‌गार पडे. चाचाजी बडेन्‌के सेवक हते, आदरणीय हते. उनके वचन आपकु बुरे नहीं लगे. उनने तो चाचाजीके वचनकु अपनेलिये सर्टिफिकेट्‌ जैसे माने. श्रीगोकुलनाथजीने ये सोच्यो के मैं जो सेवा कर रह्यो हूं वो लकीरकु पीटने जैसी चाचाजीने मानी ये मेरो कितनो बडो सौभाग्य है. यासु वा दिन श्रीगोकुलनाथजीने लकीर पीटको उत्सव मनायो. तो देखो के अपने स्वभावमें उत्सव बुन्यो भयो है. अपन उत्सवको प्रसंग खोजते रहे हैं. क्योंके अपन उत्सवप्रिय हैं, अपने ठाकुरजी उत्सवप्रिय हैं.

कल अपनने उत्सवके कई प्रकार विचारे हते. कई उत्सव अपन शास्त्रवर्णित मनावे हैं. ये उत्सव अपने सेव्य प्रभुके ‘ भगवान्’ पहलूसु जुडे भये उत्सव हैं. कितनेक उत्सव व्रजलीलाके उत्सव हैं. अपनो भजनीय व्रजाधिप है करके प्रभुने व्रजमें जो उत्सव प्रकट किये वा प्रकारके ये उत्सव हैं. कुछ उत्सव भक्तिमार्गीय उत्सव हैं. कुछ सम्प्रदायके उत्सव हैं. अपन ठाकुरजीकी सेवा

लोकमें रहके करे हैं करके ठाकुरजी अपने लोकके उत्सव भी मनावे हैं. कुछ पारिवारिक उत्सव भी अपन ठाकुरजीके संग मनावे हैं.

अपन लोकमें जन्म, सगाई, विवाह जैसे सम्बन्ध स्थापित होयवे पर उत्सव मनावे हैं. वा ही तरहसु कितनेक उत्सव अपने और प्रभुके स्वरूप और सम्बन्ध के विचारसु मनाये जाये हैं. अपनेलिये प्रभु ब्रह्म हैं और अपन उनके नाम-रूपात्मक अंश हैं. या सम्बन्धसु अपन सेवामें ब्रह्मसम्बन्ध पवित्रा एकादशी को उत्सव मनावे हैं. परन्तु श्रीकृष्ण जन्माष्टमीको उत्सव अपने सेव्यके ब्रह्मवाले पहलूकु सोचके नहीं मनायो जाये है. क्योंके वो उत्सव तो प्रभु व्रजभक्तनके बीचमें निःसाधनफलात्माके रूपमें प्रकटे हैं वाको उत्सव है. अपन वा निःसाधनफलात्मा व्रजाधिपकु श्रीमहाप्रभुजीकी ‘ ‘ **सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः**’’ या आज्ञानुसार अपनो सेव्य मान रहे हैं वा सम्बन्धसु अपन जन्माष्टमी मनावे हैं.

निःसाधनता नहीं निःसाधनभाव :

‘ निःसाधनफलात्मा’के विषयमें थोडो विचार अपन करेंगे. प्रभु निःसाधनफलात्मा हैं यालिये अपनकु निःसाधन होनो चहिये ऐसो पुष्टिमार्गको सिद्धान्त नहीं है. अपने यहां निःसाधन होनेको सिद्धान्त नहीं है; निःसाधन भावको सिद्धान्त है. या दोके बीच थोडो अन्तर है. निःसाधन होनो मतलब साधनको नहीं होनो; न पुण्यात्मा न पापी. ऐसो जीव के न तो जाके कछु जमा है और न जाके कछु उधार है. नहावे, खावे-पीवे, सोवे बस. ‘ ‘ **आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर् नराणाम्**’’ या तरहको जीवन जीनेवालो मनुष्य निःसाधन है. याके पास अपने आत्मोद्धारको कोई साधन नहीं है.

कई लोगनकु ऐसी भ्रान्ति है के ऐसी निःसाधनता पुष्टिमार्गको सिद्धान्त है. ये गलतफहेमी है. ये बात आप अपने मनमेंसु निकाल दो. अपनो सिद्धान्त निःसाधनताको नहीं है निःसाधनताके भावको है.

निःसाधनताके भावको मतलब ये है के जो भी कछु साधन अपनसु बन आवे वाकु करने ही. व्यर्थमें क्यों प्रभुकु परिश्रम देनो पर जो भी साधन अपनसु बने वामें उद्धारकी भावना नहीं रखनी, आश्रय नहीं रखनो. क्यों? क्योंके यदि अपनने कोई भी साधनमें अपने उद्धारकी भावना करी सो ही अपनो शरणागतिको भाव खंडित हो गयो.

अष्टाक्षरमन्त्रकी दीक्षामें तीन बखत मन्त्र बोल्यो जाय है वाको कारण ही ये है के न मेरे पास कोई आधिदैविक साधन है, न मेरे पास कोई आध्यात्मिक साधन है और न मेरे पास कोई ऐसो आधिभौतिक साधन है के जासु मैं अपनी भलाई-उद्धार कर सकुं. ये अपनी शरणागतिकी भावना है. यासु जब अपन कोई साधन करें वा बखत वा साधनसु मेरो उद्धार होयगो ऐसी यदि अपनी भावना है तो वो अपनी शरणागतिकी भावनाको खंडन है. यासु पुष्टिमार्ग अपनकु समझावे है के प्रभुने शास्त्रके माध्यमसु अपनकु साधन करवेकी आज्ञा दी है यासु भगवदाज्ञाके पालन मात्रकी भावना रखके कोई भी शास्त्रीय साधन करने. प्रभुकी आज्ञा है यासु जब तक मेरेमें सामर्थ्य है तब तक साधन मोकु करने हैं. सामर्थ्य होते भये भी मैं प्रभुकी आज्ञाको उल्लंघन करुं तो मैं सेवक कैसो अपने प्रभु इतने निष्ठुर नहीं हैं के साधन करवेकी सामर्थ्य नहीं होवे तब भी अपनेसु साधन करवेको आग्रह रखें. प्रभुमें निष्ठुरताको भावन नहीं रखनेको है. साथ ही साथ अपनेमें साधनको अभिमान भी नहीं रखनो है. संक्षेपमें, प्रभुकी आज्ञा है यासु जो बने, जितनो बने, जैसे बने उतनो साधन करनो ये मेरो करर्तव्य है या भावनासु साधन करने हैं. अपनो भाव साधनसु छटकनेको नहीं होनो चहिये. साथ ही साथ विश्वास साधनके बजाये प्रभुपे रखनेको है. ये शरणागतिको भाव है.

प्रभुः सर्वसमर्थो हि :

अब एक बात समझो के प्रभु निःसाधनफलात्मा हैं और मानो के अपन कुछ भी साधन कर नहीं पा रहे हैं तो प्रभुमें निःसाधनको उद्धार करवेकी सामर्थ्य नहीं है ऐसी बात नहीं है. प्रभु निःसाधन जीवके उद्धारक हैं इतनो ही नहीं प्रभु तो

दुष्टसाधन जीवके भी उद्धारक हैं. दुष्टसाधन मतलब शास्त्रनिषिद्ध कर्म.

''अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी,
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्ये कं वा दयालुं शरणं व्रजेम''

जो पूतना ठाकुरजीकु जहर पिलाने आयी वा पूतनाकु भी ठाकुरजीने मोक्ष दियो. तो विचारो के ठाकुरजीकु मारवे आयी हती वा पूतना और शिशुपाल जैसेनकु भी जो मोक्ष दे सके है वो निःसाधनजीवको उद्धार क्यों नहीं कर सके है अवश्य कर सके है. पर ध्यानमें रखवेकी बात ये है के प्रभु निःसाधन-दुष्टसाधन जीवनको उद्धार कर सके हैं करके ''सैंया भये कुतवाल, अब डर काहेका'' ये वृत्ति बदमाशीकी है. ये सेवककी वृत्ति नहीं है, पाखंडीकी वृत्ति है. अपनकु ऐसो पाखंड नहीं करनो चहिये.

भगवद्वचनको अनर्थ :

गीतामें भगवानने कह्यो है के **''अपि चेत् सुदुराचरी भजते माम् अनन्यभाक्, साधुरेव स मन्तव्यः''**. सुदुराचारी भी यदि मेरी अनन्य भावसु भक्ति करतो होवे तो वाकु साधु जाननो. भगवान् तो दयाभावसु वाके भक्तिपक्षकी प्रशंसा कर रहे हैं. भगवान्को आशय दुराचारकी प्रशंसाको नहीं है. दुराचारी होते भये भी कमसु कम मेरी भक्ति तो कर रह्यो है, ऐसो आशय भगवानको है. पर कोई भगवान्के या वचन को अर्थ ऐसो करे के भगवानने स्वमुखसु दुराचार करवेकी छूट दी है तो वो अनर्थ है, पाखंड है.

तो समझो के अपने यहां निःसाधनताको सिद्धान्त नहीं है, निःसाधनताके भावको सिद्धान्त है. जो कछु शास्त्रीय साधन अपनसु बन सके वाकु सचाईसु करने चहिये. निःसाधन भाव यालिये जरूरी है के जासु अपनो साधनाचरण कभी भी अपने शरणागतिके भावसु विरुद्ध न जाये.

जन्माष्टमी :

जो प्रभु निःसाधनफलात्माके रूपमें प्रकटे उनके सामने अपन अपनेमें

निःसाधनताकी भावना कर रहे हैं. ये जो अपनो प्रभुके साथ सम्बन्ध है वा सम्बन्धको उत्सव जन्माष्टमी है. या बातकु मत भूलियो. व्रजभक्त निःसाधन हते

' ' अह्न्यापृतं निशि शयानम् अतिश्रमेण,

लोकं विकुण्ठगतिम् उपनेष्यति गोकुलं स्वम्''.

ऐसे निःसाधन व्रजभक्तनकेलिये जो प्रकटे वा व्रजाधिपकी सेवा अपन कर रहे हैं. यासु व्रजाधिपकी सेवा करवेकेलिये अपनेमें निःसाधनताको भाव होनो आवश्यक है.

या विषयके सम्बन्धमें मैं एक दृष्टान्त अक्सर देनो पसंद करुं हूं. मेरी छोटी बेटीके बचपनकी बात है. चिंटु चार-पांच वर्षकी होयेगी. एक दिन पडौसीकी बेटीके संग वो खेल रही हती. खेलमें चिंटु मां बनी और पडौसीकी बच्ची वाकी बेटी बनी. पडौसीकी बेटी चिंटुके संग यालिये खेलवे आती हती क्योंके वाकु चिंटुके खिलौना पसंद आते हते. चिंटु वाके संग यालिये खेलती हती के पडौसमें वाके संग खेलनेवालो दूसरो कोई हतो नहीं. पर चिंटुकु ये पसंद नहीं हतो के पडौसीकी बच्ची वाके खिलौनासु खेले. दोनों अपने-अपने बालसुलभ स्वार्थको तालमेल बैठा रहे हते. मां बनी चिंटुने वासु कही के ' ' चलो पढाई करवे बैठो''. पढाई करवेको आदेश वाने यालिये दियो के जासु पडौसीकी बच्ची वाके खिलौनासु खेल नहीं सके. थोडी देर तो वो बच्ची खेल समझके पढवे बैठ गई. पर पढाई करवेमें चिंटुके खिलौनासु तो खेलवे मिले नहीं. थोडी देरमें वो चिंटुसु बोली ' ' मंमी पढाई खतम हो गई. अब मैं खिलौनासु खेलूंगी''. चिंटु बोली ' ' नहीं, अभी पढाई खतम नही भई है, और पढौ''. थोडी देर तक दोनोंकी रस्साकसी चलती रही. अंतमें मंमीने बेटीसु कह दियो के ' ' तो फिर मैं तेरे संग नहीं बोलूंगी''. ये सुनके पडौसीकी बच्चीने बडी ऊंची बात कही के मां कभी ऐसी बात नहीं कहे है. खेलमें तु मां बनी है तो मां कैसे बोले वो तो समझनो चहिये न. ऐसे ही ठाकुरजीकी सेवा करते बखत यदि अपन साधनकी चर्चा करें के आज मैने ये कर दियो, कल मैने वो कियो हतो, कल मैं वो करूंगो...तो ठाकुरजीके मनमें भी ऐसो आ जावे के व्रजमें तो कोई

ऐसो नहीं बोलतो हतो व्रजमें तो सब मेरो ध्यान रखते हते हमारे पडौसीकी बच्चीकी भी दुविधा ये ही हती के जो खेल चल रह्यो है वामें ' ' जा मैं तेरे संग नहीं बोलूंगी'' ऐसे संवादको कोई तालमेल नहीं है. ऐसे ही ठाकुरजीकु भी ऐसी झुंझलाहट अपने साधननकी रामायण सुनके नहीं होनी चहिये के व्रजभक्त कभी ऐसे तो नहीं बोले हते भले तुम साधन करते रहो पर वाको रेफरन्स् मेरी सेवामें मत लाओ. वो सब तुम तुम्हारो अपने स्तरपे निवेडो. मेरे संग तुम वोही लहेजामें बोलो के जा लहेजामें व्रजभक्त बोलते हते. यासु अपनो कृष्णके साथ जो आपसी सम्बन्ध है वामें अपन निःसाधनभावके भावुक हैं और वो निःसाधनफलात्मा है. याको उत्सव अपन कृष्णजन्माष्टमीके उत्सवके रूपमें मनावें हैं.

यामें भी थोडी सूक्ष्मता है वाकु समझो. जन्माष्टमीके उत्सवके दो पहलू हैं: पहलो कृष्णजयन्तीको और दूसरो कृष्णजन्मोत्सवको. कृष्णजयन्तीको पहलू अपन अष्टमीकु मनावे हैं. क्योंके ठाकुरजी अष्टमीकु जन्मे यासु अपन अष्टमीके सवेरेमें जयन्ती मनावें हैं. पर वा दिन पलना नहीं होवे हैं (जा ठिकाने ठाकुरजी पलनामें नित्य नहीं झूले हैं वहांकी रीतिकु रखके ये बात कही गयी है), क्योंके जन्म तो भयो है रात्रिमें. यासु अपन रात्रिमें जयन्ती नहीं मनावें हैं, रातकु अपन निःसाधनफलात्माको जन्मोत्सव मनावें हैं. अपने संग ये लाचारी है के अपनो जन्मदिन होवे तब जन्मोत्सव नहीं होवे है और जब जन्मोत्सव होवे तब जन्मदिन नहीं होवे है. जा दिन अपन जन्मे वो दिन तो आवते वर्ष आयेगो. जब वो दिन आयो वा दिन तो अपन एक वर्ष पहले ही जन्म चुके होवे हैं करके वा दिन जन्मोत्सव नहीं हो पावे है. और जा दिन अपनो जन्मोत्सव मनायो जातो होवे है वा दिन अपनो जन्मदिन नहीं होवे है. पर ठाकुरजीकी लीलामें अपन दोनोंकु एक साथ मना रहे हैं. कीर्तन पढोगे तो ये रहस्य समझमें आयेगो. *' ' लालकी बरसगांठ बहोरि आयी''* ऐसे पद भी अपन गावें हैं और *' ' ब्रज भयो महरके पूत जब यह बात सुनी, सुनि आनन्दे सब लोग गोकुल गनित गुनी''* ये पद भी गावें हैं. तो देखो अपन जन्मोत्सव भी मनावे हैं और ठाकुरजीको जन्मदिन भी मनावें हैं. ये प्रकार केवल कृष्णजन्ममें ही नहीं है

नृसिंह, वामन और राम जन्ममें भी ऐसो ही प्रकार है. उन अवतारनकी अपन जयन्ती भी मनावें हैं और जन्मोत्सव भी मनावें हैं.

विष्णुपञ्चक :

इन उत्सवनमें जयन्ती मनानेको विधान शास्त्रीय है. जयन्तीकी बात व्रजकी नहीं है. शास्त्रने विधान कियो है के वैष्णवनकु विष्णुपञ्चक मनाने चहिये, व्रत करनो चहिये यालिये, वैष्णव होनेके नाते, चार जयन्ती मनावें हैं. 'विष्णुपञ्चक' माने चार जयन्ती और वर्षकी चौबीस एकादशी. ये सब वैष्णवशास्त्रकी मर्यादासु अपनकु कर्तव्यत्वेन प्राप्त होवे हैं. अपन भगवान् विष्णुके भक्त हैं यासु वैष्णव परम्परासु संबंधी जितने भी विधान हैं जैसे तिलक लगानो, तुलसीकाष्ठकी कंठी पहननी इत्यादि उनको अनुसरण करे हैं. या दृष्टिसु सोचो तो वैष्णवशास्त्राके अनुसार मनाये जाते उत्सव-नियम निःसाधनताके नहीं हैं, साधन करके मनानेके उत्सव हैं. यासु उन उत्सवनमें अपनकु कछु शास्त्रीय साधन करने पडेंगे. साधन मतलब जयन्तीके दिन अपनकु व्रत करनो पडेगो, तिलक लगानो पडेगो...

तिलक-छापाको लोप :

आजकल तो अपने यहां पद्धति नहीं रह गयी है. बाकि प्राचीन कालमें छापा लगानेकी भी पद्धती हती ''देवो भूत्वा देवं यजते'' न्यायसु. वामें विष्णुके शंख-चक्र-गदा-पद्म ये चार आयुध और दीक्षामन्त्र की छाप गोपीचन्दनसु कपाल और हृदयपे धारण करनेको विधान है. आजकल कुछ गोस्वामी बालकनने फिरसु छापा-मुद्रा लगानेकी प्राणाली शुरु की है, खास करके जनोई-विवाह प्रस्ताव और सभा-यात्रा आदि लोगनके सामने जानेके अवसरपे. बाकी रामानुज और माध्व सम्प्रदाय में आज भी तिलक-छापा-मुद्रा धारण करवेकी प्रणाली बहोत दृढतासु चालू है. अपने यहां जैसे दीक्षामें कंठी दी जाये है वैसे इन सम्प्रदायमें दीक्षाके रूपमें छापा लगानेको सिद्धान्त है. अपने यहां इन वैष्णवाचारके पालनमें शिथिलता आ गयी है. पर वो वैष्णवाचारको पालन करनो अपनो अवश्य कर्तव्य है.

पवित्रा ग्यारसकी बात मैने आपकु बताई हती के वो उत्सव वैष्णवशास्त्रके अनुसार भगवदुत्सव है. वो कोई ब्रह्मोत्सव नहीं है.

आजकल अंग्रेजनके प्रभावमें आके भारत सरकारने वर्षान्तकेलिये मार्च एंडिंग् और ३१ दिसम्बर को सिद्धान्त चला दियो है. बाकी अपनी प्राचीन भारतीय परम्पराके अनुसार ब्राह्मणको वर्ष रक्षा पूनमके दिन पूरो होतो हतो. क्षत्रियको वर्ष दशहराके दिन, वैश्यको वर्ष दीपावलीपे और शूद्रको वर्ष होलीपे पूरो होतो हतो. या तरहसु वर्षको चक्र पहले अपने यहां हतो. यासु रक्षा पूनमके बीतते ब्राह्मणको नयो वर्ष शुरु होतो, होली बीतते शूद्र अपनो नयो वर्ष शुरु करते और दिवाली बीतते बनियाको नयो वर्ष शुरु होतो. यासु ही दिवालीके दिन बनियाएं लक्ष्मीपूजन, बही-खाताको पूजन, नये चोपडा लिखनो आदि करते. आज भी बहोत जगह ये परम्परा चालू है. एक हास्यास्पद परम्परा अपने पुष्टिमार्गमें या बारेमें प्रचलित हो गयी है. जबसु बनियाएं अपने गुरुघरके हिसाब-किताबकी व्यवस्थामें जुडे तबसु गोस्वामी बालकनके घरमें भी लक्ष्मीपूजन-चोपडापूजन चालू हो गये. ये तो स्पष्ट अन्याश्रय ही है. बनिया वो सब करें वो तो समझमें भी आ सके पर ब्राह्मणको चोपडापूजनसु क्यां लेनो-देनो पर ब्राह्मण होते भये भी गोस्वामी बालक अपनी हवेलियें दुकानकी तरह चलाते हो गये हैं करके उनकु बनियान्के कर्म अपने खुदके कर्म लगने लगे हैं. दूसरी ओर जिन क्षेत्रमें गोस्वामीनकु राजान्को सन्मान मिल्यो तबसु उनको रहन-सहन भी राजा-महाराजान्के जैसो होतो गयो. वा प्रभावसु उनके घरन्में भी अश्वारोहण, शस्त्रपूजन जैसे क्षत्रियन्के कर्म होने चालू हो गये. पर सच बात ये है के हम वर्णसु ब्राह्मण हैं यासु ब्राह्मणको कर्म ही हमारो कर्तव्य है. अन्य कर्म परधर्म होनेसु त्याज्य हैं. यासु वेदको जब एक पारायण श्रावणी पूर्णिमाके दिन पूरो होवे तब वाके उत्सवके रूपमें ब्राह्मणकु ब्रह्मयज्ञ करनो चहिये. वामें वाके पूर्वज सब ऋषिनको पूजन करके वाकु वाको नयो वर्ष मनानो चहिये ऐसो शास्त्रीय विधान है.

अब यामें देखनेकी बात ये है के होली-दिवाली-श्रावणी-दशहरा ये

सब ब्राह्मण-क्षत्रियादिके उत्सव हैं. पर अपनने इन सबमेंसु एक भी उत्सव नहीं छोड्यो है के जाकु अपन अपने ठाकुरजीके संग सेवामें नहीं मनावें. अपनकु आश्चर्य होवे के ये सब उत्सव ठाकुरजीकु कहांसु प्राप्त भये? ध्यानसु समझो के अपनो ठाकुर यदि ब्राह्मणके घरमें बिराज रह्यो है तो वाकु ब्राह्मणके उत्सव प्राप्त होयेंगे. ब्राह्मणके घरमें भले बिराजते होवें पर वसुदेवजी तो अन्तमें क्षत्रिय हते. ऐसे ही नन्दरायजी भी वसुदेवजीके भाई हते. जैसे राजान्के पासवानके बेटा होवें ऐसे नन्दरायजी वसुदेवजीके पिताके पासवानके बेटा हते. यासु वो आधे क्षत्रिय हते और गोपालक होनेसु आधे वैश्य हते. यासु क्षात्र सम्बन्धसु ठाकुरजी दशहराको उत्सव भी मनावें हैं और नन्दरायजीके गोपालनके व्यवसायके कारण वैश्य सम्बन्धसु दीपावली-हटरीके उत्सव भी मनाये जायें हैं. यासु दीपावलीके दिननमें ठाकुरजीकु हटरीमें पधराके आगे सजावटमें तराजू, मेवा-मिठाई आदि रखे जाये हैं. हटरीके पद भी कितने सुंदर हैं के जामें ठाकुरजी सबनसु कहे हैं के तुम मेरे पाससु माल लो, दाउदादासु मत लो, मेरी बोनी करो. मैं यामें कभी रूंगट नहीं खाऊंगो, सच्चो मोल करके माल बेचूंगो. तो देखो, ठाकुरजी वैश्यको उत्सव भी मना रहे हैं. तो अपने यहां ठाकुरजी सब उत्सव मना रहे हैं. यामें कुछ लीलाको पहलू है, कुछ लोकाचारको पहलू है. और अपन चाहे ब्राह्मण होवें चाहे क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र होवें, ठाकुरजीके संग सब उत्सव मनावें हैं.

नवविलास-दशहरा :

नवरात्रि देवीभक्तनको उत्सव है. पर अपन अपने ठाकुरजीके संग वो भी मनावें हैं. नवरात्रि अपन लोकप्रसिद्ध देवीकी आरधानाके रूपमें नहीं मनावें हैं पर ठाकुरजीकी भी तो अष्ट सखी और एक स्वामिनीजी ऐसे नौ देवी हैं. यासु अपन अपने ठाकुरजीके सम्बन्धसु दशहराको अंकुरारोपण करके अष्टसखी सहित स्वामिनीजी को उत्सव मनाके दशहराके दिन ठाकुरजीके विजयको उत्सव मनावें हैं. साथ-साथ रामने रावणकु जीत्यो वा स्मृतिमें भी दशहरा अपने यहां मनायी जाय है. अपने यहां कोई तरहको फिक्सेशन् नहीं है वाको सबसु बडो प्रमाण दशहरा है. दशहराके पद देखोगे तो वामें कृष्णलीलाके भी

पद गाये जाये हैं और रामलीलाके भी

''आज रघुवीरको वीर आयो,
जारि लंका सकल मारि राक्षस बहुत सिय सुधि ले कुसल फिर सिधायो''

पद गाये जाये हैं. रामलीलाके पद क्यों गाये जायें हैं? क्योंके अपनने ऐसी भावना करी है के नन्दरायजीके घरमें रामको उत्सव मनायो जातो हतो वामें अपने ठाकुरजी भी भाग लेते हते. यासु अपन नन्दालयकी भावनासु दशहरा मनावें हैं. दशहरा मनावें वामें ठाकुरजीके आगे तलवार भी धरी जाये है. वर्षके दूसरे दिननमें ठाकुरजीकु ढाल-तलवार नहीं धरे जायें हैं पर दशहराके दिन खास धरे जाये हैं. अपनो ठाकुर वैसे ग्वाला है पर दशहराके दिन वो भी क्षत्रियनकी तरह ढाल-तलवार धरके बिराजे है. वाके कई पहलू हैं. ये ऐसो हीरा है के जामें कई पहलू तराशे गये हैं. और वामें तराशे गये हर पहलूको मझा अपन लेवे हैं.

शरदोत्सव :

शरद् पूनम, अपन सब जाने हैं, शुद्ध कृष्णलीलाको उत्सव है. निःसाधन फलात्माको उत्सव है. कृष्णजन्ममें वात्सल्यभावको प्राकट्य हतो यहां रासोत्सवमें माधुर्यभावको प्राकट्य है. ये उत्सव भी कोई ओर उत्सवसु न्यून नहीं है. श्रीस्वामिनीजीकेलिये माधुर्यभावात्मक प्रभुको प्राकट्य है. श्रीस्वामिनीजीकेलिये श्रीगुसांईजी लिखे हैं :

''कृपयति यदि राधा बाधिताऽशेषबाधा,
किम् अपरम् अवशिष्टं पुष्टि-मर्यादयोर् मे''

यदि श्रीस्वामिनीजी मेरे ऊपर कृपा करें तो पुष्टिभक्तिमार्गीय सारी बाधाएं मेरी दूर हो गयीं समझो. ...

निःसाधनफलात्मा प्रभुको स्वामिनीजीके माधुर्यभावात्मक प्राकट्य ही केवल रासोत्सव नहीं है वासु भी गंभीर एक पहलू रासोत्सवको है. अपने सेव्यको पहलू जैसे ब्रह्म होनेको है वैसे ही वाको दूसरो पहलू परमात्मा होनेको भी है. वो अपनो परमात्मा है; अपन वाकी जीवात्मा हैं. जैसे अपने शरीरके

भीतर अपनी आत्मा है वैसे अपने आत्माकी आत्मा श्रीकृष्ण है. रासके उत्सवको लोग कुछ सोचे-समझे बिना उट-पटांग अर्थ करते होवे हैं. पर रासको उत्सव वस्तुतः जीवात्मा और परमात्मा के बीच रमणको उत्सव है. या रहस्यकु खास समझलो, बाकी सब भाषाकी बात है. शृंगारकी तो भाषा है पर वाके पीछेको मूल भाव आत्म-परमात्मरतिको है. मैने दशमस्कन्धकी भूमिकामें याको विस्तारसु वर्णन कियो है. रासलीला सचमें आत्मरतिको डेमोन्स्ट्रेशन् है. ये अपनकु कैसे पता चले? गोपीजनननें भी कही है :

''न खलु गोपिका नन्दनो भवान् अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्,
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्त्वतां कुले''

''तुम तो अखिल देहीन्के आत्मामें रहनेवाले परमात्मा हो'' ये बात गोपीजन कह रहे हैं. और ''सन्त्यज्य सर्वविषयान् तवपादमूलं प्राप्ता'' तुम ये मत सोचो के हम तुमकु विषयासक्तिके कारण चाह रही हैं. हम तो तुमकु अपनी आत्माकी तरह चाह रही हैं. **''प्रेष्ठो भावन् तनुभृतां किल बन्धुरात्मा''** तुम हमारी आत्माकी आत्मा हो. तो देखो के ये रासको प्रसंग आत्म-परमात्मके रमणको उत्सव है. और यासु ही जब राजा परीक्षितने पूछी के ऐसे रासलीला करवेकी कृष्णकु क्या जरूरत पडी तब शुकदेवजीने बहोत अच्छो जवाब दियो है के तु ये बात समझे नहीं है. यदि ये रासलीला नहीं करते तब भी वो ही सर्वत्र रासलीला कर रहे हैं. पत्नीकी आत्मामें भी वो ही परमात्मा बिराज रह्यो है और पतिकी आत्मामें भी वो ही परमात्मा बिराज रह्यो है. आत्माएं भिन्न हैं पर सबनमें परमात्मा तो एक ही है. परमात्मा भिन्न नहीं है. हाथमें माथे, पैर या पेट में कोई अलग-अलग जीवात्मा नहीं होवे है. एक ही जीवात्मा सारे अंगमें व्याप्त है. ऐसे एक ही परमात्मा सारी आत्मानमें व्याप्त है. यासु वो प्रकट रास करे के नहीं करे, सर्वत्र वाको ही रास चल रह्यो है. या दृष्टिसु अब शरद् पूर्णिमाके उत्सवको विचार करो. ये एक दिन ऐसो है के जा दिन अपन आत्म-परमात्मके रमणको उत्सव मनावे हैं. आजके दिन प्रभुने अपनी परमात्मता प्रकट दिखायी है. यशोदाजीके वहां जब ठाकुरजी प्रकटे तब अनेक रूपसु नहीं प्रकटे. पर रासमें जब ठाकुरजी प्रकटे तब हर गोपीके संग एक ठाकुरजीको प्राकट्य भयो है. एक कृष्ण हर गोपीकेलिये अनेक रूपमें

प्रकट भयो है. एकके अनेक होनेको ये डेमोन्स्ट्रेशन् है. यासु शरद् पूर्णिमासु बडो उत्सव अपने यहां ओर हो कौनसो सके है के जामें आत्मरति के जो पुष्टिभक्तिको निगूढतम भाव है वाको उत्सव मनानेको अवसर मिले. वैसे ये कृष्णलीलाको उत्सव है. और अपन कृष्णभक्तिमें व्रजभक्तनके भावकी भावना करनेवाले भक्त हैं तो वा एंगल्सु कृष्णलीलाको उत्सव है. पर अपनकु वामें फिक्सेशन् नहीं करनो है. अपनकु वामें फ्लेक्सिबिलिटि रखनी है. ये आत्म-परमात्मके रमणको भी उत्सव है. यासु ही अपन शरद् पूर्णिमा उतनेही जोशो-खरोशसु मनावे हैं जितनी जोशो-खरोशसु अपन जन्माष्टमी मनावे हैं. जन्माष्टमीकु तो प्रभु एक ही प्रकट, यहां तो प्रत्येकके साथ प्रकटे हैं.

एक बात यामें और समझो के शरद् पूर्णिमाकु प्रभु केवल गोपीनकेलिये ही प्रकटे हते ऐसो नहीं है आज भी जो वैष्णव अपने घरमें श्रीकृष्णकी सेवा करनो चाहे है वाके घर भी श्रीकृष्ण वा ही तरहसु प्रकटे है, प्रकटे है, प्रकटे है... या रहस्यकु कभी मत भूलियो. या तरहको माहात्म्य जब तुम अपने माथे बिराजते ठाकुरजीको समझोगे तब वाकी पारमात्मिकता समझमें आयेगी. आधुनिक वैष्णव जैसे वाकेलिये वाके घरमें प्रकटे श्रीकृष्णकु छोड-छोडके हवेली-मन्दिरन्में दूसरे-दूसरे कृष्णकु ताकवे भागते फिरे हैं वैसे यदि रासकी गोपियें उनकेलिये प्रकटे श्रीकृष्णकु छोडके दूसरेकेलिये प्रकटे श्रीकृष्णकु ताकवे लगती तो क्या होतो? रासके बजाये रसाभास हो जातो. तेरे लिये जो प्रकट्यो है वाके संग तोकु रास करनो चहिये के हवेलीन्में दोडनो चहिये! तब तो रसाभास हो गयो. पर रासकी कोई गोपी आजके ढोंगी वैष्णवनकी तरह अपने ठाकुरजीकु छोडके दौडी नहीं हती. जा गोपीके संग जो कृष्ण प्रकट्यो वाके संग वाने रास कियो है. ऐसे अपनेलिये अपने घरमें जो स्वरूप प्रकट भयो है वाके संग अपनो सेवाको रस प्रकट करनो है. वाके साथ अपनकु सेवाको रास करनो है. श्रीगुसांईजी श्रीमहाप्रभुजीकेलिये कहे हैं **''रासलीलैकतात्पर्यः कृपयैतत्कथाप्रदः''** श्रीमहाप्रभुजी रासलीलैकतात्पर्य हैं. गीतकी जहां तुक आवे वहां पूरे गायनको भार होवे है वैसे श्रीगुसांईजी कहे हैं के सारी कृष्णभक्तिको भार श्रीमहाप्रभुजीको रासलीलामें है. सारी बात रासलीला

समझानेकेलिये है. अपन रासलीलाको मतलब नाचनो समझे हैं, जैसे गुजरातमें लोग डांडिया नाचे हैं. अरे भई, नाचनो ही वाको मतलब नहीं है, वो तो वाको स्थूल रूप है. वाको सूक्ष्म रूप एकके अनेक होनेको है. एककी अनेकके संग होती क्रीडाको है. बशर्त आपके अंदर कृष्णके कंधापे हाथ धरके वाके संग नाचनेकी भावना होवे. यदि वो भाव आपके अंदर है तो कृष्ण आपके कंधापे हाथ रखके नाच सके है. *''सखा अंस पर वामबाहु दिये या छबिपे बिनमोल बिकाउं, सुंदर मुखकी हों बलि-बलि जाउं''*. ठाकुरजी ये लीला करवेकेलिये तैयार हैं. पर अपने भीतर वो भाव नहीं होवे तो ठाकुरजी क्या करें? ठाकुरजीकी मुश्किल ये है के वो कृपा करके आपके घरमें प्रकट हो गये हैं पर आप उनके प्रति रासको भाव नहीं रखके जहां सजावटें ज्यादा हैं, जहां लड्डु-मठडी अधिक भोग आ रही हैं, जहां लोगनकी भीड ज्यादा जुट रही है वहां जाके खडे हो जा रहे हैं, घरके ठाकुरकु तिरस्कृत करके. अपनकु ऐसो लगे है के भीड जहां ज्यादा है वहां ठाकुरजी कछु अधिक सामर्थ्यसु बिराज रहे हैं. मेरे घरमें तो मैं हूं और मेरो ठाकुर मात्र हैं.

एक बात ध्यानसु सोचो के सच्ची प्रेमिकाकु अपने प्रेमीके साथ भीड पसंद आयेगी के एकान्त पसंद आयेगो? सच्ची प्रेमिका तो भीडमें संकोचको अनुभव करेगी. वो सोचेगी के इतनी भीडमें कैसे प्रेमालाप हो पायेगो. वो तो भीडकु अपनो शत्रु मानेगी. ऐसे ही यदि अपन अपने ठाकुरजीकी सच्ची प्रेमिका होते तो अपनकु अपने ठाकुरजीके संग एकान्त पसंद आतो. पर अपनकु तो भीड ही पसंद आवे है. जहां भीड जुटी नहीं के अपने पैरमें खुजलीसी आने लगे है के अब दौडो, दौडो, दौडो. न जाने वहां क्या मिल रह्यो है अपन सक्कर मिलेगी ऐसे समझके लाईन्में खडे हैं और मिल रह्यो है वहां घासलेट. यामें श्रीमहाप्रभुजी बिचारे क्या करें, बिचारे ठाकुरजी क्या करें? बिचारे श्रीगुसांईजी क्या करें? उनने तो फिर भी स्पष्ट बात कह दी **''रासलीलैकतात्पर्यः कृपयैतत्कथाप्रदः''**. पर वो कथा अपनेकु पसंद नहीं आवे है. अपनकु वो घासलेटकी क्यू ही पसंद आवे है. पर सच्ची बात ये है के आपको ठाकुर आपकु क्यूमें खडो रखनो नहीं चाह रह्यो है. आपको ठाकुर तो

आपकु बुलाके अपने घरके एकान्तमें अपनी सारी सेवा देनो चाह रह्यो है. बशर्त आप अपने दिलमें एक सच्ची प्रमिका जैसो भाव अपने ठाकुरकेलिये रखते हो. तो वो सारी सामर्थ्यके साथ प्रकट हो रह्यो है. प्रत्येक गोपिकाको रासमें ये अनुभव हतो के कृष्ण वाके ही साथ नाच रह्यो है. वाकु कभी खयाल तक नहीं आयो के दूसरी गोपिकाके संग कृष्ण नाच रह्यो है के नहीं नाच रह्यो है. या तन्मयताको नाम रास है. या तरहसु कृष्णमें खो जानेको नाम रास है. कृष्णकु अपनेमें खो देनेको नाम रास है. कृष्णमें अपन खो जायें, कृष्ण अपनेमें खो जाये. कृष्णकु होश न रहे के वो कहां है, अपनकु होश न रहे के अपन कहां हैं. या तरहसु जब अपन एक-दूसरेमें खो जायें वाको नाम रास पूर्णिमा है. वाको नाम शरदोत्सव है. वा दिन पुष्टिभक्तिकी चांदनी पूरी खिल गयी. शीतल चांदनी के जामें आह्लादकता और आह्लादकताके अलावा कुछ भी नहीं बच्यो है. वो चांदनी वा दिन खिलेगी के जा दिन अपन एक दूसरेमें खो जायेंगे. बस, वाकी शर्त एक है : जो आपकेलिये आपके घरमें प्रकट्यो है वाकु आप अपनो प्रियतम मानो. वो आपके गलेमें बाहें डालवे जातो होवे तब आप क्रूर होके यदि वाकु ऐसे कहो के एक मिनिट जरा मैं हवेलीमें दर्शन करके आउं हूं तो रसाभास हो गयो. वो आपसु मिलवे आयो और आप कोई दूसरेसु मिलवे जा रहे हो.

भर्तृहरि राजाकी बडी मजेदार कथा है. भर्तृहरिकु एक वेश्या बडी प्रिय हती. कोई ऋषिने एक दिन प्रसन्न होके राजाकु अमरफल दियो. राजा वेश्यापे आसक्त हतो. वाने सोची के मैं अमर होके क्या करुंगो, मैं तो ये अमरफल वेश्याकु खिलाउंगो. राजाने वो फल वेश्याकु दे दियो. अब वेश्याकी हकीकत ये हती के वो वस्तुतः राजकु नहीं चाहती हती. वो राजाके सेनापतिकु चाहती हती. वाने ये सोच्यो के मैं अमर होके क्या करुंगी. मेरो प्रियतम तो सेनापति है. वाने वो फल सेनापतिकु दे दियो. वो सेना पति पाछो राजाकी रानीकु चाहतो हतो. वाने वो फल रानीकु दे दियो. रानीके हाथमें जब अमरफल आयो तब रानीने सोची के मेरो तो सर्वस्व राजा है. राजा ही सच्चो अमरफल खानेको अधिकारी है. वाने जाके राजाकु दियो. राजने रानीसु वाके पास

अमरफल कहांसु आयो ये पूछी और जब वाकु आखी लिंक-चेनल पता चली तब वाके मनमें आयी के साली अमर होनेकी भावना ही खराब है; मरनो ही अच्छी बात है यदि सम्बन्धनमें ऐसे-ऐसे कबाडा होते होवें. ये विचार करते-करते राजा राजमहल छोडके ऋषि बन गयो. या घटनाको वाने श्लोक बनायो :

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः
अस्मत्कृते तु परितुष्यति काचिद् अन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च''

अपने पुष्टिमार्गमें भी भर्तृहरि राजाके जैसी ही कथा चल रही है. ठाकुरजी अपनकु चाह रहे हैं करके अपने घरमें प्रकट भये. अपन जो अपने घरमें प्रकट भयो है वाकु नहीं चाहके कोई हवेली-मन्दिरके ठाकुरजीकु चाह रहे हैं. हवेलीके ठाकुरजीकु ट्रस्टीन्ने और महाराजनने केवल मनोरथीकु ही चाहवेकेलिये मजबूर कर रखे हैं सो बिचारे ठाकुरजी जो उनके आगे पैसा फेंके वाकु ही चाह सके हैं. दुष्ट मनोरथी पाछो ठाकुरजीकु नहीं चाह रह्यो है. वो चाह रह्यो है प्रसिद्धिकु या वहांसु मिलती मिठाईके स्वादकु. ट्रस्टीकु ठाकुरजीके साथ कुछ लेनो-देनो नहीं है, वो तो चाह रह्यो है धनवान मनोरथीकु के जो हवेलीकी पूंजी बढावे है. महाराजकु, सच कहो तो, न ट्रस्टी पसंद आवे हैं; न मनोरथी पसंद आवे हैं; न ठाकुरजी पसंद आवे हैं. महाराजकु तो मतलब है इन सबके माध्यमसु आते पैसासु. सामग्री बनानेवाले हवेलीन्के भीतरीया और भोग धरनेवाले मुखिया की स्थिति विचारो तो वो तो बिचारे अपनो पेट पालवेकेलिये महाराज-ट्रस्टी-मनोरथीकी गुलामी करते होवे हैं. उन बिचारेनकु मतलब है अपने पेटसु. या बखडजंतरमें अमरफल कौनके हाथमें आयेगो ये कह पानो बहोत मुश्किल है. ईश्वर अल्लाह तेरे नाम सबको सन्मति दे भगवान् पुष्टिमार्गमें भर्तृहरिके जैसी विचित्र कथा चल पडी है. सोचो तो यासु ज्यादा दुःखद घटना ओर क्या हो सके है. कभी अपने हृदयपे हाथ धरके पूछो के श्रीमहाप्रभुजीको सिद्धान्त, श्रीमहाप्रभुजीकी भावना को विचार करनेपे यासु अधिक दुःखद घटना पुष्टिमार्गमें कोई ओर हो सके है ये पुष्टिमार्गको दुर्भाग्य है.

ये उत्सव नहीं है. ये शोककी कथा है.

धन तेरस – रूप चौदश :

उत्सवकी कथापे अपन फिरसु आवें. शारदोत्सवके बाद धन तेरस और रूप चतुर्दशी आवे हैं. ये दोनों शास्त्रीय और लोकके उत्सव हैं. ये उत्सव नन्द-यशोदा मनाते हते करके ''धन धोवत नन्दरानी'' पद अपन गावे हैं. प्राचीन कालमें, आप लोगनमेंसु बूढे लोग या बातकु जानते होंगे के रूपचतुर्दशीके दिन अपने मां-बाप भी अपनकु वा ही तरहसु न्हवाते हते के जा तरहसु अपन ठाकुरजीकु अभ्यंग स्नान करावे हैं. ये परम्परा लोकमें सर्वत्र व्याप्त हती. सब अपने-अपने बच्चानूकु रूपवान बनाते हते. नन्द-यशोदाजीकु भी ऐसो भाव होतो के उनको लाला भी रूपवान् बने. करके अपन भी रूप चतुर्दशी अपने ठाकुरजीके संग मनावें हैं.

दीपावली-गोवर्धनपूजन :

दीपावली वस्तुतः लक्ष्मीके आगमनको उत्सव है. अपनने पहले विचार कियो तदनुसार दीपावली बनियान्को वार्षिकोत्सव है. नन्दरायजी पशुपालक होनेसु वैश्यको व्यवसाय करते हते यासु दीपावली मनाते हते. अपन क्योंके नन्दराजकुमारकी सेवा करे हैं यासु ठाकुरजीके कुलमें जो उत्सव मनाये जाते हते उनकु अपन ठाकुरजीकी सेवामें भी मनावें हैं. दूसरी ओर दीपावलीको कृष्णलीलासु भी सम्बन्ध है. *''गोद बैठ गोपाल कहत व्रजराजसों, सुनो तात एक बात श्रवणदे सुनो जु मेरी''*. तुम कौनकी पूजा कर रहे हो? क्यों कर रहे हो? ऐसे समझा-बुझाके ठाकुरजीने इन्द्रकी पूजा करवेवाले व्रजवासीनको अन्याश्रय छुडायो है. अपने ठाकुरजीने सामने चलके अन्याश्रय छुडवाके अपनी पूजाके उत्सवको आरम्भ कियो है. तो यासु बडो उत्सव अपने लिये ओर कौनसो हो सके है? करके सूरदासजी कहे हैं *''सूर यह उत्सव अलौकिक जानो''*. क्यों? अपन अपनी अनन्यता निभानेकेलिये अन्याश्रय छोडें ये तो एक कथा है और ठाकुरजी खुद अपनो अन्याश्रय छुडावें, मैं तुमकु अन्याश्रय करने नहीं दउंगो, ये अलौकिक बात हो गयी.

बंबईमें एक गांडा गिरिधरलालजी हते. उनकु सब पागल कहते. सचमें वो क्या हते वो तो भगवान् जानें पर वो पुष्टिमार्ग बहोत अच्छो जानते हते. उनके घरको एक सेवक दयानन्दके प्रभावमें आके अमदावादमें आर्यसमाजी हो गयो. उनकु ये पता चली. गिरिधरलालजी खास वाके घर पधारे. उनको सेवक वा बखत घरमें हतो नहीं. घरवालेन्ने कही के अब हम आर्यसमाजी हैं, पुष्टिमार्गी नहीं रहे हैं आप कहीं ओर अपनो मुकाम करो. ये सुनते ही गांडा गिरिधरलालजीने घरवालेन्की बेंतसु पिटाई करदी. तुम्हारो बाप आर्यसमाजी नहीं हतो, तुम्हारो दादा आर्यसमाजी नहीं हतो, तुम भये कैसे आर्यसमाजी. उनने जबरदस्ती अपनो सामान घरमें रखवा दियो. मैं तो यहीं ठहरूंगो. घरवालेनने देखी के गुरुजी तो दादागिरीपे उतर आये हैं. उनने घरके बडेकु जो आर्यसमाजी हो गयो हतो वाकु बुलवायो. वाने आते ही उनको सारो सामान घरके बाहर फिंकवा दियो. गिरिधरलालजी गुस्सासु आगबबूला हो गये. मेरो सेवक होके तु ऐसो दुर्व्यवहार करे है वाकु बी दो-चार बेंत उनने फटकारी और वापिस अपनो सामान घरमें रखवायो. बोले के तेरो बाप आर्यसमाजी नहीं, तेरो दादा आर्यसमाजी नहीं तो तू भयो कैसे आर्यसमाजी. घंटा दो घंटा ये नाटक चल्यो. बिचारो उनको सेवक डरके मारे आर्यसमाज छोडके पाछो पुष्टिमार्गी हो गयो.

अपने ठाकुरजीने भी व्रजमें गांडा गिरिधरलालके जैसो ही काम कियो हतो. व्रजवासी इन्द्रकु पूजवे जा रहे हते तो ठाकुरजी अड गये के मैं तुमकु इन्द्रकी पूजा करवे नहीं दउंगो. ठाकुरजीने कही के इन्द्र तुम्हारे सामने भोग खावे आवे है कहा? मैं तुमकु ऐसो देव पुजवाउंगो के जो तुम्हारे सामने भोग अरोगेगो. *''हमारो देव गोवर्धन रानो''* ठाकुरजीने जबरदस्ती इन्द्रपूजा रुकवाई. यामें रहस्य ये है के जब कोई कोईकु अपनो माने तब ऐसो होनो सम्भव है. अपनो नहीं माने तो गांडा गिरिधिरलालके जितनो कोईकेलिये उद्धत हो नहीं सके है. सामान फिंक रह्यो है फिर भी अपन वहां बैठे भये हैं. हम तुमकु छोडेंगे नहीं, भले तु हमारो सामान फिंकवा देवे. उनने वाकु कितनो अपनो मान्यो तब जाके ऐसो अपमान सहके भी वाकु छोड्यो नहीं. अपनो

बच्चा कभी अपनो अनादर करे तो भी अपन वाकु छोडे नहीं हैं. ये अपनो आग्रह ही बच्चाकेलिये अपनो स्नेह बतावे है. तो ठाकुरजीने इन्द्रयाग रुकवाके व्रजवासिनके प्रति जो आत्मीयता प्रकट करी वासु बढके बडो उत्सव अपने यहां दूसरो कौनसो हो सके है यासु अन्नकूट अपने यहां बहोत बडो उत्सव है.

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं :**''कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते''**. कृष्णके अधीन होके जब लीला चल रही होवे है वो तो मर्यादालीला है पर जब कृष्ण जीवके अधीन होके लीला करे है तब वो पुष्टिलीला है. या लीलामें प्रभु अपने कितने अधीन हो गये हैं के अपन प्रभुसु विमुख होनो चाह रहे हैं, अपन अन्याश्रय करनो चाह रहे हैं पर प्रभु डटे भये हैं, गांडा गिरिधरलालकी तरह, के नहीं, मैं तुमकु अन्याश्रय नहीं करने दउंगो. तू मेरो है. **''तस्मान् मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्''** ऐसे भगवान् कहे हैं. तुम मेरे हो, मैं तुमकु अन्याश्रय करने नहीं दउंगो. करते तो ठाकुरजीकु क्या नुकसान हतो. ठाकुरजीकु भक्तनकी कहां कमी हती. पर भगवानने कही के मैं अन्याश्रय नहीं करने दउंगो. ये अपनो ठाकुर भी गांडा गिरिधरलाल है. अपनकु अन्याश्रय करने नहीं दे है.

आज ऐसी लीला प्रकट नहीं हो रही है वाको कारण स्पष्ट है के अपने घरमें बिराजतो ठाकुर वाके प्रति अपनी निस्पृहता देखके समझदार हो गयो है के इनके साथ ऐसो पागलपनको बर्ताव नहीं करनो. इनकु छोडो.

''तु है हरजाई तो अपना भी यही तौर सही,
तू नहीं ओर सही, ओर नहीं ओर सही''.

तु ही जब हरजाई है तो फिर मैं क्यों तेरे पीछे पागल बनुं जा तोकु जाकु भजनो होवे वाकु भज, मेरे तरफसु तोकु छूट है. प्रभु भी आज निस्पृह हो गये हैं करके अपनकु रोक नहीं रहे हैं. पर अपन थोडी भी स्पृहा अपने प्रभुके प्रति रखेंगे तो अपनो घरको ठाकुर अपनकु भी अन्याश्रय करने नहीं देगो, नहीं करने देगो ये बात दृढ समझो.

राधाष्टमी :

भगवत्सेवाके उत्सवक्रमके अन्तर्गत अपनने जन्माष्टमीसु उत्सवको स्वरूप विचारनो शुरु कियो. यामें राधाष्टमी, दानलीला, वामन द्वादशी और सांझी को विचार छूट गयो.

सबसु पहले अपन राधाष्टमीके उत्सवको विचार करेंगे. वैसे जन्माष्टमीके पीछे चद्रावलीजीको उत्सव भी आवे है पर वो अपने यहां बडे स्केल्पे मनायो नहीं जाय है. राधाष्टमीके उत्सवकु तो ठाकुरजीके उत्सवकी तरह मनानो ऐसे अपनी सेवा प्रणालिकामें स्पष्ट लिख्यो है. यासु वा दिन शृंगार-वस्त्र जन्माष्टमीके धराये जायें हैं, पलना भी ठाकुरजी झूले हैं. जिन घरनमें ठाकुरजीके संग श्रीस्वामिनीजी बिराजते नहीं होवें वहां राधाष्टमीके दिन भावनासु श्रीस्वामिनीजी पधराये जाये हैं. घरकी सब बहु-बहटीएं उनकी मांगमें सिंदूर भरें. जहां ठाकुरजीके संग स्वामिनीजी बिराजते होवें वहां तो परिवारके सब लोग उनके दर्शन कर सके हैं पर भावनासु जहां श्रीस्वामिनीजी पधारे हैं उनके दर्शन परिवारके भी सब लोग नहीं करे सके हैं. परिवारके जो अत्यन्त निकट सेवापरायण लोग होवें वो ही श्रीस्वामिनीजीके दर्शन कर सके हैं. यहां (किशनगढ)में दरबारके वहां भी स्वामिनीजी बिराजे हैं. पर उनके भी दर्शन परिवारके अति निकटके लोग ही कर सके हैं. कांकरोलीमें द्वारकाधीशके श्रीस्वामिनीजी बिराजे हैं. उनके दर्शन भी परिवारके अति निकटके लोग ही कर सके हैं.

अभिषेकके सम्बन्धमें भी ऐसी मर्यादा है. मर्यादामार्गमें ठाकुरजी-स्वामिनीजीको संग-संग अभिषेक होवे है ऐसो अपने यहां नहीं है. अपने यहां स्वामिनीजीको अभिषेक ठाकुरजीके संग नहीं होवे है. अपने कई घरनमें तो ऐसी मर्यादा है के घरके बालक भी स्वामिनीजीकु स्नान नहीं करा सके हैं, बहु-बेटीएं ही स्वामिनीजीकु स्नान करा सके हैं. ये नियम खास करके उन घरनमें पाल्यो जाय है के जहां ठाकुरजीकी सेवा किशोरभावसु करी जाय है. बालभावकी जहां सेवा है वहां स्वामिनीजी भी बालिकाके भावसु बिरजे हैं.

यासु उन घरनमें स्वामिनीजीके स्नान कराने और वस्त्र धरानेके सम्बन्धमें वो नियम नहीं है.

श्रीगुसांईजीने ठाकुरजीकु पुष्ट करनेकी विधिको एक ग्रन्थ लिख्यो है: '**पुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकार**'. वामें श्रीगुसांईजीने श्रीस्वामिनीजीकी भी पुष्ट करवेकी विधि बताई है.

बालभाव, किशोर भाव के सर्वभाव :

बहोतसे सम्प्रदायनके, खास करके वृन्दावनके, मनमें एक ऐसी भ्रान्त धारणा है के वल्लभ सम्प्रदायमें केवल बालभावकी सेवा है. किशोर भावकी सेवा चैतन्य सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय में है, वल्लभ सम्प्रदायमें नहीं है. दरअसल् न तो उनने तो अपने सिद्धान्त ग्रन्थ पढे हैं, न अपने यहांकी स्तुतियें पढी हैं, न अपनो पद साहित्य पढ्यो है करके ये लोग ऐसी भ्रमणा फैलाते रहे हैं के अपने यहां बालभावकी सेवा है.

भागवतके दशमस्कन्धके प्रारम्भमें सुबोधिनी लिखनेके पहले श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा कर रहे हैं :

''नमामि हृदये शेषे लीला-क्षीराब्धिशयिनम्,
लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्''.

लक्ष्मीकी हजारों लीला अथवा हजारन् लक्ष्मीके संग की गयी लीलाके सागरमेंसु उगे भये कलानिधि कृष्णकु मेरे नमस्कार. विचार करो, किशोर भावके बिना ये मङ्गलाचरण कैसे हो सके है.

एक ओर बात समझो, अपने यहां बाललीलाके पद जन्माष्टमीसु गाये जायें हैं वो केवल राधाष्टमी तक ही गाये जाये हैं. जहां नवनीतप्रियजीके घरकी रीत है वहां बारह महीना पलना ठाकुरजी झूले हैं करके बारह महीना पलनाके पद गवें हैं. ये एक अलग बात है. बाकी दूसरे घरनमें ठाकुरजी जन्माष्टमीसु राधाष्टमी पर्यन्त ही पलना झूले हैं. राधाजीकु पलना झुलाके पलना बंद हो

जावे है.

अपने यहांको कितनो सुन्दर पद है :

'बूझत श्याम कौन तुम गोरी? कहां रहत काकी हो छोरी?''

ठाकुरजी श्रीस्वामिनीजीसु पूछे हैं के ''तुम कौन हो, हमने तुमकु कभी देखी नहीं, कहां रहो हो. खेलने आनो होवे तो हमारे घर भी आओ''. ये सुनके राधाजी ठाकुरजीसु कहे हैं के ''हम क्यों नन्दके घर जावें. उनको छोरा तो माखनकी चोरी करे है''. विचार करो के यदि किशोर भाव नहीं होवे तो ये पद कैसे गाये जा सके हैं? शरदोत्सव अपन कैसे मना सकें? दानको उत्सव कैसे मना सकें? चन्द्रावलीजी-ललिताजीको उत्सव कैसे मना सकें?

और देखो, नवनीतप्रियजीकी बात छोडदो, विट्ठलनाथजीकु दो स्वामिनीजी हैं. द्वारकाधीशजीकु स्वामिनीजी हैं. गोकुलनाथजीकु दो स्वामिनीजी हैं. गोकुलचन्द्रमाजीके सङ्ग स्वामिनीजी नहीं बिराजे हैं तो भी स्वामिनीजीके भावसु उनके तकीयापे अलगसु एक मालाजी धरायी जाये है. मदनमोहजीकु दो स्वामिनीजी हैं. याके अलावा छोटे भाईनके घरनमें भी मदनमोहनजी स्वामिनीजी सहित बिराजे हैं. हमारे माथे भी मदनमोहनजी-स्वामिनीजी बिराजे हैं. सोचो के यदि किशोर भाव नहीं होवे तो ये कैसे सम्भव है इतनो होते भये भी लोग न जाने क्या सोचके ऐसी भ्रमणा फैलाते रहे हैं के पुष्टिमार्गमें बालभावकी सेवा है और हमारे यहां किशोरभावकी सेवा है. अरे भाई, हमारे यहां तो सर्वभावकी सेवा है. सर्वभावमें बालभाव भी है और किशोरभाव भी है. अपने यहांको पद साहित्य पढलो. किशोर भावके कितने सारे पद हैं. राधाष्टमी आते-आते तो किशोर भावके पद खुब गाये जाये हैं. दानके पद, सांझीके पद...

''आयी हूं अकेली आज सांझीके कुसुम ले,
भलो मिल गयो तू मोहे जात घर गायले
चुनरी चटक रंग नीरतें बचायले''

ये किशोर भावके पद नहीं हैं तो ओर कौनसे भावके पद हैं.

एक अन्तर अपने और दूसरेन् के बीच जरूर है. वो अन्तर ये है के उनके यहां केवल किशोर भाव ही है और अपने यहां सर्वभाव है. अपनकु चतुर्भुजकी सेवा करनेमें भी कोई तकलीफ नहीं है. दूसरेनकु तकलीफ होवे है. वो लोग सोचे हैं के ये तो विष्णुको स्वरूप हो गयो, हम इनकी सेवा कैसे करें अपने यहां तो प्रथम घरमें चतुर्भुज मथुराधीशजी बिराज रहे हैं. और वीरमगाममें तो अष्टभुजाजी भी बिराजे हैं. तो बात समझो के अपने यहां केवल बाल भावकी सेवा नहीं है, सर्वभावकी सेवा है. वामें किशोर भावकी सेवा भी है.

बाहरके लोगनकी ऐसी सोच को कारण तो अपन समझ सके हैं के उनकु ज्ञान नहीं है वाके कारण ऐसे कहते होवे हैं के वल्लभ सम्प्रदायमें बालभावकी सेवा है. पर विलक्षण बात ये है के अपने सम्प्रदायके लोग भी उनकी बातनकु सुनके ऐसे कहते होवे हैं के अपने यहां बालभावकी सेवा है. जब कि हकीकत ये है के अकेले सूरदासजीने जितने पद किशोरलीलाके लिखे हैं उनकु यदि दूसरे सारे सम्प्रदायनके किशोरभावके समस्त पदके संग तोलें तो सूरदासजीको पलडा उनपे भारी पडेगो इतने पद किशोर भावके अकेले अपने सूरदासजीके पद हैं. रासलीलाके अकेले अपने कृष्णदासजीने जितने पद लिखे हैं उतने रासके पद दूसरे कोईने नहीं लिखे हैं.

यासु ये ध्यानसु समझो के ये एक मिथ्या धारणा फैलादी गयी है के पुष्टिमार्गमें बालभाव है, किशोर भाव नहीं है. श्रीमहाप्रभुजीकी बात तो ''**सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः**'' है. अपने यहां सर्वभावसु सेवा है. कोई भी भावके सङ्ग अपनकु परहेज नहीं है. न कोई भी भावको अपनकु हठाग्रह है. ये बात अपनकु समझमें आ सके है यदि अपन अपने यहांके उत्सवनके प्रकार, पदके प्रकार और सेव्यस्वरूपनके प्रकारकु ध्यानसु या दृष्टिसु देखें.

अपने यहांकी एक ओर बातह्न जो खुद एकदब बंडल बात है,

बकवास है, बेवकूफ बनानेकी बात है, मैने वाको खंडन अपनी सुबोधिनीकी भूमिकामें कियो है, पर ह्वया भ्रान्त धारणाकु तोडनेमें सक्षम है. वो ये बात के रासमण्डलमें अनेक मण्डल होवे हैं. बडेके भीतर छोटो, वाके भीतर वासु भी छोटो... ऐसे करते अन्तमें ' ' **अष्टौ कृष्णा भवन्ति**''को सबसु छेल्लो सर्कल आठ स्वरूपको होवे है : *' 'द्वे-द्वे गोपी बिच-बिच माधव''*, या सर्कल्में जो आठ स्वरूप होवे हैं वो अपने यहांके आठ स्वरूप, श्रीनवनीतप्रियजीसु लेके श्रीमदनमोहजी तक, है. और या अन्तिम मण्डलके बीचमें जो स्वरूप श्रीराधाजीके सङ्ग नृत्य करे है वो श्रीगोवर्धनधर हैं. ये सब बिलकुल भ्रान्त धारणायें हैं, एकदम बंडलबाजी है, लोगनकु मूर्ख बनानेकी बाते हैं, इन बातनमें कोई तथ्य नहीं है. अपने ठाकुरजीको झंडा ऊंचो करनेकेलिये घडी गयी जूठी कहानियें हैं. श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तमें स्वरूपमें कोई भेद-तारतम्य नहीं है. सब ठाकुरजी एक समान हैं. श्रीगुसांईजीने स्पष्ट आज्ञा करी है : **ठाकुरजीमें कहा बडो-छोटो?** दो, आठ, सोलह, बत्तीस, चौंसठ...ऐसे द्विगुणित होते मंडलके अंदर-बाहरके ठाकुरजीमें कोई अंतर नहीं है. जो मंडलके बीचके ठाकुरजी हैं वो ही सबसे छेल्ले मंडलके भी हैं. ये बात तो अलग हो गयी. अपनी आन्तरिक बातें हैं. पर मैने जा बातकु समझानेकेलिये अपनी ये भ्रान्त धारणाको उदाहरण दियो हतो वो ये है के यदि अपने यहां किशोर भाव नहीं है तो ये भ्रान्त धारणा कैसे पैदा भयी यापे ध्यान दो. कई वर्ष पहले मैने या विषयपे एक किताब लिखी हती.

अपन मूल बातपे आवें. अपने यहां किशोर भाव है. राधाष्टमीसु किशोरभावके उत्सव-पदगान सब शुरु हो जावे हैं जाको क्लायमेक्स् शरदोत्सवके दिन आवे है. अपन यदि श्रीगुसांईजी विरचित ठाकुरजीकु पुष्ट करनेकी विधि देखें तो वा विधिमें किशोर भावको स्थापन प्रभुमें करनेको विधान है.

...आजकल तो वैष्णव और गुरु दोनोंनकु ठाकुरजीकु पुष्ट करनेकी विधि ही पता नहीं है. वैष्णव ये समझे हैं के महाराज ठाकुरजीके चरणस्पर्श

करलें तो ठाकुरजी पुष्ट हो जावें. और महाराज भी ऐसो ही समझे हैं के चरणस्पर्श करने मात्रसु ठाकुरजी पुष्ट हो जावे हैं. एक बडी मझेदार घटना सुनाउं हूं. कुछ दर्शनीया भगतनने विदेशमें श्रीनाथजीको मन्दिर बनवायो. मन्दिरमें श्रीनाथजीकी मूर्तिकी स्थापनाकी आज्ञा लेने गये तो उनकु ये जवाब मिल्यो के श्रीनाथजी तो नाथद्वाराके अलावा दूसरे कहीं बिराज ही नहीं सके हैं.

पुष्ट करनेकी विधिमें भागवतके जो श्लोक बोलनेके होवे हैं उनको श्रीगुसांईजीने उल्लेख कियो है. उनमें ठाकुरजीके जन्मको वर्णन करनेवाले श्लोक बोलने चहिये जो हर वर्ष जन्मके बखत बोले जाये हैं :

' ' अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः,
यर्ह्येवा जनजन्मर्क्षं शन्तर्क्षग्रहतारकम्''.

ये पहले ' चतुर्भिश्च'के श्लोक हैं. दूसरे प्रमाण प्रकरणके श्लोक, पूतनाके वधके बाद गोपीजन विचारमें पड गये के कृष्णकु ये क्या तकलीफ हो गयी. उनने कृष्णकी रक्षा करनेकेलिये मन्त्र पढ्यो :

' ' अव्याद् अजोंघ्रिमणिमान् तव जान्वथोरु
यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः''.

तेरे चरणकी रक्षा होवे, तेरे उदरकी रक्षा होवे ऐसे भगवान्की रक्षाके भावसु गोपीजनने मन्त्र पढ्यो. पुष्ट करते बखत या मन्त्रकु पढते भये स्वरूपके अङ्ग-प्रत्यङ्गको स्पर्श करनो जासु कि गोपीजननके भावकी रक्षा होवे. ये बहोत सिग्निफिकेंट् बात है के प्रभुके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें गोपीजननके भावकी रक्षा होनी चहिये. या भावकी रक्षाके कारण ये श्लोक पढ्यो जाय है.

ठाकुरजी गोचरण करके संध्या समय जब व्रजमें पाछे पधारे हैं वा बखतके श्लोकनकु ठाकुरजीकु पुष्ट करते समय पढ्यो जाय है. क्योंके ठाकुरजी जब कोईके घरमें पधार रहे हैं इतनी सारी गैया-गोपालनकु लेके

' 'हांके हटक हटक गाय ठठक ठठक रही
गोकुलकी गली सब सांकरी,
चम्पकली कुंदकली रसभरी बरखत

तामें लिखे हैं मानो कछु आंकरी,
नन्ददासप्रभु जहां जहां द्वारे ठाडे होत
ठठक ठठक काहूसों हां करी और ना करी''.

'ना करी' को मतलब क्या? क्या कोईकु यों कह्यो के तुम्हारे यहां नहीं आयेंगे? ऐसे नहीं, कोईने कही के आओगे न? तो कही के हां आयेंगे. कल जैसे जूठी कह गये और नहीं आये ऐसे तो नहीं होयगो न तो ना करी, ऐसे नहीं होयगो. ऐसे ठाकुरजी पुष्ट होके कोईके घर ''हां करी और ना करी'' कहेके पधार रह्यो है के मैं अब विलम्ब नहीं करूंगो, तुम्हारे घर आऊंगो. या भावसु ठाकुरजीके गोकुलमें पधारवेके श्लोक बोलके पुष्ट किये जाये हैं.

एक बात ध्यानसु समझो के 'गोकुल' नाम कितनो मीठो है. गोकुल माने जहां ग्वालनकी गायें रहेती होवें वो स्थान. 'गो'को मतलब इन्द्रिय भी होवे है. या दृष्टिसु अपनो सारो शरीर एक गोकुल है. ठाकुरजी पुष्ट होके अपने माथे पधारे है तो अपने गोकुलमें पधार रह्यो है न अपने गोकुलमें ठाकुर पधार रह्यो है करके गोपीजन वाकु जा तरहसु अपने गोकुलमें पधराती हतीं वा तरहसु वैष्णवके घर ठाकुरजी पुष्ट होके पधारें यालिये गोचारण करके पधारते भये ठाकुरजीको वर्णन करनेवाले श्लोक भी पुष्ट करते बखत बोले जाये हैं. वो भावना भी करी जाय है. तो देखो यहां भी किशोर भाव है के नहीं किशोर भावके सङ्ग यशोदाभाव भी है क्योंके सन्ध्या आरती यशोदाजी भी करे हैं. पर देखनेकी बात ये है के नन्दद्वार तक ठाकुरजी पधारें और वहां आरती होवे तब यशोदाभाव आवे है. पर ''हांके हटक हटक गाय ठठक ठठक रही गोकुलकी गली सब सांकरी, चम्पकली कुंदकली रसभरी बरखत तामें लिखे हैं मानो कछु आंकरी'' ये तो किशोरभावको वर्णन है. ये बालभावको वर्णन नहीं है. गोपीएं ठाकुरजीपे अपने-अपने गोख-बारीमें अटारीमें सु फूल फेंक रहीं हैं. ये तो किशोर भावको वर्णन है. पर जब ठाकुरजी नन्दद्वारपे पधारे हैं तब पाछो बाल भाव आ जावे है. अपन कोई भावको फिक्सेशन् नहीं करे हैं. यशोदाजी द्वारपे ठाकुरजीकी आरती उतारे हैं तब पाछो बाल भाव आ जावे है.

याके बाद पुष्टकरनेकी विधिमें एक श्लोक आवे है जो ठाकुरजी रासमें तिरोहित भये तब गोपीजनने ''**जयति तेऽधिकं जन्मना व्रज**'' गीत गायो वाके बाद

''रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसा,
तासामावीरभूच्छौरी स्मयमानमुखाम्बुजः,
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान् मन्मथमन्मथः''

ये जो प्राकट्य प्रभुको रासमें भयो है वा श्लोकको भी पाठ करनो और वैसी भावना भी करनी के ठाकुरजी हमारे घरमें प्रकट भये हैं. क्या ये किशोरभाव नहीं है? ध्यानसु समझो के अपने यहां की तो पुष्ट करनेकी विधिमें जन्मप्रकरमें वर्णित बालभाव है, प्रमाण प्रकरणको किशोर भाव है, प्रमेय-साधन प्रकरणन्को भी भाव है और फलप्रकरणको भी भाव है. सारे प्रकरणके भावनसु अपन अपने ठाकुरजीकु पुष्ट करे हैं. ''सर्वभावेन भजनीयो''.

श्रीमहाप्रभुजीने 'परिवृढाष्टकम्'में ठाकुरजीकी स्तुति करते भये किशोरलीलाको वर्णन कियो है :

''कलिन्दोद्भूतायास्तटमनुचरन्तीं पशुपजां,
रहस्येकां दृष्ट्वा नवसुभगवक्षोजयुगलाम्,
दृढं नीविग्रन्थिं श्लथयतिमृगाक्ष्या हठतरं,
रतिःप्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे''.

'परिवृढ' माने नाथ; 'श्रीपरिवृढ' माने श्रीनाथ. तो देखो, श्रीमहाप्रभुजीके बखतसु अपने यहां किशोर भाव है. 'पशुपजा'को मतलब वृषभानुजा है. फिर भी जबरदस्ती लोग यों कहे हैं के महाप्रभुजीकु किशोरलीलाको परिचय ही नहीं हतो. और पुष्टिमार्गमें किशोरलीलाको प्रचार तो श्रीगुसांईजीने चैतन्य सम्प्रदायके प्रभावमें आके पीछेसु कियो ऐसी भ्रान्ति और फैलावे हैं. श्रीगुसांईजीकु किशोरलीलासु परिचित होनेकेलिये चैतन्य सम्प्रदाय तक जानेकी क्या जरूरत है जब भागवतकी रासपञ्चाध्यायी मौजूद है, वापे श्रीमहाप्रभुजीकी सुबोधिनी मौजूद है, वा प्रकरणकु श्रीमहाप्रभुजी फलप्रकरण कह रहे हैं. श्रीगुसांईजीने स्वयं वहां टीका लिखी है इतनो ही नहीं

आपने श्रीमहाप्रभुजीके लेखनपे किशोर भावन्को इतनो विशद व्याख्यान कियो है के यदि वा व्याख्याकु अपन नहीं पढें तो श्रीमहाप्रभुजीको सच्चो अभिप्राय अपन समझ नहीं सकें. तो सोचो के अपने यहां किशोर भाव कैसे नहीं है!

इन सब बातनकु अपन एक ओर रखें. द्वितीयस्कन्ध के

''नमो नमस्तेस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्,
निरस्त–साम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः''

(भाग.पुरा.२।४।१४)

या श्लोकमें प्रयुक्त भये 'राधस्' पदकी व्याख्या करते भये सुबोधिनीमें आचार्यचरणने एक बात बहोत स्पष्टतया समझायी है के

''काचिद् भगवतः सिद्धिः अस्ति 'राधस्'शब्दवाच्या. न तादृशी सिद्धिः काचिद् अन्यत्र न वा ततोऽपि अधिका. तया सिद्ध्या भगवान् स्वगृहएव रमते. तच्च अक्षरात्मकं ब्रह्म. रंस्यन् इति स्वनिष्ठमेव रसं तत्सम्बन्धाद् अभिव्यक्तं करोति इति. एतावता स्वरूपस्थितिव्यतिरेकेण न अन्यत्र रंस्यतीति भगवदीयो रसः तत्रैव प्राप्तव्यः''.

'राधस्' नामकी ठाकुरजीकी कोई ऐसी सिद्धि है न तो वाके जैसी कोई दूसरी सिद्धि है और न वासु अधिक कोई दूसरी सिद्धि ही कहीं है. प्रभु अपनी या सिद्धिके संग अपने धाममें निरन्तर रमण करें हैं. ये राधस् नामकी शक्ति क्या है? भगवान्कु यदि धर्मके मुखसु बोलो तो शक्तिको निरूपण होवे है और यदि धर्मीके मुखसु बोलो तो शक्तिमान्को निरूपण होवे है. ये बात थोडी कठिन है. याकु सरलतासु समझें.

कोई आदमी विद्वान् है. विद्वान् को मतलब विद्या है और विद्वत्ता वाकी शक्ति है. कोई पहलवान् है. पहलवान् मतलब शरीरिक शक्तिमान्. पर

पहलवानी शक्ति है. तो शक्ति कोई अतिरिक्त वस्तु नहीं है. एक ही वस्तुकु धर्ममुखसु बोलो तो वो शक्ति बन जाये है और वाहीकु धर्मीके मुखसु बोलो तो वो शक्तिमान् बन जाये है. ऐसे प्रभुको जब धर्ममुखसु निरूपण होवे है तब श्रीमहाप्रभुजी समझावे हैं के वो अक्षरब्रह्म है. और अक्षरब्रह्मको जब धर्मीके मुखसु निरूपण होवे है तो श्रीमहाप्रभुजी समझावे हैं के वो परब्रह्म है. जैसे ट्युब्लाईट्को चारों ओर फैल्यो भयो प्रकाश वाको धर्म है और वो स्वयं धर्मी है. फूल धर्मी है और वाकी सुगंध वाको धर्म है. पृथ्वि धर्मी है और वाके तीनसौ मीलके रेडियस्में फैल्यो भयो ग्रविटेश्नल् फील्ड वाको धर्म है. विज्ञानकी भाषामें भी अपन वाकु गुरुत्वाकर्षणकी शक्ति कहे हैं. सूर्य धर्मी है वाको प्रकाश धर्म है.

शक्ति और शक्तिमान् में अन्तर बहोत थोडो है. शक्तिमान्के स्वरूपसु बाहर भी जब वाको प्रभाव झलके तब वाकु अपन शक्ति कहे हैं. यदि शक्तिमान्को प्रभाव वाके भीतर ही झलकतो होवे तो अपन वाकु अच्छी तरह पहचान नहीं सके हैं. जैसे पृथ्विको गुरुत्व केवल पृथ्विके भीतर ही होतो तो अपन वाकु पहचान नहीं सकते. पर जब अपनने अनुभव कियो के पृथ्वि वासु तीनसौ मील दूरसु भी अपनकु खींचे है यासु समझमें आवे है के पृथ्विमें गुरुत्वाकर्षणकी शक्ति है. फूलकु नाकसु लगाके सूंघनेपे ही वाकी सुगन्ध अनुभवमें आती होती तो सुगन्ध फूलकी शक्ति है ये बात कभी भी समझमें नहीं आती. पर जब रातरानीको फूल दिखलाई नहीं देतो होवे फिर भी कोईके घरके पाससु अपन गुजर रहे होवें और वाकी सुगन्ध आवे तो अपन झटसु बोले हैं के याके घरके आंगनमें रातरानी है. तो गन्ध शक्ति है और फूल शक्तिमान् है.

श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तानुसार अक्षरब्रह्म शक्ति है, धाम है और पुरुषोत्तम शक्तिमान् है. भगवान् अपने धाममें ही अपनी शक्तिके संग रमण करे हैं. अर्थात् फूल अपनी गन्धके संग खेले है, सूर्य अपने प्रकाशके संग खेले है, पृथ्वि अपने गुरुत्वाकर्षणके संग खेले है, विद्वान् अपनी विद्वत्ताके संग खेले है

ऐसी कोई सिच्युएशन् श्रीमहाप्रभुजी या श्लोकमें समझा रहे हैं. ये वर्णन करके श्रीमहाप्रभुजी समझावें हैं के ये शक्ति शक्तिमान्मेंसु पृथक् या लिये भयी क्योंके शक्तिमान् अपनी शक्तिके संग रमण करनो चाह रह्यो हतो.

सृष्टिलीलाके प्राकट्यके सम्बन्धमें श्रीमहाप्रभुजी अपनकु ये समझावे हैं के अक्षरब्रह्ममें सृष्टि भयी. क्योंके पुरुषोत्तम कोई क्रीडा करनो चाहतो हतो. वो क्रीडा कहां करतो, कौनसु करतो? वाने अपने धर्मसु, अपनेमें रही भयी शक्तीन्सु खेलनो शुरु कियो और ऐसे करते ये सृष्टि प्रकट भयी. करके अक्षरब्रह्ममें जो सृष्टि प्रकट भयी है वो त्रिविध हैः आनन्दात्मिका, चिदात्मिका और सदात्मिका सृष्टि. जड जगत्-प्रकृति सदात्मिका सृष्टि है. चिदात्मिका सृष्टि अपन सब जीव हैं और आनन्दात्मिका शक्ति श्रीराधाजी हैं. परमानन्दमेंसु एक ऐसो आनन्द प्रकट भयो के जो केवल परमानन्दकु ही चाहे है, वाकु ही खोजे है.

जिनने थोडो विज्ञान पढ्यो होयगो उनकु ये बात अच्छी तरहसु समझमें आयेगी. विज्ञान ऐसे सोचे है के सूर्यके पाससु कभी दूसरो सूर्य गुजर्यो. वाके कारण अपने सूर्यमे उफान आयो. याके कारण कुछ लहेरें सूर्यसु बाहर फिंक गयी. जैसे दूध उफने है. बाहर फिंकी लहरन्की दिशा सूर्यसु विपरीत हतीं और सूर्यको गुरत्व वाकु अपनी ओर खींच रह्यो हतो. याको परिणाम ये आयो के जो लहेरें सूर्यसु निकलीं वो सूर्यके चक्कर काटती हो गयीं. पृथ्वि आदि सूर्यमण्डलके सब ग्रह या कारण सूर्यके प्रति आकृष्ट होके वाके चक्कर काटे हैं. ये जो एस्ट्रोनोमिकल परिस्थिति है वो ही अपनी परब्रह्मके साथकी स्थिति है. सहस्रपरिवत्सरसु अपन वासु व्युच्चरित भये हैं. व्युच्चरित होके अपन वाकी ही परिक्रमा कर रहे हैं. या परिक्रमाकी भी खुबसुरतीपे ध्यान दो. अपन ये कहे हैं के पृथ्वि सूर्यकी परिक्रमा करे है. पर पृथ्विकी उत्पत्तिको विचार करो. सच बात तो ये है के सूर्य ही सूर्यकी परिक्रमा कर रह्यो है. एक सूर्य केन्द्रमें है और दूसरो सूर्य परिक्रमा कर रह्यो है. ऐसे ही अपन यदि अपने और परब्रह्म के बारेमें सोचें तो ब्रह्म ही ब्रह्मकी परिक्रमा कर रह्यो है. ये परिक्रमा कोई एकाद जन्मकी

परिक्रमा नहीं है, सहस्रपरिवत्सरकी परिक्रमा है. अपन कितने ही समयसु वाकु खोजनेकेलिये वाकी परिक्रमा कर रहे हैं के जासु अपन बिछुडे हैं. यामें श्रीमहाप्रभुजीने या बातको निरूपण कियो है के जो भी जीव कृष्णकु चाह रह्यो हैह्व वाने पुष्टिमार्गकी कंठी पहेनी होवे के नहीं, यदि वो कृष्णकु कृष्णके ही लिये चाह रह्यो है, कृष्णकु धन, पुत्र, धंधा की कामनासु यदि चाह रह्यो है तब तो वो कृष्णकी चाह नहीं भयी, दूसरे-दूसरेकी चाह भयी, ऐसेनकी बात श्रीमहाप्रभुजी नहीं कर रहे हैं ह्वकृष्णकु जो कृष्णकेलिये चाह रह्यो है फिर वो पुष्टिमार्गी होवे चाहे गैरपुष्टिमार्गी होवे, श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के वाके भीतर श्रीराधाजी बोल रही हैं **''निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः''**. कृष्णकु जो कृष्णकेलिये चाह रह्यो है वाके साथ कृष्णको रमण निरन्तर चल ही रह्यो है.

जब परीक्षितकु प्रश्न भयो के भगवानने गोपीन्के संग रासक्रीडा क्यों करी? तब शुकदेवजीने वाकु समझायो के

''गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामपि देहिनां,
योन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रिडनेनेह देहभाक्''.

गोपीनके भीतर भी वोही कृष्ण वा रूपसु क्रीडा कर रह्यो है और उनके पतिनके भी भीतर वो ही कृष्ण परमात्माके रूपमें खेल रह्या है. गोपी और गोपन की बात तो व्रजलीलालके सन्दर्भमें एक उदाहरणके रूपमें कही गयी है, हकीकत तो ये है के वो कृष्ण समस्त देहधारीन्के भीतर खेल रह्यो है. वो कृष्ण व्रजमें प्रकट होके खेल रह्यो है. अभी तक वो अपन सबनके भीतर रहके खेल रह्यो हतो, अब वो बहार प्रकट होके खेल रह्यो है. रासलीलाको भेद इतनोसो है के भीतर छुपके खेल रह्यो हतो वो अब बहार आके खेल रह्यो है.

बच्चाएं जब आंख-मिचौली खेलते होवे हैं तब छुपनेवाले बच्चाएं छुपे-छुपे भी अपनी उपस्थितिको संकेत अलग-अलग अवाज निकालके देते रहेते होवे हैं ताकि लुका-छिपीको खेल बंद न हो जाये. क्योंके यदि कोई

बच्चा ऐसी जगह छुप जाये के जहां वाकु कोई खोज ही नहीं पाये तो तो खेल ही बंद हो जायेगो. खेलको बंद होनो न तो खोजनेवालेकु पसंद होवे है और न छुपनेवालेकु. मझा तो खेलके चालु रहनेमें ही है. ऐसे ही अपनो ठाकुर भी छुप गयो है और कुछ-कुछ इशारा करके अवतारनमें प्रकट होके बतादे है के देखो, मैं आ गयो तुम्हारे बीचमें, पहचान सको तो पहचान जाओ. फिर पाछो वो छुप जावे है. ये तो आंख-मिचौलीको खेल है के जो निरन्तर चल रह्यो है. याकु ही ठाकुरजीने रासलीलामें भी प्रकट करके बता दियो के मैं ही छुप रह्यो हूं और मैं ही अपने आपकु खोज रह्यो हूं. मैं अपने आपसु छुप रह्यो हूं और मैं अपने आपकु खोज रह्यो हूं. जो कृष्णकु खोज रह्यो है वाके भीतर श्रीराधाजी काम कर रहे हैं ये बात श्रीमहाप्रभुजी अपनकु समझावे हैं. जब तक अपने भीतर वो 'राधा'नामकी शक्ति बोलेगी नहीं तब तक अपन कृष्णकु खोज नहीं पायेंगे, चाहे अपन स्त्री होवेंके पुरुष, मनुष्य होवें के पशु, देव होवें के दानव...यदि कृष्णकु खोज रहे हैं तो अपने भीतर राधा बोल रही है. वो राधा कैसी है? न वो कृष्णसु बढके है न वो कृष्णसु न्यून है. कृष्णने अपने आपकु इन दो भागनमें बांट्यो है जासु कि ये खेल अच्छी तरहसु चल सके. ये राधाष्टमीके उत्सवको सन्देश है.

वैसे वर्षोत्सवके क्रममें राधाष्टमी जन्माष्टमीके बाद आवे है पर लीलाके क्रममें राधाजीकु एक वर्षमें पंद्रह दिन कम रहे तब ठाकुरजी प्रकटे हैं. लीला और वर्षोत्सव के क्रममें ऐसी उलट-पलट है.

राधाष्टमीके उत्सवसु अपन ये बात समझ सके हैं के अपने यहां भी किशोरभावको कितनो प्राधान्य है. उत्सवक्रममें राधाष्टमीसु अपने यहां किशोरभाव प्रबल होतो जावे है. यासु किशोरलीलाको बीज राधाष्टमीके दिन बोयो गयो है. ये उत्सव प्रभुकी आत्मरमणकी लीलाको डेमोंस्ट्रेशन् है. यदि राधाष्टमीके दिन ये बीज नहीं बोयो गयो होतो तो शरदोत्सव कैसे मनायो जा सकतो यासु बीज राधाष्टमी है और पूर्णिमा ...पूर्णिमाको मतलब पूर्ण हो जानो. तो पूर्णिमा वा बीजकी पूर्णता है. ऐसो अनोखो सम्बन्ध राधाष्टमी और शरद्

पूर्णिमा को है. दूसरे ढंगसु अपन याकु यों भी समझ सके हैं के राधाजीके प्राकट्यको उत्सव अपने भीतर कृष्णदर्शनकी लालसाको प्राकट्य है. यदि राधाजी प्रकटें तो अपने भीतर कृष्णदर्शनकी लालसा प्रकटे.

या राधाजीकु प्रभु तिलकके रूपमें धारण करे हैं. अपन ठाकुरजीको चरणारविंद अपने माथापे लगावे हैं और अपने ठाकुरजी मस्तकपे राधाजीके चरणको तिलक धारण करे हैं. क्यों? क्योंके कृष्णदर्शनकी लालसा कृष्णकु इतनी सन्माननीय लगे है के वाकु हृदयके अलावा मस्तकपे भी धारण करे है. हृदयपे कंठाभरणके रूपमें वाकु स्नेहवश धारण करे हैं. और तिलकके रूपमें वाके माहात्म्यवश धारण करे हैं. यासु अपने यहांको ये सिद्धान्त है के ठाकुरजीकु जब तक कंठाभरण और तिलक धरा नहीं दिये जायें तब तक ठाकुरजीके चरणस्पर्श नहीं हो सके हैं. अपन भी ठाकुरजीकी ही तरह अपने माथापे ठाकुरजीको माहात्म्य ठाकुरजीके चरणचिह्न-तिलकके रूपमें करें हैं और तुलसीजीके समर्पणके स्नेहमय भावकु हृदयपे तुलसीमालाके रूपमें धारण करे हैं. अपन गलबंद कंठी नहीं पहने हैं क्योंके अपनी ऐसी भावना है के तुलसीको समर्पणको भाव निरन्तर अपने हृदयपे टकरातो रहे. कभी तो टकराके पहोंच जाये वाकी आवाज कभी तो वाको वायब्रेशन् अपने हृदय तक पहोंचे करके अपन गलबंद कंठी नहीं पहने हैं, हृदयसु टकराती कंठी अपन पहने हैं. ये सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेहको धारण है. और तिलक प्रभुके माहात्म्यज्ञानको धारण है अपने मस्तकपे. या ही तरहसु प्रभु भी कृष्णदर्शनलालसाको माहात्म्य अपने मस्तकपे धारण करे हैं और कृष्णके प्रति स्नेहात्मिका लालसाको धारण प्रभु हृदयपे कण्ठाभरणके रूपमें करे हैं. ये अपने यहांको भाव है. ये किशोरलीलाको भाव नहीं है तो ओर क्या भाव है? दूसरे न समझें तो न समझें. पर प्रत्येक पुष्टिमार्गीकु ये बात समझनी चहिये के राधाष्टमीको उत्सव कितनो महत्वपूर्ण उत्सव है के जाकेलिये श्रीगुसांईजीने आज्ञा करी के ठाकुरजीके सामन ही उनकु पुष्ट करनो, ठाकुरजीके समान ही उनकी सेवा करनी. क्योंके भागवत कहे है **:**

''निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः''.

निरस्तसाम्यातिशय अपनी 'राधस्' नामकी शक्तिके संग भगवान् अपने धाममें निरन्तर रमण कर रहे हैं. अपन भी जो भगवान्के संग रमण कर रहे हैं वो भी याके ही कारण के वो 'राधस्' नामकी शक्तिको कुछ स्पार्क् अपने भीतर भी प्रकट हो गयो है. जाके भीतर वो स्पार्क् नहीं से है वो कृष्णभक्ति कर नहीं पावे है.

कल अपने ये विचार्यो के जन्माष्टमी जैसे निःसाधनफलात्माको प्राकट्य है और व्रजजन जैसे निःसाधन भावसु भगवान्कु भजते हते वो अपने यहां भी निःसाधनभावकी शरणागति और समर्पण में दोनोंमें अतिशय महत्ता होनेके कारण निःसाधनभाववाले अपनो और निःसाधनफलात्मारूप प्रभुके सम्बन्धके प्राकट्यको उत्सव जैसे जन्माष्टमी है वैसे ही श्रीराधाजीको मूल स्वरूप ... क्योंके कई लोग राधाजीकु परकीया माने हैं, कई लोग स्वकीया माने हैं. अपने यहांको सिद्धान्त ये है के श्रीराधाजी नित्यसिद्धा यूथकी स्वामिनी हैं. ये तो लीलाकी दृष्टिसु कही गयी बात है. तथ्यदृष्टिसु या बातकु कहनेपे श्रीकृष्ण परमात्मा हैं और राधाजीको स्वरूप पारमात्मिकी रतिको है. आत्मा कृष्ण हैं, रति राधा है. ऐसे कृष्ण और राधा मिलके आत्मरति बने हैं. अपनी भक्तिमें आत्मरतिकी कितनी प्रधानता है ये बात अपनकु श्रीभागवतके और श्रीमहाप्रभुजीके या वचनसु समझमें आवे है के

''अहम् आत्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि
अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर् यत्कृते प्रियः''

मैं आत्माको भी आत्मा हूं. जो भी कुछ तुमकु जीवनमें प्रिय है उन प्रियनमें प्रियता मेरे कारण प्रकट हो रही है. या स्थितिमें तुम मोकु साक्षात् स्वरूपसु चाहो तो भी मोकु चाह रहे हो और यदि साक्षात् स्वरूपसु मोकु नहीं चाह रहे हो और मेरे धारण किये अन्यान्य रूपनकु चाह रहे हो तब भी तुम चाह तो तुम मोकु ही रहे हो.

ये विलक्षण रहस्य है अपनी पुष्टिभक्तिको के पुष्टिभक्तिको मूल महाप्रभुजी आत्मरतिमें खोजनो चाहे हैं. ये बात ध्यानसु समझो के आत्मरतिको ही विस्तार, उपनिषद्की भाषामें कहें तो परमात्मरतिको विस्तार ही जीवात्मरति है, जीवात्मरतिको ही विस्तार अपनी दैहिक रति है, दैहिक रतिको ही विस्तार विषयरति है, विषयरतिको ही विस्तार अपनी ममतास्पद विषयमें रति है. या तरहसु रतिको विस्तार समाज वगैरहमें बढतो चल्यो जा सके है. पर वो विस्तार है आत्मरतिको ही.

ये बात अपन कैसे समझें?

गये वर्ष भी मैने ये समझायो हतो के बल्बके भीतरके फिलामेंट्में प्रकाश उत्पन्न होवे है. काचके गोलामें प्रकाश नहीं होवे है. फिलामेंट्को प्रकाश काचके गोलामें आवे है, गोलामेंसु प्रकाश बाहर आवे है. समझो के काचके गोलाकु अपनने कोई आवरणमें रख्यो होवे तो वो प्रकाश पहले वा आवरणमें जायगो और पीछे कमरामें फैलेगो. कमरामें फैलेगो तो भींतनपे भी दिखलाई देगो. अभी जैसे अपनकु भींत-जमीनपे प्रकाश दिखलाई दे रह्यो है. पर ये प्रकाश भींत-जमीनको नहीं है. ये प्रकाश ट्यूबलाईट्को है. वामें जो प्रकाश है वो काचको नहीं है, भीतर जो प्रकाश है वो काचमें होके आ रह्यो है. ऐसे आत्मरति अपने अहन्तास्पद देहमेंसु प्रकट होके विषयमें आवे है, विषयमें जाके ममतास्पद वस्तुनमें जावे है. और जैसे एक परमात्मा अनेक जीवात्माके रूपमें विषयमें रमण कर रह्यो है या बातकु शुकदेवजीने

''गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषां व्रजवासिनां,
योन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक्''

कही है. तो जैसे परमात्मा जीवात्माके रूपमें रमण कर रह्यो है ऐसे पारमात्मिक रति ही अलग-अलग रतिके रूपमें क्रीडा कर रही है.

तब अपनकु सहज ही प्रश्न हो सके है के फिर भक्तिकी क्या जरूरत है? पर अपनकु ये सवाल कभी होवे है के भींतपे इतनो प्रकाश दीख

रह्यो है तो ट्यूबकी क्या जरूरत है? क्यों नहीं होवे है? क्योंके अपन जान रहे हैं के भींत-जमीनको जो प्रकाश दीख रह्यो है वो उनको खुदको नहीं है. ट्यूबको प्रकाश भींत-जमीनकु प्रकाशित कर रह्यो है करके ये सब प्रकाशित दीख रहे हैं. ऐसे आत्मरतिको प्रकाश वो ही देह-विषय-ममतास्पद सकल वस्तुकु प्रकाशित कर रह्यो है करके आत्मरतिके प्रकाशसु वो सब प्रकाशित हो रहे हैं. ये बात प्रभु आज्ञा कर रहे हैं : **''देहादिः यत्कृते प्रियः''**.

जाकु क्षणमें जीनो है वो ऐसे सोचेगो के जमीन-भींत सब प्रकाशित हो रही है फिर ट्यूबकी परवाह क्यों करनी! बिजलीकी क्यों परवाह करनी! सच बात है. ऐसे क्षणजीवीन्कु आत्मरतिकी आवश्यकता नहीं है. पर ऐसी क्षणजीवी होनेकी वृत्ति श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के प्रवाही जीवनमें काम करे है. ये जीव विषयके प्रवाहमें ही अपनी आत्मरतिकु खोजे हैं. आत्मरतिकु आत्मामें नहीं खोज सके हैं. जो आत्मरतिकु आत्मामें खोजे है वो ज्ञानमार्गी है. पर आत्मरतिकु जो परमात्मामें खोजे है वो भक्त है. ये श्रीमहाप्रभुजीको वर्गीकरण है.

परमात्माकु अपन विषयरतिके कारण भी खोज सके हैं जैसे मैने उदाहरण दियो के धंधा नहीं चलतो होवे तो अपन परमात्माकी भक्ति करें. शादि नहीं होवे तो भक्ति करें. ये सब विषयरतिके कारण होती परमात्माकी भक्ति है. विषयरतिके कारण विषयकु खोजनो और विषयरतिके कारण परमात्माकु खोजनो वामें एक स्टेप् बात ऊंचे आई है. पर भक्तिकी दृष्टिसु ये बात दो स्टेप् नीचे गई है. क्योंके भक्त ये सोचे है के विषयरतिसु परमात्माकु खोजनो ये विषयरतिसु भी खराब बात है. कारण क्या? अपन समझ सके हैं के डालीकु काटो या संवारो या पानी पिलाओ वासु वृक्षकु कोई ज्यादा हानि-लाभ नहीं होवे है. पर जडकु काटो या जडकु पानी पिलाओ वासु वृक्षकु बहोत हानी-लाभ होवे है. डाली काटनेसु भी वृक्ष तो कटे ही है पर बहोत ज्यादा हानि नहीं होवे है. क्योंके एक काटो तो दूसरी फूट जाय है. एक डालीपे पानी डालो तो वाके पत्ता चमकदार हो जायेंगे ये

सच है पर सारे वृक्षकु वासु बहोत लाभ नहीं होवे है. भक्त ये सोचे है के विषयरति करी या विरक्ति भई तो आत्मरतिकी कोई एक डालीकु काटी या सींची इतनीसी कथा है. ये बहोत सूक्ष्म बात है. पर वो आत्मरतिके कारण जो परमात्माकु खोज रह्यो है वो तो जडकु सींच रह्यो है न! और आत्मरतिके कारण परमात्माकु नहीं खोज रह्यो है और विषयरतिके कारण खोज रह्यो है तो वो आत्मरतिकी जडकु खोद रह्यो है. भक्तकु गभराहट या लिये ज्यादा होवे है के ये ज्यादा खतरनाक है. विषयरति उतनी खतरनाक नहीं है.

एक प्रसिद्ध गायकके पास दो संगीतके विद्यार्थी गये. एकने कही के मैं थोडो-बहोत सीखके आयो हूं. दूसरेने कही के मैं तो कछु भी नहीं जानुं हूं. दूसरकु उनने कही के कलसु तोकु सिखाउंगो. पहलेवालेकु उनने कही के तोकु ज्यादा फीस देनी पडेगी. क्योंके तोकु पहले गलत सीख्यो भयो भुलानो पडेगो पीछे सच्चो सिखानो पडेगो. यासु तोकु दुगनी फीस देनी पडेगी.

नयो मकान बनानो होवे तो झटसु बन जाय. पर जूने मकानकु रिपेर करनो होवे तो पहले तो पुरानो प्लास्टर उखाडनो, वाके मलबाकु हटवानो, नयो माल डलवानो, नयो प्लास्टर् करवानो ये सब ज्यादा लफडाकी बात है, यामें महेनत ज्यादा लगे है.

वार्तामें आवे है के दो जने श्रीगुसांईके पास आये. एकने कही के मैं तो संसारसु पूर्णतया विरक्त हूं. दूसरेने कही के मेरी आसक्ति अभी छूटी नहीं है. खाने-पहननेको शौख अभी मोकु है. श्रीगुसांईजीने दूसरेवालेकु सेवा पधराई. पहलेवालेकु कहीके तोकु अभी देर है. वाने पूछी तो श्रीगुसांईजीने कही के याकु थोडो-बहोत शौख है तो ठाकुरजीकु भी कछु लाड लडायेगो. और तू तो विरक्त है. ठंड पडती होयगी तो तु सोचेगो के ठंडमें ओढनो क्यों, तप करनो चहिये. तु तेरे ठाकुरजीकु भी ओढायगो नहीं. भोजनमें तेरी विरक्ति है तो तु ठाकुरजीकु भी अच्छी तरहसु भोग नहीं धरेगो. याकु समझो

के विषयानुरक्तिकु भगवद्भक्तिमें तुरत सुधारी जा सके है. पर विषयानुरक्तिसु करी जाती भगवद्भक्तिकु सुधारनो टेढो काम है.

बीमारीमें लोग एंटी बायोटिक दावाई लेवे हैं. एंटी बायोटिकसु रोग मिटे है पर यदि वाकु गलत ढंगसु लेवें तो अपने शरीरकु ही रोगको घर बना देवे है. कई लोग बीमार पडते ही एंटी बायोटिककी गोली खा लेवें. रोग नहीं मिटे तो दो गोली खावें. पर एंटी बायोटिकको खाता ऐसो है के यदि वाकु धीरे-धीरे बढाओ तो वो रोगके जन्तूनकु रास आने लग जाय है. यासु एंटी बायोटिक यदि लेनी है तो शुरुमैं वाको डोझ ज्यादा लेनो चहिये. पीछे धीरे-धीरे घटातो जानो चहिये. पर ऐसो नहीं करें और एंटी बायोटिक रोगके जन्तूनकु रास आ जाये तो वो दवा ही नये रोगनकु पैदा करे है. ऐसे विषयोपाधिक भगवद्भक्ति हृदयकु यदि रास आ गई, चलता है, चोर बनोके मोर यहां सब चलता है, तो फिर वाकु सच्ची भगवद्भक्तिमें सुधारनो बडो मुश्किल हो जाय है.

संस्कृतमें एक कहावत है : **''साक्षरा विपरीताश्चेत् राक्षसा एव केवलम्''**. 'साक्षरा' को उलटो राक्षसा होवे है. समझदार आदमी गुडा बने तो ज्यादा खतरनाक होवे है. और अनपढ आदमी गुंडा भयो तो वाकी गुंडागिरिमें भी अनपढपन झलकेगो. यासु वो उतनो खतरनाक नहीं होयगो जितनो समझदार आदमी गुंडा बने तो खतरनाक होवे है. ऐसे ही विषयोपाधिक परमात्मभक्ति करनेवालो व्यक्ति ज्यादा गडबडा जाय है, भगवद्भक्तिकी दृष्टिसु. और वैसे बात सच है के भगवान्सु कोई विमुख है और जो कोई भी निमित्तसु वो भगवान्सु अभिमुख हो रह्यो है वो भगवान्की दृष्टिसु अच्छो है. यासु ही भगवान् गीतामें आज्ञा करे हैं :

चतुर्विधा भजन्ते माम् जनाः सुकृतिनोर्जुन!
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ!

दुःखसु परेशान भी मोकु भजे है, मोकु जाननो चाहे है वो भी मोकु भजे है, जाकु लाभ चहिये है ऐसो अर्थार्थी भी मोकु भजे है. और जो ज्ञानी

है के जाकु कछु भी नहीं चहिये है, वो जान गयो है के मैं और वो क्या हैं, वो जाननेके बाद वाकु ये बात समझमें आई है के ऐसो स्वरूप परमात्माको है तो वाकु भजे बिना कैसे रह्यो जा सके है. यासु ज्ञानी भक्त मोकु अत्यन्त प्रिय है. यासु श्रीमहाप्रभजी भी आज्ञा करे हैं :

''ज्ञानी चेद् भजते कृष्णः तस्मात् नास्त्यधिकः परः''.

क्योंके ज्ञान होनेपे भजनको भाव होनो कठिन हो जावे है. पर ज्ञान होनेपे भी भजनको भाव कोईकु जग्यो तो वासु बढके ओर कोई स्थिति नहीं है.

ये ज्ञान कौनसो? फिरसु अपन मूल बातपे आवें. भींत-जमीन चमक रहे हैं वो ज्ञान नहीं पर ट्यूब चमक रही है वाको ज्ञान. दूसरी-दूसरी वस्तुकी चकाचोंधमें जाकी आंख अटक गई है वो ज्ञानी नहीं है. वो जिज्ञासु हो सके है. जाननो चाह रह्यो है. और जहां प्रकाश दीख रह्यो है वहां वो देख रह्यो है. पर जाने प्रकाशको स्रोत जान लियो है वो यदि भज रह्यो है तो

''प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थम् अहं स च मम प्रियः
...उदाराः सर्वएवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे मतः''.

ज्ञानी तो मेरी आत्मा बन जाय है. क्यों? क्योंके ज्ञानके कारण वाकु ये बात पता लग जाय है के मैं अपनी आत्माकु परमात्माके प्रिय होनेके कारण चाह रह्यो हूं. यासु ज्ञानी परमात्माकु अपनी आत्मा मान रह्यो है तो परमात्मा ज्ञानीकु अपनी आत्मा मान रह्यो है. जैसे अपन परमात्माकु सोच रहे हैं वैसो परमात्माको स्वरूप है. करके वो आत्मरति वहां प्रकट हो जाय है.

'ज्ञानी' शब्दसु ज्ञानमार्गी मत समझियो. ज्ञानमार्गी अलग साधक है और ज्ञानी अलग है. भक्त अलग बात है, भक्तिमार्गी अलग बात है. कैसे? अपनकु कोई लौकिक कामनाकी पूर्ति करनी है. वाकेलिये अपन भक्ति कर रहे हैं तो अपन भक्त भये के नहीं? पर भक्तिमार्गी नहीं हैं. भक्तिमार्गीको मतलब ये है के भगवान्के तरफ अपन भक्तिके मार्गसु आगे

बढनो चाह रहे हैं, लौकिक कामनाकी पूर्तिके मार्गसु अपन भगवान्के तरफ आगे बढनो नहीं चाह रहे हैं. भगवान् मोकु ये दे-वो दे तो मैं भगवान्कु भजुं ऐसे जो भगवान्कु भजे है वो भी भक्त तो है पर भक्तिमार्गी नहीं है. ऐसे ज्ञानी और ज्ञानमार्गी में अन्तर है. भगवान्कु जो जान रह्यो है वो ज्ञानी है. संसारी जीव भी यदि भगवान्कु जान रह्यो है तो वो ज्ञानी तो है ही. पर संसारी जीव ज्ञानमार्गी नहीं है. क्योंके ज्ञानमार्गी तो वो है के जो भगवान्के तरफ ज्ञानमार्गसु आगे बढनो चाहे है. भगवान्कु जाने है पर उनके तरफ आगे बढनो चाह रह्यो है संसारके मार्गसु तो ज्ञानी होते भये भी वो कह्यो जायगो संसारमार्गी ही. ऐसे ही कोई अपन भक्त हैं पर भगवान्की तरफ अपन यदि सांसारिक कामनाकु पूर्णकरनेके हेतुसु आगे बढ रहे हैं तो अपन संसारमार्गी ही कहलायेंगे, भक्तिमार्गी नहीं. और अपन सांसारिक जीव हैं, बहोत ज्ञानी या तपस्वी नहीं हैं पर भगवान्के साथ अपनकु जो नाता-रिश्ता जोडनो है वामें इन सारी बातनकु नहीं ला रहे हैं, वामें अपन केवल भक्तिको ही सम्बन्ध निभा रहे हैं तो अपन भक्तिमार्गी भये. भक्तिकु अपनने मार्ग बनायो, केवल उपाय नहीं.

मार्ग बनानो मतलब मार्गपे आरूढ होनो. दो तरहसु मार्ग बने है. एक तो सरकार मार्ग बनावे. सरकार अपने विभागकु योजना देवे और सूचना देदे के यहांसु वहां तक मार्ग बनानो है. सरकारी विभाग तदनुसार मार्ग बनादे. एक तो ये प्रक्रिया भई मार्ग बनानेकी. दूसरी प्रक्रिया चलते-चलते मार्ग बननेकी होवे है. कोई घनो जंगल है. वामेंसु लोग निश्चित दिशा पकडके नियमितरूपसु चलते रहें तो वामें पगडंडी बन जाय है, चलनेके कारण. चलनेके कारण मार्ग बननो और चलनो-वलनो कुछ नहीं है, ठेका लियो है करके मार्ग बनाके रख दियो. जाकु जानो होवे सो जावे नहीं जानो होवे तो नहीं जावे. ऐसे मार्ग दो तरहसु बानाये जाय हैं. इनमेंसु भक्तिमार्गी भक्तिकु मार्ग बना रह्यो है खुद चलके परमात्मा तक पहोंचनो चाह रह्यो है वा अर्थमें, ठेका लियो है वा अर्थमें नहीं. या अर्थमें वो केवल भक्त नहीं है, भक्तिमार्गी है. ज्ञानमार्गी भी भक्त हो सके है पर भक्तिमार्गी नहीं हो

सके है. ऐसे ही भक्त ज्ञानमार्गी हो सके है पर भक्तिमार्गी कभी ज्ञानमार्गी नहीं हो सके है. क्योंके भक्तिकु जाने मार्ग बनायो है वो भक्तिमार्गी है.

दूसरी तरह याकु सोचो. रेल्वेके इंजनको ड्राईवर् विमानमें उडके सा जसके है के नहीं? जा सके है. ऐसे ही विमानको पायलट् भी रेलमें यात्रा कर सके है के नहीं? कर सके है. पर एक बात समझो के जा बखत जो विमान चला रह्यो है वो वा बखत विमान चलातो भयो ट्रेनमें नहीं बैठ सके है. ऐसे ही जा बखत जो ट्रेन चला रह्यो है वो वा बखत वो विमानमें नहीं बैठ सके है. ट्रेन चला रह्यो है वो ट्रेनमार्गी है, विमान चला रह्यो है वो विमानमार्गी है. बाकी तो पायलट ट्रेनमें भी सवारी कर सके है और ट्रेनड्राइवर् प्लेनकी भी सवारी कर सके है. ये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है. ऐसे ही ज्ञानी कभी भक्तिमार्गपे आ जाय, भक्त कभी ज्ञानमार्गपे चल्यो जाय ये सम्भव है. पर भक्त ज्ञानमार्गपे चल्यो गयो करके वो ज्ञानमार्गी है ऐसे नहीं समझनो. ऐसे ही ज्ञानी भक्तिमार्गपे आ जाये वासु वाकु भक्तिमार्गी समझनेकी भूल नहीं करनी चहिये. क्योंके भक्तिमार्गपे जो आयो वो तो भक्तिमार्गी ही है. अपन संसारी जीव हैं पर भक्तिमार्गपे अपन आ गये तो अपन भक्तिमार्गी हैं. तो भक्तिमार्गी संसारी भी हो सके है, असंसारी भी हो सके है, ज्ञानी भी हो सके है और अज्ञानी भी भक्तिमार्गी हो सके है. क्योंके भक्तिमार्गी वो है के जाने भक्तिकु मार्ग बनायो है. वाकी प्रारम्भिक अवस्था कुछ भी हो सके है. ऐसे ही ज्ञानमार्गी मतलब जाने ज्ञानकु मार्ग बनायो है वो. वो भक्त भी हो सके है, संसारी भी हो सके है और अज्ञानी भी हो सके है. अज्ञानी भी ज्ञानमार्गी हो सके है. क्योंके आज वो अज्ञानी है पर ज्ञानमार्गपे आगे बढेगो तब ज्ञानी हो जायेगो. यासु अज्ञानी ज्ञानमार्गी नहीं हो सके है ऐसी बात नहीं है. पर एक बात समझो के अज्ञानी ज्ञानी नहीं हो सके है और भक्त कभी भी अभक्त नहीं हो सके है. यासु इन विभाजनकु स्पष्ट समझनो चहिये.

याके कारण अपन यों सोचे हैं के आत्मरतिके कारण जब अपन

प्रभुकु खोज रहे हैं तब तो वो भक्तिको सच्चो स्वरूप है. और आत्मरतिके कारण अपन मुक्ति या विषयानुरक्ति कु खोज रहे हैं तो वापर तो आत्मरति रहे हैं पर आत्मरतिकु भक्तिमार्गी बनाके नहीं वापर रहे हैं, अभक्तिमार्गी बनाके वापर रहे हैं.

जैसे कारको डायनेमा चले तो कार चले है. डायनेमा चले तो कार वाकु खींचके चले. पर कार रोडपे भी चल सके है, खड्डामें भी गिर सके है. चलती कार ही तो गिरेगी. खडी तो गिरेगी नहीं. जाको डायनेमा चल रह्यो है वो ही कार तो खड्डामें गिरेगी! जाको डायनेमा फैल हो गयो होवे वो तो खडी हो जायेगी. जाको डायनेमा चल रह्यो है वो कार पहाडपे भी चढ जायेगी, खड्डामें भी गिर सकेगी, जहां पहोंचनो है वहां पहोंचा भी देगी, आगे भी जा सकेगी, पीछेभी जा सकेगी. शर्त है डायनेमा चलनेकी. ऐसे आत्मरति अपनकु विषयानुरक्तिके तरफ भी ले जा सके है, ज्ञानमार्गीय मुक्ति भी दिलवा सके है और वो ही आत्मरति भगद्भक्तिके तरफ भी ले जा सके है. तो जो आत्मरति भवद्भक्तिके तरफ अपनकु ले जावे है वाकु अपन ये कहेंगे के वाको मूल आत्मरति है, विषयानुरक्ति या विषयविरक्ति नहीं है. आत्मरतिके कारण भक्ति प्रकट हो रही है विषयानुरक्तिके कारण या विरक्तिके कारण नहीं. ये सूक्ष्म प्रभेद है जाकु लोग अक्सर ध्यानसु समझें नहीं हैं और यद्वा-तद्वा सोचते रहे हैं.

या रहस्यकु समझो के अपने यहां राधाजीको स्वरूप कितनो महत्त्वपूर्ण है. करके श्रीगुसांईजी आज्ञा करे हैं :

''रहस्यं श्रीराधेत्यखिलनिगमानामिव धनम्
निगूढं मद्वाणी जपतु सततं जातु न परम्''.

श्रीराधाजी निखिल वेदको कीमतीमें कीमती धन हैं. पर निगममें तो राधाजीको वर्णन ही नहीं है! पर निगममें आत्मरतिको वर्णन है.

''न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति,

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति''
''आत्मरतिः आत्ममिथुनः आत्मक्रीडः''
''आत्मन्यैव आत्मानं पश्येत्''

ऐसे एक स्थलपे नहीं प्रत्येक उपनिषद्में जब भी कोई बात कही जाय है तो वो आत्मरतिकु ही समझानेकेलिये कही जावे है. करके राधाजीको स्वरूप अपन आत्मरतिके रूपमें नहीं समझें... मने आत्मा = कृष्ण और रति = श्रीराधाजी हैं या तरहसु अपन राधा-कृष्णको सम्बन्ध नहीं समझें तब तक अपनकु ''निगमानामिव धनम्'' वाको अर्थ ही समझमें नहीं आयेगो. राधाजीकु आत्मरतिके रूपमें देखें तो ही या पंक्तिको अर्थ समझमें आ सके है.

या बातकु समझानेकेलिये श्रीमहाप्रभुजी रतिकी बडी गम्भीर विवेचना करी है. वा विवेचनामें जानेको कोई प्रसंग नहीं है. वाके अन्तमें श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के रति परमात्माको धर्म है. जैसे सूर्यको धर्म प्रकाश है ऐसे परमात्माको धर्म रति है. और जैसे-जैसे परमात्मासु अपन करीबी महसूस करें ऐस-ऐसे वो अपने भीतर प्रकट होवे है ''अग्नेः औष्ण्यवत्''. जैसे अपन अग्निके करीब जायेंगे ऐसे अग्निकी गरमी अपनकु महसूस होने लगे है. और अग्निकु छू जाय है वो अग्निकी तरह प्रज्वलित हो उठे है. ऐसे रति परमात्माको धर्म है. वाके कारण प्रभुने अपनी रति सबकु खंडशः बांटी है. क्यों? क्योंके जीवात्मा भगवान्को अंश है यासु वो रति अंशात्मना सबकु वारसामें मिली है. अब सवाल ये है के जीव वाकु मिली भई रतिकु विषयमें वापरे, मुक्तिमें वापरे के भक्तिमें वापरे. यदि वो आत्मरतिकु भक्तिमें वापर रह्यो है तो वैसी भक्तिकु श्रीमहाप्रभुजी सच्ची भक्ति कहे हैं. और यदि मुक्ति या सांसारिक विषयनकु पानेकलिये भक्ति करी जा रही है तो वैसी भक्ति करनेवालो भक्त तो हो सके है पर वो भक्तिमार्गी नहीं कहलायेगो. भक्त होनो एक बात है, भक्तिमार्गी होनो दूसरी बात है. ये सूक्ष्म बात है. याकु अपन समझें तो आत्मरतिके महत्त्वकु अपन समझ सकेंगे.

यासु श्रीगुसांईजी आज्ञा करे हैं के ''**कृपयति यदि राधा बाधिताशेषबाधा किमपरमवशिष्टं पुष्टिमर्यादयोर्मे**''. श्रीराधाजी यदि मेरे ऊपर कृपा करें तो मेरी सारी बाधाएं दूर हो गयीं. न कुछ मर्यादामें मेरे कछु बाकी रह गयो न पुष्टिमें कछु बाकी रह गयो.

वैसे ये स्वामिनीजीके अर्थमें करी गई ये स्तुति है पर याकु ऐसे सोचो के मेरे भीतर रही भयी आत्मरति मोकु मिस्गाईड् करनो बंद करदे तो बाकी पानेकेलिये क्या बच्यो? आत्मरति ही तो मोकु मिस्गाईड् कर रही है. करके मैं संसारमें या तो फंसनो चाह रह्यो हूं या संसारसु मुक्त होनो चाह रह्यो हूं. पर या संसारको विधाता परमात्माकु नहीं भजनो चाह रह्यो हूं. मैं हर वक्त येही द्वन्द्वमें फंस्यो रहुं हूं के या संसारकु भजुं के या संसारसु भागुं. पर भजनो अथवा भागनो ये दो छोर हैं. इनके बीचमें एक तीसरो मुकाम भी है. वो है न भजुं और न भागुं पर या संसारकु प्रकट करनेवाले परमात्माकु भजुं. बाकी जो होयगो सो देखी जायगी. आत्मरति प्रसन्न हो गई. आत्मरतिने मेरेपे कृपा करदी तब ये भाव जग्यो. याकु श्रीमहाप्रभुजी पुष्टिभक्ति कहे हैं. प्रभुकी पुष्टि हो गई तो आत्मरति भक्तिमें खिल गई. यदि प्रभुकी पुष्टि नहीं भई तो आत्मरति भक्तिमें खिल नहीं सके है. यदि आत्मरति भक्तिमें खिल नहीं सके है तो वो या तो विषयानुरक्तिमें खिलेगी या फिर विषयविरक्तिमें खिल जायेगी. वो इन दो छोरन्पे जायेगी, परमात्माकु नहीं पकड पायेगी. करके आत्मरतिको महत्त्व वेदान्तकी दृष्टिसु कितनो अधिक है वाकु समझें तो कृष्णके साथ जीवात्म-परमात्मभावके सम्बन्धमें श्रीराधाजीको प्राकट्यको उत्सव आत्मरतिके प्राकट्यको उत्सव है. या दृष्टिसु राधाष्टमीकु एक बखत मनाके देखो के आज तो मेरी आत्मरति कृष्णकेलिये प्रकट भई है.

मैने श्रीगुसांईजीके या स्तोत्रकी भावनासु एक पद बनायो हतो.
जय जय जय श्रीराधा,
रावलमें रससरिता उपजी, गोकुलमें रससिंधु अगाधा ।।

आप व्रज गये होगे तो पता होयगो के रावल और गोकुल बहोत कम अन्तरपे है. अब रावलमें जो सरिता प्रकट भई वो गोकुल पहोंचते-पहोंचते सागर कैसे बन गई? तो मैने एक कडी जोडी है :

कर्मयोग पुनि ज्ञानयोग की भक्तिपंथ हर लीनी बाधा ।

यदि तुम्हारी कृष्णकेलिये आत्मरति प्रकट हो जाये, श्रीराधाजी अपने यहां प्रकट हो जायें तो जैसे श्रीमहाप्रभुजीने आज्ञा करी ऐसे अपनो नित्यरमण प्रभुके साथ शुरु हो गयो. ये नित्यरमण शुरु भयो करके ठाकुरजीने दानमें ये बात समझाई के '

'यहीं हमारो राज है, व्रजमंडल सब ठौर,
तुम हमारी कुमुदिनी हम कमलवदनके भौंर,
इनसों कहा दुराईये राधा मेरो अंग''.

दान :

दानको उत्सव राधाजीके प्राकट्यके कारण अपने जीवनमें आवे है. तब ठाकुरजी अपनेपे दावा कर सके हैं के यदि तुम्हारी आत्मरति मेरे तरफ आ रही है तो अब याको दान... आजकल 'दान'को मतलब दान-दक्षिणा वालो दान समझे हैं. पर ये वो दान नहीं है. ये दान चुंगीवालो है. भगवान् कहे हैं के अब तुमकु जो भी विषय आत्मरतिके कारण अच्छे लगते होवें तो वाको टेक्स मोकु देनो पडेगो. मोकु टेक्स दिये बिना ये माल तुम दूसरी जगह भिजवा नहीं सकोगे. किशनगढमें ट्रक् घुसती तो यहांकी नगरपालिकाकु चुंगी भरनी पडती हती. फिर जहां जानो होवे वहां जाओ.

''तस्माद् आदौ सर्वकार्यो सर्ववस्तुसमर्पणम्''

में कहे अनुसार अपन जब समर्पण करे हैं वो तो अपनी ओरसु करे हैं पर जब गांडा गिरिधरलालकी तरह ठाकुरजी बेंत लेके ठाडे हो जावें और अपनो समर्पण जबरदस्ती करवावें

''अन्तरंगसों कहत हैं सब ग्वालिन राखो घेर, नागरि दान दे.
बहोत दिना तुम बच गयीं दान हमारो मार,
आज हों लेहों आपनो दिन-दिनको दान सम्हार, नागरि दान दे''.

सहस्रपरिवत्सरकी मेरी चुंगी तुमने चोरके विषयनमें बांटदी है या वा आत्मरतिकु तुमने मुक्तिमें खपादी है उन सबकु मैं वसुलूंगो. *''ले लकुटी ठाडे रहे जान सांकरी खोर''*. ठाकुरजी लकुटी लेके ठाडे हैं के पहले मेरी चुंगी लाओ. मोकु समर्पित किये बिना तुम आत्मरतिकु दूसरी जगह कैसे वापर रहे हो! ये अपनो दानको उत्सव है. मोकु पहले तुम्हारी आत्मरतिकी चुंगी भरो **''तस्माद् आदौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्''**. पीछे प्रसादके रूपमें तुम वाको चाहो ऐसे भोग करो. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं **''सर्वेषां ब्रह्मता ततः''**. आत्मरतिको पहलो भोग अपनने ठाकुरजीकु धर्यो पीछे प्रसादके रूपमें वाकु जहां बांटनी होवे बांटो. भगवत्प्रसादके रूपमें आत्मरति बंटनी चहिये **''न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तसमर्पणम्''**. आत्मरतिकु पहले ओर कहीं बांटके पीछे देवाधिदेव ठाकुरजीकु उनको उच्छिष्ट लिवानो अच्छी बात नहीं है.

समर्पण और दान को मीठो सम्बन्ध है. जब अपन अपने ढंगसु कर रहे हैं तो वो समर्पण है. और जब ठाकुरजी

''ले लकुटी ठाडे रहे जान सांकरी खोर,
आज हों लेहों आपनो दिन-दिनको दान सम्हार, नागरी दानदे''

ऐसे जबरदस्ती समर्पण करवा रहे हैं वो दान है. ऐसो प्रभु तब करवायेंगे के जब नागरी होयगी. आत्मरति रूप नागरी अपने हृदयमें प्रकट भयी होयगी तो ठाकुरजी दान लेंगें. नहिं तो नहीं लेंगे. सखीने ये ही कही के *''जानत हो यह कौन है ऐसी ढीकर्यों देत''* तो ठाकुरजीने कही के *''श्रीवृषभानकुमारी हैं अरी तोहि बीच को लेत!''*. तू बीचमें क्यों बोल रही है! हम अच्छी तरहसु जान रहे हैं के आत्मरति हमारेलिये है और हम आत्मरतिकेलिये हैं. यामें बीचमें कोईकु खट-पट करनेकी जरूरत नहीं है. अपनेमें भी इतनो माद्दा भगवद्भक्तिको होनो चहिये.

लोग अपनसु पूछें के भक्ति क्यों करनी? सेवा क्यों करनी? हमकु समझाओ. अरे समझानेकी क्या जरूरत है? क्यों समझावें? कल तो तुम

पूछोगे के खानो क्यों चहिये ये समझाओ! सांस क्यों लेनो ये हमकु समझाओ! ये कोई समझानेकी बात है. सांस लेनो हमारो स्वभाव है, खानो हमारो स्वभाव है. सांस और खाने के कारण हम जी रहे हैं. ऐसे सेवा-भक्ति करनो वो हमारेलिये सांस लेने और खाने के जैसी अनिवार्य आवश्यकता है. वामें क्यों क्या होवे! कोई ज्यादा पूछे तो कह देनो के समय बरबाद करनेकेलिये करे हैं. अपने भीतर इतनी हिम्मत होनी चहिये. अपनकु कोईकु समझानेकी परवाह क्यों करनी? अपनो सवाल ये है के सेवा-भक्ति क्यों नहीं करनी ये तुम हमकु समझाओ. करनो ही है. आत्मरति जब कृष्णाभिमुख हो गई तो कृष्ण या सांकरी खोरमें

''अति छीन मृणालके तारहुते तिहिं ऊपर पांवते धावनो है,
यह प्रेमको पंथ कराल महा तलवारकी धारपे धावनो है''

वैसी सांकरी खोरपे लकुटी लेके गांडा गिरिधरलाल ठाडो हो जायेगो के पहले तुम समर्पण करो पीछे आगे बढो. भूल कैसे गये!

जब श्रीनाथजी सतघरा श्रीगुसांईजीके घरमें पधारे तब परिवारने अपनो सर्वस्व श्रीनाथजीकु भेंट धर दियो. पर एक छोटे बेटीजीकी नाककी सोनेकी वारी गलतीसु भेंट धरनी बाकी रह गई. श्रीनाथजीने वो देख्यो तो आपने मांगके वो ली. ये क्यों बाकी रख्यो? धरो भेंट! ये ''ले लकुटी ठाडे रहे''वाली बात है.

ऐसो ही प्रसंग धोंधीकी वार्तामें आवे है. धोंधी नवनीतप्रियजीके सन्मुख कीर्तन कर रहे हते. ठाकुरजी उनके कीर्तन सुनके ऐसे तल्लीन हो गये के कीर्तनके संग ठेका देने लगे. श्रीगिरिधरजीकु ये दर्शन भये तो आनन्दमें भरके उनने अपने सोनाके कडा उतारके ठाकुरजीपे न्योछावर करके धोंधीकु दे दिये. कुछ लोगनने या बातकी फरीयाद श्रीगुसांईजीकु करी. श्रीगुसांईजीने गिरिधरजीकु पूछी के ऐसी क्या बात भई. जब गिरिधरजीने सब बात कही तो श्रीगुसांईजीने गुस्सामें आके कही के ऐसे दर्शन भये तो केवल कडा ही क्यों न्योछावर किये, सर्वस्व न्योछावर कर देनो चहितो हतो! या

दर्शनकेलिये ही तो अपनी आंखें तपडती रहनी चहिये! ये आत्मरतिको भाव है. ये भाव प्रकट होवे है वाके कारण दान प्रकट होवे है. और दान प्रकट होवे है वाके कारण नवरात्रि प्रकट होवे है. और नवरात्रिके कारण दशहरामें वाको विजय होवे है. नवविधा भक्तिपे भजनीय परमात्माकी विजयको उत्सव दशहराके दिन मनावें हैं. रामलीलामें तो रामचन्द्रजीके लंकाविजयके जवारा धराये जाय हैं पर कृष्णलीलामें नवविध भक्तिपे कृष्णके विजयके जवारा अपन धरावे हैं. कृष्ण सुननो अच्छो लगे, वाणीसु कीर्तन करनेकेलिये अपनकु कृष्णकथा अच्छी लगे, मनसु स्मरण करनेकेलिये कृष्णके नाम-रूप-लीला अच्छे लगें. ऐसे अर्चन, वन्दन, पादसेवन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ये नवविध भक्ति और दशमी प्रेमलक्षणा भक्तिसु भजनीय अपनकु कृष्ण ही लगने लगे तो कृष्णने अपने जवारा दशहराके दिन धर लिये. आज कृष्ण जीत गयो. अब भक्तिकी कोई भी विधा ऐसी नहीं रह गई के जामें कृष्णके अलावा कोई ओर पसंद आतो होवे. रामने जैसे रावणकु जीत लियो ऐसे कृष्णने अपनी अभक्तिकु जीतली. अपने भीतर रही भयी अभक्तिवाली मनोवृत्तिकु जीतली. ये विजय जब होवे तब जाके शरत्पूर्णिमा आवे है. आत्मरति और परमात्मा को रमण जहां प्रकट होवे है. करके भागवत आज्ञा करे है :

''आत्मारामोपि अरीरमत्''.

आत्मारामने ये रमण कियो है, आत्मरतिवश रमण कियो है. प्रभुने आत्मनि अवरुद्ध सौरत होके रास कियो है. यामें न तो गोपिकानको विषयासक्तिको भाव है और न भगवान्‌को ऐसो भाव है. ये प्रकट्य आत्मरतिके बीचमें परमात्माके होने और तिरोहित होनेकी लीला है. ये लीला शरत्पूर्णिमाको प्राकट्य है.

ये सब एक साथ जुडे भये उत्सव हैं जो राधाष्टमीसु प्रकट होके शरत्पूनम तक आ रहे हैं. इनके भीतर सारी सिस्टम् अपने पुष्टिमार्गीय उत्सवकी छुपी भई है. कौनसी सिस्टम्? वो के जो अपनी पुष्टिभक्तिको मूल आत्मरतिमें खोज रही है. जो सिस्टम् अपने भजनीयको रूप परमात्मतया

खोज रही है जाकु श्रीमहाप्रभुजीने कह्यो के भगवानने अपनो धर्म सबकु खंडशः बांट्यो है. वाकु जीव जहां वापरने लग जाये वहां वाकु प्रेम हो जाय है. धनमें वापरे तो धनमें प्रेम हो जायगो, देहमें वापरो तो देहमें प्रेम हो जायगो अपने परिवारमें वापरो तो परिवारमें प्रेम हो जायगो. एक बात समझो के आदमी यदि कष्टमें वापरने लग जाये तो अपनकु कष्टमें भी प्रेम हो जाय. अभ्यासकी बात है. मिर्चि खानो जीभकेलिये, पेटकेलिये कितनो कष्टदायक होवे है. पर अपन रोज आत्मरतिकु मिर्चि खानेमें लगावें तो अपनकु मिर्चिसु प्रेम हो जाय है. आंखमें आंसु आते होंय, पेटमें जलन होती होवे, खून गिरतो होवे पर मिर्चि छूटे नहीं. क्योंके आत्मरति अपनने मिर्चिमें वापरदी है. आत्मरति ऐक ऐसो स्ट्रोंग् डायनेमा है के वाकु जहां वापरो वहां वो अपनी गाडीकु भगाके ले जा सके है. कोई दिन तो ऐसो आवे के वो आत्मरति अपने प्रभुकी तरफ अपनकु भगाके ले जावे! जा दिन वो अपनकु कृष्णके तरफ भगाके लेगयी वा बखत अपनी राधाजीके साथ कृष्णकी रासलीला शुरु हो गई.

रासलीलातक अपन गये हते. पाछे लौटके अपन राधाष्टमीपे आये. पाछे अपन रासलीला तक आये.

गोपाष्टमी :

गोपाष्टमीको उत्सव शुद्ध व्रजलीलाको उत्सव है. अपन व्रजकी भावनासु व्रजाधिपकी सेवा करे हैं. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं

''ही-ही-ही-हींकारान् प्रतिपशुवने कुर्वति सदा,
नमद्ब्रह्मेशेन्द्रप्रभृतिषु च मौनं धृतवती''.

जब ठाकुरजी गोकुलमें प्रकटे तो गोकुलवासीन्‌को कर्म, गोचारण, वाकु श्रीठाकुरजी स्वीकारे हैं. एक बात ध्यानसु समझो के ये घटना प्रभुके स्वभावकी सूचक है. सूचक कौनसे अर्थमें? जैसे रघुकुलमें ठाकुरजी प्रकट तो धनुष-बाण चलानो सीखने आप पधारे हैं. और ऋषिन्‌को प्रजाको रक्षण कैसे करनो वामें श्रीरामने कुमारावस्थामें ही अभिरुचि दिखाई. ये अभिरुचि

या बातको प्रमाण है के भगवान् जहां प्रकटे हैं वहांको रूप ही केवल धारण करें हैं इतनो ही नहीं वहांके कर्तव्यकु भी आप धारण करे हैं और निभावें हैं. प्रभुको ये स्वरूप अपनेलिये सूचक है के अपने घरमें ठाकुरजी बिराजे हैं तो अपने जो भी कर्म हैं उनकु अपने ठाकुरजी निभायेंगे. करके ब्राह्मणके घरमें ठाकुरजी ब्राह्मणकर्म निभायेंगें, क्षत्रियके घरमें क्षत्रियाचार, वैश्यके घरमें वैश्याचार और शूद्रके घरमें ठाकुरजी शूद्राचार निभायेंगे.

भगवानने या बातकु गीतामें भी समझायी है

''न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन,
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्तएव च कर्मणि''.

तुमकु कर्म करनेकेलिये या लिये बाधित होनो पडे है क्योंके तुमकु कर्म करके कुछ हांसिल करनो है. पर मेरे लिये तीनों लोकन्में ऐसो कोई कर्म नहीं है के जाकु मोकु बाधित होके निभानो पडे. क्यों? क्योंके कर्म करने पीछेकी तीन-चार शर्तें होवे हैं : या तो चीज पैदा नहीं भयी है वाकु पैदा करनेकेलिये कर्म करनो पडे. जैसे खेती. या कोई चीज पैदा हो गयी है पर अपनकु हांसिल् नहीं भयी है तो वाकु हांसिल् करनेकेलिये कर्म करनो पडे है. जैसे अपनकु किशनगढसु जयपुर जानो है तो अपन वाहन पकडेंगे. ये कर्म प्रापक कर्म कह्यो जायेगो, उत्पादक कर्म नहीं कह्यो जायेगो. उत्पादक कर्म किसान करे है. तो कुछ कर्म उत्पादक होवे हैं, कुछ प्रापक होवे हैं तो कुछ संस्कार मात्र होवे हैं. इनसु उत्पन्न या प्राप्त कुछ भी नहीं होवे है पर संस्कारसु वस्तुमें सुधार होवे है वो उपयोगके लायक बने है. जैसे धूल पोंछनो. ये एक संस्कार है. अपने यहां वर्णाश्रमके अन्तर्गत सोलह संस्कार बताये हैं. ऐसे कर्म कई कारणनूसु किये जाये हैं. प्रभु अर्जुनकु कह रहे हैं के ऐसे कोई भी हेतुसु बाध्य होके मोकु कर्म करने नहीं पडे हैं. क्योंके प्रभुकु कछु भी अप्राप्त नहीं है. यासु कछु पावेकेलिये प्रभुकु कोई कर्म करनो नहीं पडे है. प्रभुके अलावा कुछ है ही नहीं तो वो पायेंगे कौनकु! पायेंगे तो खुद्कु ही पायेंगे. ऐसेही प्रभुकु कछु पैदा करनेकेलिये भी कोई कर्म करनो नहीं पडे है. क्योंके आपने इच्छामात्रसु समग्र सृष्टि प्रकट करदी है.

''स ईक्षाञ्चक्रे. स आत्मानं द्वेधापातयत्.
तस्माद् वा एतस्माद् आत्मन आकाशः सम्भूतः''.

अब रही बात संस्कारकी. कोई रॉ पथ्थर होवे वाकु छेंनीसु छीलके शिल्पकार मूर्ति बनावे है. पर ऐसी पराधीनता प्रभुमें नहीं है. अपने पुराण ऐसी कथासु भरे पडे हैं के वरदान देनेमात्रसु लोग सुधर जावे हैं. गायत्री मन्त्र अपनकु ये सिखावे है के भगवान् अपनी बुद्धिकु प्रेरणा देवे हैं. **''धियो यो नः'' ''बुद्धिप्रेरककृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु''**. वो अपनी गरदन पकडके कोई कर्म नहीं करावे है, प्रेरणा देवे है. यासु संस्कार कर्म करवेकी वाकु आवश्यकता नहीं है. पर फिर भी भगवान् कहे हैं के यद्यपि मोकु करनो पडे ऐसो कुछ भी कर्म नहीं है फिर भी मैं जिन सन्दर्भनमें प्रकट भयो हूं उन सन्दर्भमें करनेके जो कर्म हैं उनकु मैं सचाईसु करुं हूं. अर्जुनने कारण पूछ्यो तो भगवानने उत्तर दियो के

यदि ह्यहं न वर्तेऽयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः,
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ! सर्वशः,
उत्सीदेयुर् इमे लोकाः न कुर्यां कर्म चेद् अहं,
संकरस्य च कर्ता स्याम् उपहन्याम् इमा प्रजा''.

मैं कर्म नहीं करुंगो तो लोग मोकु मोडल् मानके वो भी कर्म नहीं करेंगे. *''अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम, दास मलूका कह गये सबके दाता राम''.* राम सबके दाता हैं ये बात सच्ची है. पर या वचनको उपयोग निकम्मे आदमी अधिकर करते होवे हैं. रामपे पूर्ण विश्वास रखके बैठनो तो विरले योगीको काम है, सबके बसकी बात नहीं है.

अकबर-बीरबलकी कथामें आवे है. एक दिन अकबरने बीरबलकु कही के अपने राज्यमें ऐदी कितने हैं याकी तलाश करो. उनकेलिये ऐदीखाना बनाओ. लोगनकु ये पता चली के ऐदीखानामें तो मुफतको खाना मिले है करके बहोत लोग ऐदी बनके आ गये. राजाकु आश्चर्य भयो के वाके राज्यमें इतने सारे ऐदी हैं! वाने सच्चे और जूठे ऐदीकी परीक्षा

करनेकेलिये ऐदीखानाकु आग लगानेको आदेश दियो. आग लगते ही सारो ऐदीखाना खाली हो गयो. आखिरमें सच्चे ऐदी दो मामा-भानेज हते वो बचे. भानजेकु आगकी पहेले पता लगी. पर आलस्य इतनो के वासु 'मामा' ऐसे पूरो सम्बोधन भी बोल्यो नहीं गयो. वो बोल्यो 'मा'. मामाने जवाब दियो तो वाने कही 'आग'. पर उनकु आलस्य इतनो हतो के उठ्यो नहीं जा रह्यो हतो. बादशाहने इन दोकु ऐदीखानाके परमेनेंट् सदस्य बनाये.

तो समझनेकी बात ये है के ''सबके दाता राम'' ये भाव रखके कुछ किये-धरे बिना बैठ जानो ये बहोत बडी सिद्धिकी बात है. बाकी ''दे दाताके नाम तुझको अल्ला रखे'' कहके कई लोग बैठ जाते होवे हैं. यासु भगवान् कहे हैं के मैं खुद भी कर्म करुं हूं. भगवानने अर्जुनकु तो कह्यो पर व्रजमें तो आपने ये करके दिखायो है के मैं ग्वालनके बीच प्रकट भयो हूं तो गोचारण करूंगो. ''*अनुदिन गैया चारी*'' सूरदासजी कहें हैं. मैं अक्सर या प्रसंगकु कहुं हूं के जब मोहना भंगीकु ठाकुरजी छू गये तो गोविंदस्वामीने ठाकुरजीकु पकडके कुंडमें डुबकी लगवाई. तब श्रीगुसांईजीने गोविंदस्वामीसु पूछी के ब्रह्म छू जाये क्या? तब उनने जवाब दियो के ब्रह्म तो नहीं छुवे पर ब्रह्म अभी आपकी मेंडमें बिराज रह्यो है तो आपकी मेंड छुवे के नहीं! आपको बालक ऐसो करतो तो आप वाकु न्हवाते के नहीं! यापेसु ये सिद्धान्त आयो के ठाकुरजी नहीं छुवे, मेंड-अपरस छुवे है. मेंड घर-घरकी अलग होवे है. हमारे तातजी महाराजकी मेंड अलग हती. वो हमारे दादाजीने नहीं पाली हती. दादाजीकी मेंड आज हम नहीं पाल रहे हैं. सभी जगह ये ही स्थिति है. मेंड कहीं भी कुछ भी होवे, आपके ठाकुरजी आपके घरकी मेंड पालेंगे ''वर्तएव च कर्मणि''.

प्रभु जिनके बीचमें बिराज रहे हैं उनके अनुरूप होनेकी जो लीला प्रकट करी वाको उत्सव गोपाष्टमी है. और प्रभुकी भक्तसमाजानुरूपता ... मैं इतने बखतसु बता रह्यो हूं के ठाकुर अपने मापको होनो चहिये वो ठाकुरजीने गोपाष्टमीके दिन बतायो है. यासु अपने ठाकुरजी वेणु-वेत्र-

कम्बल धरे है जो ग्वालान्की वस्तुए हैं. ये प्रभुकी भक्तानुरूपता है. प्रभु भक्तानुरूप होयेंगे तो भक्त प्रभुके अनुरूप हो पायेंगे ये श्रीमहाप्रभुजीको सिद्धान्त है. यदि भगवान् भक्तानुरूप नहीं होवें तो भक्तकी इतनी सामर्थ्य नहीं है के वो स्वतः भगवदनुरूप हो सके. भगवान् यदि भक्तके बीचमें प्रकट नहीं होवें तो भक्तकी इतनी सामर्थ्य नहीं है के वो भगवान्के बीच स्वतः प्रकट हो सके. और तकलीफ पाछी ये है के यदि भक्त भगवान्के बीच प्रकट हो जावे तो यहां भूतलपे लोग छाती कूट-कूटके रोयेंगे, शोकसभाएं करेंगे के इनको तो वैकुण्ठवास हो गयो. वैकुण्ठवास भयो तो अच्छी बात भयी के बुरी बात भई! पर लोग शोकसभामें कहे हैं के हम सखेद सूचित करे हैं के हमारे पिताजीको वैकुण्ठवास हो गयो!! वैकुण्ठवास हो गयो वाको तुम दुःख जता रहे हो तो तुम क्या नरकवास चाहते हते! तुम चाहते क्या हते? यामें खेद को क्या विषय है. पर मनुष्यकी ये तकलीफ है. यदि कोई भगवान्के बीच चल्यो जावे तो भी लोक दुःखी होवे हैं. हकीकत तो ये है के मनुष्य जब जन्मे है तब रोतो भयो जन्मे है और जब मरे है तब वाके पीछे सब लोग रोते होवे हैं. यासु मनुष्यको जीवन रोनेसु शुरु होवे है और रोनेपे समाप्त होवे है. पर भगवान् यदि मनुष्यके बीच प्रकट होवें तो फिर आनन्द ही आनन्द है.

''व्रज भयो महरके पूत जब यह बात सुनी,
सुनि आनन्दे व्रज लोग गोकुल गनित गुणी''.

उपनिषद् भी कहे है :

''आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
आनन्देन जातानि जीवन्ति,
आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तदिवजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म''.

भगवान्को स्वरूप ऐसो होनेसु जब भगवान् अपने बीचमें प्रकटे हैं तब आनन्दसु ही सब कर्म भी करे हैं. भगवान् तो अपने अनुरूप होने इतनो तैयार है जैसे कच्ची मिट्टीको लोंदा. वाकु जैसो आकार देनो होवे वो दो. भगवान् तैयार हैं. अब अपनो सवाल है के अपन पके घडा टूटनो चाह रहे हैं के भगवान्के अनुरूप होनो चाह रहे हैं. शायद भगवान्के अनुरूप न हो

पायें तो न सही पर भगवान्केलिये तो हो जायें! भगवान्के तो हो सके हैं! यदि आज भगवदर्थ भये तो कल अपन भगवान्के हो सकेंगे. कल अपन भगवान्के भये तो परसों अपन भगवदनुरूप हो सकेंगे. ये भगवदनुरूप होनेके स्टेप्स हैं. इन सीढीन्कु समझानेकेलिये श्रीमहाप्रभुजीने गोपाष्ठमीको उत्सव उतने ही आनन्दसु मनायो.

गोपाष्टमीके पदनमें वर्णन है के ठाकुरजी गोचारण करके पाछे व्रजमें पधारे हैं तब यशोदाजीकु अपने गोचारणकी बात सुनावे हैं के मैया मैने कैसे-कैसे गैया चराई. ऐसे यदि ठाकुरजी कोई मरजादीके घर प्रकटेंगे तो गर्वसु कहेंगे के मैने कैसी-कैसी मरजाद पाली. याकु छुवा दियो, वाकु छुवा दियो. क्योंके मरजादीके घरमें प्रकटे हैं न! और यदि बिन मरजादीके घर प्रकटेंगे तो ठाकुरजी मरजाद तोडनेको आनन्द लेंगे के मैने ये मरजाद भी नहीं पाली, वो मरजाद भी नहीं पाली. ताजबीबीके घरमें ठाकुरजी कौनसी मरजाद पालते होंयगे? अलिखानके यहां कौनसी मरजाद पालते होंगे? ठाकुरजी तो जहां प्रकटेंगे वहांकी मरजाद पालेंगे.

कोई निन्दा-स्तुतिकी बात नहीं है, पंडितनके अहंकारकी बात है, जब भी ऐसो कह्यो जावे के ये बात कौन समझ सकेगो, तो यों नहीं कह्यो जाये के मूर्ख भी समझ सके है, यों कह्यो जाये के ग्वाला तक समझ सके है. आजकल जाट या सरदार केलिये ऐसी बात लोग कहते होवे हैं. पर पुराने जमानामें लोग ऐसे कहते के ये बात तो ग्वालाकी भी समझमें आ सके ऐसी है. तो ऐसे ग्वालाके कुलमें ठाकुरजी बडे आनन्दसु प्रकटे हैं के हम गोपाल हैं. ब्रह्म हैं तो हैं, परमात्मा-भगवान् हैं तो हैं पर या बखत तो हम गोपाल हैं. ऐसे ही मूरख हैं के जैसे ग्वाला मूरख होवे हैं. बोलो, अब क्या कहेनो है! ठाकुरजीकु जा परिवेशमें प्रकटे हैं वाको इतनो अभिमान है. यासु आप यशोदाजीकु कह रहे हैं के मैया, मैने कैसी गाय चराई. एक गाय तो जंगलमें भग गई हती वाकु रोकके मैं गायनके झुंडमें लायो. देख मैया, मैने कैसी गाय चराई. जैसे ठाकुरजी यशोदाजीके सामने अपनो अभिमान प्रकट

कर रहे हैं ऐसे जब आप अपने घरमें ठाकुरजी पधराके या भावसु गोपाष्टमीको उत्सव मनाओगे तो आपके कुलको भी अभिमान ठाकुरजी प्रकट करेंगे. और ‘ ‘वर्तएव च कर्मणि’’के भावसु ठाकुरजी आपके कुलके कर्मनकु अपनो कर्म मानेंगे.

अक्षय नवमी :

अक्षय नवमी युगादि तिथि है. अपन क्योंके अक्षय नवमी मनावें हैं करके ठाकुरजी भी अक्षय नवमी मनावे हैं. जैसे व्रजके लोग सांझी पूजते हते तो ठाकुरजीने कही के मैं भी तुम्हारे संग सांझीमें सम्मिलित होउंगो. ऐसे ठाकुरजी अक्षय नवमी मनावे हैं.

देवप्रबोधिनी :

देव प्रबोधिनी वैसे देख्यो जाये तो व्रजलीलाको उत्सव नहीं है. शास्त्रवर्णित उत्सव है. चातुर्मासमें कर्मको निषेध है. क्यों? जैसे अपने अहो-रात्रको एक दिन होवे है ऐसे देवतानको एक दिन एक अयनको होवे है. उत्तरायण और दक्षिणायन ऐसे दो अयनको होवे है. प्रबोधिनीके दिन देवतानको प्रबोधन होवे है.

यहां ये बात ध्यानसु समझनेकी है के यदि ठाकुरजीकी सेवा अपन केवल व्रजलीलाके भावसु करते होते तो या दिन ठाकुरजीको प्रबोधन करनेकी आवश्यकता ही नहीं हती. जैसे होलीके उत्सवमें अपन घरके बहार होली जलाके ठाकुरजीकी तरफसु वाको पूजन कर देवे हैं, दशहरामें भी अपन ऐसो ही करे हैं ऐसे दूसरे कोईको प्रबोधन ठाकुरजीकी तरफसु अपन कर सकते हते. पर अपन अपने ठाकुरजीकु पधराके प्रबोधिनी मनावे हैं. यामें रहस्य समझनेको ये है के अपने यहांकी सेवामें भावना व्रजलीलाकी है पर अपने ठाकुरजी व्रजलीला तक सीमित नहीं है. जैसे मैने आपकु बतायो के पुष्ट करनेकी विधिमें अपने सेव्यके ब्रह्म होनेके, परमात्मा होनेके, भगवान् होनेके, कृष्ण होनेके, घरके ठाकुर होनेके ऐसे सब भावसु पुष्ट कियो जाये

है. जैसे वाके भगवान् होनेके भावकी बात आपकु बताउं तो प्राकट्यके पहलेको एक श्लोक श्रीगुसांईजीने विधिमें बतायो है :

जय जय जह्यजाम् अजित! दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ।
अगजगदोकसाम् अखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयात्मना च चरतोनुचरेद् निगमः।।

श्रुति यानि प्रमाण. भगवान् प्रमेय हैं. प्रमाण प्रमेयकु जगा रहे हैं के आप जागो. तु पोढ्यो रहे है तो सब कछु सो जावे है. तु जागे है तो तेरे जागनेसु सब जागे हैं.

ये जागनो और सोनो कैसो है? अपन याकु घडीके दृष्टान्तसु समझ सके हैं. औसत घडीमें सेकंड, मिनिट और घंटा के कांटा होवे हैं. चाभीसु चलती घडीमें जब अपन चाभी भरे हैं तो तीन कांटानकी अलग-अलग चाभी नहीं होवे है. एक ही चाभीसु तीनों कांटा घूमें हैं. पर सेकंड्को कांटा एक पूरो चक्कर काटे है तब मिनिटके कांटाकी केवल एक मिनिट होवे है. मिनिटको कांटा जब एक चक्कर काटे है तो घंटाके कांटाको केवल एक घंटा होवे है. ऐसे अपनो अहोरात्र देवतानकेलिये अहोरात्र नहीं होवे है. देवतानको एक अहोरात्र अपने छे महीना जितनो लम्बो समय हो सके है.

यासु जब अपने माथे ठाकुरजी पधारे हैं तब पुष्ट करनेकी विधिमें श्रीगुसांईजी उनकु पहले जगावे हैं. वामें ऐसे नहीं कह्यो जाय है के आप या मूर्तिमें घुसो. क्यों? क्योंके घुसे कौन? घुसे वो के जो वहां नहीं होवे. जैसे या कमरामें हवा-चिडिया नहीं होवे तो यामें घुस सके. पर जो यहां है ही वाकु अपन घुसनेकेलिये तो कह नहीं सकेंगे. मर्यादामार्गमें ऐसो कह्यो जाये है के मूर्तिमें देवताको आवाहन होवे है. मूर्ति एक तरहको कमरा है और देवता वामें चिडियाकी तरह आवे है. अपने यहां ये प्रक्रिया नहीं होवे है. क्यों? व्यापकत्वात्. परमात्मा क्योंके व्यापक है यासु वो वहां है ही.

एक सूफी शायरने बडी अच्छी बात कही है : *मुसलमां गर बेदानिस्ती बुत चीस्त ... बुतपरस्ती...* मुसलमानकु अच्छी तरहसु समझाओ के मूर्ति क्या चीज है. क्योंके सच्चो दीन और सच्चो ईमान मूर्तिपूजामें ही है. वैसे मुसलमान् मूर्तिपूजाकु कुफ्र माने है, सबसु बडो पाप माने है. वाकु पूछी के ऐसी बात तु क्यों कर रह्यो है. तो वाने कही के वा परमात्माको नूर कण-कणमें प्रकट हो रह्यो है. तो तुम ये कहनो चाह रहे हो के मूर्तिके कणनकु छोडके बाकी जगह वाको नूर प्रकाशित हो रह्यो है? ऐसो कैसे हो सके है! जब वाको नूर कण-कणमें प्रकाशित हो रह्यो है तो मूर्तिमें भी वाको ही नूर प्रकाशित हो रह्यो है. ओर जगह तो वाको केवल नूर ही प्रकाशित हो रह्यो है, मूर्तिमें तो वाको नूर और हूर दोनों प्रकाशित हो रहे हैं. अब चिंताकी बात क्या है!

वैसे ये बात सूफीकी कही गयी है पर अपने विचारके बहोत करीब है. अपन भी ये ही कहे हैं के भगवान् व्यापक हैं. व्यापक होनेके कारण वो सर्वत्र हैं. सर्वत्र वाको नूर है. पर वाको हूर तो मूर्तिमें ही प्रकट होवे है. करके श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के तुमकु वाको जो रूप आकर्षक लगतो होवे वाकी तुम सेवा करो. श्रीमहाप्रभुजी अपने मतके इतने पाबंद हैं के जो ये आज्ञा करे हैं के

''प्राकृताः सकला देवाः गणितानन्दकं बृहत्,
पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात् कृष्णएव गतिर् मम''.

जो श्रीमहाप्रभुजी ये आज्ञा कर रहे हैं : **''अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः''** वो ही महाप्रभुजी ये बात भी कह रहे हैं के जो जीव जा अपने इष्टदेवकु ब्रह्मतया भज रह्यो है ब्रह्म वाकु वा रूपसु ही फलदान देगो. यासु यदि महादेवजीको कोई भक्त महादेवजीकु ब्रह्म मानके नहीं भजे तो वाकु वैसो फल नहीं मिलेगो. गणिपतिको भक्त यदि गणपतिकु केवल विघ्न हरनेवाले देव समझके भजे तो गणपति वाकु मुक्ति नहीं दे सके है, विघ्न केवल हर सके है. पर यदि शिव या गणेश को भक्त अपने इष्ट-देवकु ये समझके भजें के ये साक्षात् परब्रह्म है तो वाकु मोक्ष मिल सके है.

श्रीमहाप्रभुजी कहे हैं के **''कन्या हि यथा वरं वृणीते''**. दुनियामें सेंकडो लडका हैं पर कन्या स्वयंवरमें एक लडकाकु चुने है के ये मेरो पति. बस, अबसु वो लडका वाको पतिपरमेश्वर हो गयो. ऐसे जीव परमात्माके जा रूपकु इष्टदेवतया चुने है वो रूप वाको इष्टदेव बन जावे है. अपनने श्रीमहाप्रभुजीकी कंठी बांधी है करके अपनेने कृष्णकु चुन्यो है. यासु अपन कृष्णके अलावा दूसरे कोई देवकी भक्तिकु अन्याश्रय माने हैं. पर अपन यों नहीं माने हैं के कृष्णकु जो नहीं भजे है वो पापी है, नरकमें जायेगो. अपन ये माने हैं के जो जाको भक्त है वो यदि अपने इष्टकु ब्रह्मतया भजे है तो ब्रह्मके सामर्थ्यसु वो देव वाकु फल देगो. **''अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ''** ये श्रीमहाप्रभुजीको सिद्धान्त है.

जरा विचार करो के आजकल निकल पडे धर्मनिरपेक्षता वादी सब देवतानकु एकसे माने हैं. क्यों? क्योंके उनकु कोई देवसु लगाव नहीं है. और दूसरे अपने श्रीमहाप्रभुजी के जो श्रीकृष्णके प्रति अनन्यतया समर्पित हैं पर कोई देवकु अस्वीकार नहीं कर रहे हैं. और सबकु स्वीकार करे हैं फिर भी स्वरूपनिरपेक्ष नहीं हैं. अपने कृष्णस्वरूपसु सापेक्ष हैं. कितनी जबरदस्त फ्रेम महाप्रभुजीने अपनकु दी है के अपन दूसरेकु स्वीकार सकें और अपनी बात भी अपन कह सकें के हमारो अनन्याश्रयको धर्म है, अनन्यासक्तिको धर्म है. पर साथसाथ हमारो अनन्यासक्तिको धर्म ऐसो नहीं है के हम वाकु पापी मानें, नरकगामी मानें, काफिर मानें के जो हमारे कृष्णकु नहीं भजे है. ऐसो धर्म अपनो नहीं है. अपनो धर्म ऐसो है के जैसी आज्ञा श्रीगुसांईजीने तुलसीदासजीकु करी हती के ''जैसे तुम कृष्णके पद गाओ हो ऐसे कृष्णके पद गानेवाले हमारे यहां अनेक है, पर जैसे तुम रामके पद गावत हो ऐसो गावनवारो कोउ नाहीं है. तासों तुम रामके पद ही गाओ''. अपन तो या बातकु माननेवाले हैं के जो शिवको भक्त होवे वाकु सचाईसु शिवभक्ति करनी चहिये. देवीके भक्तकु सचाईसु देवीकी भक्ति करनी चहिये. रामके भक्तकु सचाईसु रामकी भक्ति करनी चहिये. न वो अपनकु तकलीफ देवे और न अपन वाकु तकलीफ देवें.

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्''.

ये अपनो सिद्धान्त है. प्रत्येककु अपनो धर्म निष्ठासु पालनो चहिये. भगवान् यासु गीतामें आज्ञा करे हैं : **''स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः''**. स्वधर्माचरण करते भये निधन हो जानो श्रेष्ठ है किन्तु परधर्मको पालन करनो भयानक बात है. पडौसी गणपति पूजतो होवे तो अपन भी पूजने लग जायें. शिवको भक्त मिल जाये तो वाके संग शिवभजन करने लग जायें ये भयानक बात है. अपनो सिद्धान्त ऐसो नहीं है. अपन अपनी बातपे कायम हैं. अपन शिवभक्तकु ये कहेंगे के हमकु तुम्हारे ऊपर विश्वास तब ही आयेगो के जब तुम शिवके प्रति पूर्णरूपसु समर्पित होगे. श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तकी सौरभ अलग ही है. लोग याकु समझे नहीं हैं और ऊटपटांग ढंगसु वाकी व्याख्या करते रहे हैं. पर या रहस्यकु समझो.

अपन ठाकुरजीकु भगवान् माने हैं करके देवप्रबोधिनीके दिन ठाकुरजीकु जगावे हैं. ये जागरण व्रजके ठाकुरजीको जागरण नहीं है, ये भगवज्जागरण है, देवको जागरण है. व्रजमें तो ठाकुरजी रोज पोढे हैं, रोज जागे हैं. व्रजमें तो ठाकुरजीने अपनो धर्म स्वीकार कियो है. अब आप या बातकी खुबसुरती देखो के अपनो ठाकुरजी रोज सोवे है और जगे है. पर देवप्रबोधिनीकु पाछो जागे है. अपनकु होवे के रोज जगे ही है तो वाकु प्रबोधिनीकु अलगसु जगानेकी क्या आवश्यकता है! पर समझो के जो रोज जगे है वो तो नन्दराजकुमार है, पर देवताके रूपमें वो छे महीनाके बाद जाग रह्यो है यासु जगावे हैं ''उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ गोविन्द!''. तु जगेगो तो जगत जगेगो और तू पौढ्यो रहेगो तो जगत भी पौढ जायेगो. यासु अपन ठाकुरजीकु जगावें हैं.

या प्रबोधनके साथ व्रजलीलामें ठाकुरजीने स्वामिनीजीके संग विवाहको खेल कियो है, विवाह नहीं कियो है. दोनों बच्चा हैं. एक छे-सातको है तो एक आठ-नौकी है. या ब्याहके खेलकु भी अपन या दिन

मनावे हैं. ये दिन सब कार्यकेलिये शुभ है क्योंके या दिन तुलसी और शालग्राम को विवाह भयो हतो. यासु या दिन ठाकुरजीके ब्याहके खेलके उत्सवके साथ-साथ तुलसी-शालग्रामको विवाह भी मनायो जाये है. यासु या दिन ठाकुरजीके प्रबोधनको, ब्याहके खेलको और तुलसी-शालग्रामके विवाहको ऐसे तीनों उत्सव मनाये जाये हैं.

तुलसीकु ठाकुरजीने जबरदस्ती स्वीकार्यो है. ये व्रजलीलाकी कथा नहीं है. जब ठाकुरजीने वृन्दाकु जबरदस्ती स्वीकार्यो तब वृन्दाने ठाकुरजीकु शाप दियो के तुम इतने कठोर हो तो जाओ, तुम शालग्राम बनो. ठाकुरजीने आनन्दसु वृन्दाको शाप स्वीकार्यो. क्योंके पथ्थर भी आखिर बन्यो कौन है? ठाकुरजी ही तो पथ्थर बने हैं! मैं अब तक टेढो-मेढो पथ्थर हतो, तू कह रही है तो गोल-चिकनो पथ्थर बन जाउंगो. पथ्थर बननेमें कौनसो जोर पडे है ठाकुरजीकु! मैं पथ्थर बनुंगो तो तू तुलसी बनेगी. पर अपनो विवाह तो होयगो, होयगो और होयगो ही. ये गांडा गिरिधरलाल जैसो खेल ठाकुरजीने तुलसीके साथ खेल्यो वो अपनकु पसंद आवे है यासु अपन ब्रह्मसम्बन्धके बखत हाथमें तुलसी लेके कहे हैं के तुलसीकु तो जबरदस्तीसु अपनी करी हती और हम तो खुद तेरे पास आ रहे हैं तो हमारे समर्पणकु स्वीकारनेमें तोकु क्या जोर पडनो चहिये! तुलसीने तो तोकु शाप दियो, हम तो तेरी भक्ति करनेकेलिये तेरे पास आ रहे हैं. यासु अपन हाथमें तुलसी लेके समर्पण करे हैं. तुलसी प्रभुकु इतनी प्रिय है ये अपनकु पता चली करके अपन तुलसी-शालग्रामको विवाह मनावें हैं. व्रजलीलाको यदि फिक्सेशन् होतो तो अपन ये उत्सव नहीं मनाते. लोग कहे हैं के अपने यहां बाल भाव है. पर तुलसीके प्रसंगमें तो बाल-किशोरसु भी आगेकी बात है.

द्वादशीः

श्रीमहाप्रभुजीके समयसु प्रबोधिनीको जागरण करनेकी रीत सम्प्रदायमें रही है. यामें देखने लायक बात ये है के श्रीनाथजी श्रीमहाप्रभुजीके समयमें घरमें नहीं बिराज रहे हते, देवालयमें बिराजते हते,

करके वहां जागरण नहीं होतो हतो. वो जागरण आज भी श्रीनाथजीमें नहीं होवे है. क्योंके प्रबोधिनीपे जागरण करनो ये नियम ठाकुरजीकेलिये नहीं है, वैष्णवकेलिये है. ☛

एकादशीको शास्त्रमें ऐसो नियम है

''सकृदेव दिवा स्वापात् सकृत् ताम्बूल चर्वणात्,
असकृत् जलपानात् च नश्यत्येकादशीवृतम्''.

दिनमें सोनेसु, पान खानेसु, वारंवार जल पीनेसु एकादशी वृत टूट जावे है.

एकादशीकु रात्रिजागरण होवे है. जागरणमें कीर्तन किये जाय हैं. अपने यहां जागरणके कई प्रकार हैं. ये बात भी समझनेकी है. जैसे दीपावलीकी रातको जागरण परिक्रमासु कियो जाय है. ''आज कुहूकी रात चलो परकम्मा कीजे''.

प्राचीनकालमें भोगमें सामग्री अधिक अनुपात्तमें धरी जाती. यासु अन्नकूटके दिन ठाकुरजीकु विलम्ब नहीं होवे वा भावसु आगले दिन सारी रात्रि जगके सखडीकी सामग्री सिद्ध करी जाय है. ये सेवात्मक जागरण है.

ग्रहणमें सेवा निषिद्ध है. ठाकुरजीकु ग्रहणसु कोई लेनो-देनो नहीं है. पर अपने यहांको आचार ऐसो है के ग्रहणमें जागनो चहिये यासु अपने ठाकुरजी भी अपने संग जगे हैं. ठाकुरजी बिराज रहे हैं और सेवा नहीं हो रही है तो ऐसी भावना सोची गयी के अभी मानको समय है. स्वामिनीजी मान कर रहे हैं और ठाकुरजी मना रहे हैं, ठाकुरजी मान कर रहे हैं और स्वामिनीजी मना रहे हैं. करके रात्रिके जागरणमें मान और मान छुडानेके पद गाये जावे हैं. साथ-साथ, वेदमें क्योंके ऐसो कह्यो गयो है के

''चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत,
मुखाद् इन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत''.

भगवान्के विराट् स्वरूपमें चन्द्रमाको स्थान प्रभुको मन है, सूर्यको स्थान प्रभुके नेत्र हैं. ऐसे सब देवताएं सारी सृष्टि प्रभुके विराट् स्वरूपमें अवस्थित है. चन्द्रमाको स्थान क्योंके मन है करके चन्द्रग्रहणमें ठाकुरजीकु मान भयो है ऐसी भावना सोची गयी है. चन्द्रग्रहण छूट्यो मतलब मान उतर्यो. यासु मानके पद गाये जाये हैं. ग्रहणमें जपको भी विधान है. यासु जाकु जो दीक्षा मिली होवे वाके मन्त्रको जप करनो चहिये. अपने यहां गायत्री अष्टाक्षर पञ्चाक्षर, नृसिंह और गोपाल मन्त्र इतने मन्त्रनकी दीक्षा मान्य की गयी है. इनके अलावा दूसरे कोई मन्त्रकी दीक्षा अपने यहां मान्य नहीं है. ग्रहणमें दीक्षामन्त्रको जप कियो जाय है. यासु ग्रहणको जागरण जपात्मक होवे है या कीर्तनात्मक होवे है.

प्रबोधिनीको जागरण कीर्तनात्मक होवे है. सेवा वामें अल्प होवे है, कीर्तन अधिक होवे है. प्रबोधिनीको जागरण हतो तब श्रीगोकुलनाथजी कीर्तन करवे बिराजे. आपने खवासकु पान लानेकी कही. खवासने तो पान दे दियो. पीछे जन्माष्टमीको जागरण आयो तब खवासने ये सोचके पान दियो के श्रीगोकुलनाथजी आज भी व्रत नहीं करेंगे. पर आपने तो कही के पान खावेसु तो व्रत टूट जावे. पान नहीं खायो जाये. खवाससु रह्यो नहीं गयो. वाने कही के पिछली प्रबोधिनीपे तो आपने व्रतमें पान अरोग्यो हतो. श्रीगोकुलनाथजीने आज्ञा करी के वा दिन मैने पान या लिये खायो क्योंके मोकु सारी रात कीर्तन करने हते. यासु ठाकुरजीके लिये व्रत तोड्यो हतो. पर आज तो सारी रात सेवाको क्रम है. केवल कीर्तन नहीं करने हैं. यासु आज यदि पान खाउंगो तो व्रत टूटेगो.

अपने यहां भगवत्सेवाकेलिये स्वधर्म तोडनेके कई उदाहरण हैं. जैसे एक वैष्णव सोहिनी कर रहे हते और अचानक सोहिनीकी डोरी खुल गई तो वैष्णवने अपनी जनोई सोहिनीपे बांधदी. वाके ठाकुरजी बोले अरे, वैष्णव तु क्या कर रह्यो है, नरकमें गिरेगो! पर वाने कही के यदि आपकी मंगला जल्दी होती होवे तो मोकु नरक मंजूर है. वैसे देखें तो बुहारीपे जनोई बांधनो

शुद्ध पापाचरण है. पर वाने पापाचरण कियो. स्वसुखके विचारकेलिये नहीं, तत्सुखके विचारकेलिये. अब याकु कोई सिद्धान्त बना लेवे तो सम्प्रदाय और श्रीमहाप्रभुजी सु विद्रोह होवे. याकु सिद्धन्त नहीं बनानो के जब सोहिनी टूटे तब जनोई बांध देनी. या ब्राह्मणसु तो अपने ठाकुरजीकु जगानेमें अवेर न होवे ऐसे भगवत्सुखके विचारसु ऐसो अनायास हो गयो हतो.

जैसे वाघाजी रजपूतकु कवायत करते-करते ठाकुरजीने याद दिवायो के वो आज रोटीपे घी चुपडनो भूल गये हैं. वाघाजी जूता पहनके भोगमंदिरमें घुस गये और रोटीपे घी चुपड दियो. जिन वैष्णवने ये देख्यो वो कहने लगे के ये कैसो अनाचारी है, याके यहां तो प्रसाद लेनो भी पाप है. पर ठाकुरजी वैष्णवनपे नाराज भये, वाघाजीपे नाराज नहीं भये. यद्यपि वाघाजीने धर्म तोड्यो हतो पर स्वसुखार्थ नहीं, अपने सेव्यके सुखार्थ तोड्यो.

श्रीगुसांईजीके सातवें लालजीके चरित्रमें आवे है के वे उष्णकालमें शैया मंदिरमें आंख मींचके खडे रहके सारी रात पंखा करते. और जब उनके ठाकुरजीकु चोर जाने कोई आये तब अवाज भई. पर उनने ये सोचके आंख नहीं खोली के पता नहीं ठाकुरजी कौनसी लीला कर रहे हैं. अपन आंख कैसे खोल सकें. सवेरे जब उनने आंख खोली और देख्यो तो उनके ठाकुरजी चुर गये हते. उनने अन्न-जल लेनो छोड दियो और देह त्यागदी. ठाकुरजी चुर गये तो अब मोकु नहीं जीनो है.

रामदासजीकु ठाकुरजीने सामने चलके आंख खोलके अरोगनेके दर्शन करनेकी आज्ञा दी हती. पर रामदासजीने आंख नहीं खोली हती. उनने कही के मोकु श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा नहीं है. इन बातनको टीकाग्रन्थनमें बडो विचार कियो गयो है. श्रीमहाप्रभुजीने लिख्यो है : ''**सेवाकृतिः गुरोर् आज्ञा बाधनं वा हरीच्छया**''. सेवा गुरुकी आज्ञा अनुसार करनी. और गुरुकी आज्ञाको उल्लंघन करनेकी प्रभुकी इच्छा होवे तो उल्लंघन करनो.

वामें दोष नहीं है. पर फिर भी रामदासजीने श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा ही पाली, ठाकुरजीकी आज्ञाको उल्लंघन कियो. क्यों? समाधानमें ये ही कह्यो गयो है के यदि प्रभुसुखके विचारसु श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा तोडी गई है तो कोई दोष नहीं है. इनको भाव ऐसो ही हतो के प्रभु मोकु सुख देनो चाह रहे हैं यासु मैं अपने सुखकेलिये महाप्रभुजीकी आज्ञा कैसे तोडूं! करके रामदासजीने आंखें नहीं खोलीं.

रजस्वला वेश्याकु प्रभुने सेवा करनेकी आज्ञा दी. वाने रजस्वला अवस्थामें भी ठाकुरजीकी सेवा करी. यामें वाको सुख नहीं हतो. पर प्रभुकु सुख हतो.

☛ मूल बातपे आवें के श्रीनाथजीके यहां रातकु कोई जगतो ही नहीं. क्योंके आदमी जगे कब? सारो घर जगतो होवे तो एक आदमी सोनो चाहतो होवे तो भी वाकु जगनो पडे. या घरको प्रमुख व्यक्ति जगतो होवे, तैयारीएं चलती होवें तो अपनकु सोनो होवे तो भी अपन सो नहीं सकें, जगनो ही पडे. या सबकु जल्दी सुबह कहीं जानो होवे तो जगें. ये स्थितिमें अपन जगें. तो ये जागरणको नियम श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी, सात बालकें निभाते हते. ठाकुरजी सारी रात जगे हैं करके दूसरे दिन बारसकु ठाकुरजीके स्नान-शृंगार नहीं होवे हैं. शृंगार धरे भये जाग रहे हैं तो पाछो शृंगार कैसे होयेंगे! करके, प्रबोधिनीके दिन विवाहके शृंगार होने चहिये वाके ठिकाने श्रीगिरिधरजीके घरमें कुल्हेको शृंगार होवे है. कुल्हे प्राकट्योत्सवको शृंगार है और देवप्रबोधिनीको भी शृंगार है. और बारसके दिन शृंगार होवें नहीं हैं यासु शहेराको शृंगार नहीं धरे हैं. ठाकुरजी कैसे अपने मापके बने हैं के विवाहको उत्सव होते भये भी ठाकुरजी ग्यारसकु शहेरा नहीं धरे हैं, बारसकु तो जागरणके कारण वोही शृंगार रहे हैं यासु तेरसके दिन शहेरा धरे हैं. तो देखो, ठाकुरजी अपने मापके अनुसार बरते हैं. या उत्सवको बडो मीठो प्रसंग ये है.

साथ-साथ ये भी बात ध्यानमें लेवेकी है के श्रीनाथजी

गिरिधरजीके उत्सवकु कुल्हेको शृंगार धरके उत्सव क्यों नहीं मनावें हैं. क्योंके श्रीनाथजीमें प्रबोधिनीको जागरण करनेवालो कोई है नहीं. नवनीतप्रियजी आदि ठाकुरजी गिरिधरजीको उत्सव कुल्हे धरके क्यों मनावें हैं? क्योंके वहां जागरण करनेवाले हैं. यामें समझनेकी बात ये है के यदि अपन जागरण करते होवें तो ठाकुरजीकु जगानो उचित है. पर यदि ठाकुरजीकु जगाके अपन सो जाते होवें तो वो उचित नहीं है. ठाकुरजीकु एकादशीके जागरणसु क्या लेना-देना! यासु यदि आप जग नहीं रहे हो तो ठाकुरजीकु जगानेकी सेवा नहीं है. आप जगो हो तो आपके साथ आपके ठाकुरजी भी जगेंगे. ठाकुरजी जगेंगे तो जागरणके पद भी आखी रात बोले जायेंगे. और सुबहसु श्रीगिरिधरजीके उत्सवकी बधाईके पद गाये जाये हैं ऐसो क्रम है. तुलसी विवाहको क्रम होवे तो संग-संग तुलसी विवाहके पद भी गवे हैं. श्रीगिरिधरजीके घरमें तो ऐसो क्रम है.

श्रीगुसांईजीको उत्सव :

श्रीगुसांईजी, श्रीमहाप्रभुजी, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, दिवाली इन सब उत्सवपे कुल्हेके भारी शृंगार होवे हैं. श्रीगुसांईजीको उत्सव शीतकालमें आवे है. यासु श्रीअंगपे ठाकुरजी रेशमके वस्त्र धरे हैं. श्रीगुसांईजीको अपनो सौन्दर्यबोध हतो. आप रेशमकी चुन्नटके वस्त्र धराते. कपडामें सल करके सलवालो कपडा पहन्यो जाय. कलकत्तामें चुन्नटकी बांह बनावे हैं. धोतीकी किनारपे चुन्नट डाले हैं. श्रीगुसांईजीकु ऐसे वस्त्र बहोत पसंद हते. एक दम सादो केशरी, वामें जरी नहीं, कीनखाब नहीं, पर रेशमी चुन्नटको वस्त्र वा दिन ठाकुरजी धरे हैं. ऐसे वस्त्र या दिनके अलावा ओर कभी नहीं धरे हैं.

ये उत्सव वैसे व्रजलीलाको उत्सव नहीं है. पर श्रीगुसांईजीने ठाकुरजीकु रिझायो है और ठाकुरजी रीझे हैं करके ठाकुरजीने ये उत्सव स्वयं कहके मनायो है. प्रभु जब मांगे बिना अपनो उत्सव मनावें वासु ज्यादा अपनो सौभाग्य क्या! करके श्रीगुसांईजीने भी वाकु अनुमोदन दियो. या दिन ठाकुरजीने जलेबी मांगके अरोगी करके लोग बोल-चालमें याकु जलेबी

उत्सव भी कहे हैं.

मकर संक्रान्ति :

ये उत्सव वैसे तो शास्त्रीय उत्सव है. पर या दिन उत्तरायणकी पतंग उडे है. व्रजलीलामें भागवतमें कहीं याको वर्णन नहीं है. पर पदनमें ठाकुरजीके गुडी उडावेको वर्णन है.

वसन्तपञ्चमी :

वसन्तपञ्चमी बहोत प्राचीन कालसु चल्यो आतो उत्सव है. आज ब्युटि कोन्टेस्ट लडकान्के सामने होवे है. पुराने जमानामें लडकीन्में आपसमें ब्युटि कोन्टेस्ट होती हती. और जो लडकी सबसु खुबसुरत होती वो अशोकको पैर लगाती. वो वसन्तपूजा कहलाती.

अपने यहां भी वसन्तको पूजन ठाकुरजी-स्वामिनीजी करें हैं. तबसु खेल शुरु होवे है जो चालीस दिन डोल तक चले है. जैसे यहां प्रबोधिनीसु साटीन-कीनखाबके वस्त्र धराने शुरु होवे हैं शीतकालके कारण. वासु आगे छींटके वस्त्र धराये जाये हैं. और जब शीत कम होवे तब वसन्तके पहेले फिरसु जरीके वस्त्र धराये जाय हैं. और वसन्तसु पाछे सादे सफेद वस्त्र ठाकुरजी धरनो शुरु करे हैं. याको मुख्य कारण ये है के ठाकुरजीकु रंगसु खिलानो है. सफेद वस्त्रपे सब रंग खिल सके है.

सात्त्विक-राजस-तामस रंग :

रंगनमें चार मुख्य रंग हैं. सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण भाव जैसे ठाकुरजीकी बाललीलामें हो सके हैं ऐसे पौगंडलीलामें, किशोरलीलामें और निर्गुणलीलामें भी हो सके हैं. निर्गुणलीला मतलब शास्त्रमें ठाकुरजीको जैसो स्वरूप ब्रह्म-परमात्मा-भगवान्के रूपमें समझायो है वैसो भाव. ऐसे भाव रखके यदि भक्ति नहीं करते होवें तो वो ज्ञान हो जाय है. और भक्ति करते होवें तो भाव कहेलावे है. भाव और ज्ञान में अन्तर इतनो ही है.

आपके सामने ये टोर्च है. याकु देखके आपकु ये ज्ञान हो गयो के ये टोर्च है तो ये ज्ञान है. पर यदि आपकु ऐसो लग्यो के कितनी अच्छी टोर्च है, तो ये एक भाव है. ज्ञान भी राग-द्वेष-उपेक्षात्मक हो सके है. ये भी एक तरहको भाव है. पर अपने यहां 'भाव'को मतलब देवादिके विषयमें स्नेह होवे है. यासु ध्यानसु समझो के निर्गुण भाव और निर्गुण भान में इतनो ही अन्तर है के शास्त्रमें ब्रह्म जैसो वर्णित है वैसो अपनकु समझमें आ गयो तो अपनी समझ निर्गुण है. ऐसी समझ या भान के साथ-साथ वैसो ब्रह्म अपनकु प्रिय लगने लग्यो तो वो निर्गुण भाव हो गयो. ऐसे निर्गुण बुद्धि, निर्गुण ज्ञान और निर्गुण भाव इन तीनोंकु समझोगे तो सारी बात समझमें आ जायेगी.

निर्गुण बुद्धिको मतलब ऐसो होवे है के शास्त्रमें प्रभुको जैसो स्वरूप समझायो है ऐसो ही स्वरूप अपनकु समझमें आनो. ऐसी समझ आनेके बाद भी अपने मनके कोई रंगके कारण वा समझके अनुसार अपन भगवान्कु स्वीकार न पाते होवें, देख न पाते होवें या भज न पाते होवें तो समझ अपनी निर्गुण है पर अपनो भाव निर्गुण नहीं है, सगुण भयो. अपनी समझ पाछी कई तरहकी हो सके है. जैसे, हम ये समझ रहे हैं के ये भगवान् हैं पर फिर भी अपन ये समझनो नहीं चाह रहे हैं, अपन अपने कोई पूर्वाग्रह या प्रेमके हिसाबसु ही प्रभुकु देख रहे हैं तो या भावकु तामस भाव कह्यो जाय है. मतलब अपने पूर्वाग्रह प्रभुके बारेमें यदि अज्ञानात्मक हैं तो अपनो भाव तामस कहलायेगो. पूर्वाग्रह यदि संशयात्मक है तो अपनो भाव राजस कहलायेगो. मतलब कभी अपनकु ऐसो लगे के शास्त्र ऐसे कह रह्यो है तो ऐसो ही होयगो. पर कभी अपनकु ऐसो लगे के नहीं, हमारो मन जैसे कह रह्यो है भगवान् ऐसे हैं. ये राजसभाव है. और कभी अपने भीतर शास्त्रीय ज्ञानके कारण दैन्य अधिक बढ गयो तो वो भाव सात्त्विक कहलायेगो. और जैसो स्वरूप है ऐसे स्वरूपके माहात्म्य ज्ञान पूर्वक वाके प्रति सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह होवे तो वो भाव निर्गुणभाव कहवावे है.

अपनकु इन भावनमेंसु कोई एक भावको फिक्सेशन् भी हो सके है

और इन सारी अवस्थानमेंसु भी अपनो मन गुजर सके है. कभी अपनकु अज्ञान तकलीफ देवे, कभी संशय, कभी निश्चय तो कभी भ्रम तकलीफ देवे. या तकलीफके कारण अपने भाव बदलते रहे हैं; सेवामें भी, प्रभुके पद गानेमें भी, स्मरण करनेमें भी. इन भावनकु सात्त्विक राजस तामस निर्गुण कह्यो जाय है. निर्गुणभावको मतलब शास्त्रने जैसे कह्यो है वैसे भी स्वीकार लेनो और अपने भावकु खंडित भी होने नहीं देनो. ये दोनों निभानो कठिन है यासु श्रीमहाप्रभुजी श्रीयमुनाजीको भाव निर्गुण माने हैं और अन्य गोपिकान्को भाव तामस-राजस-सात्त्विक माने हैं.

ये सारे भावके रंगनसु अपन ठाकुरजीकु खिलावे हैं. ठाकुरजी अपने इन रंगीन भावनकु स्वीकारने तैयार हैं वा स्वीकृतिके प्रतीकतया ठाकुरजी श्वेत वस्त्र धारण करें हैं. पुराने जमानामें जब किलाकी घेराबंदी होती तब यदि किलावाले लडनो नहीं चाहते तो सुलेहको सफेद झंडा फहरा देते. ऐसे अपने भावनके साथ सुलेह करनेकेलिये ठाकुरजी सफेद वस्त्र धारण करे हैं के जो तेरे भाव होवें उनके संग मैं सुलेह करने तैयार हूं. मैं वैसे अपने ब्रह्म भगवान् परमात्मा होनेके किलामें तो बैठ्यो भयो हूं, तुम्हारे भावनसु झघड भी सकुं हूं. तुम बहार हो, मैं तो किलाके भीतर हूं. मोकु कोई नुकसान पहोंचनेवालो नहीं है. पर तुम जब अपने भावन्को घेरा डाल रहे हो तो मैं सुलेहको झंडा फहरा रह्यो हूं. ठाकुरजी चालीस दिन अपने भावनके संग सुलेह करे हैं के अपन ठाकुरजीकु गाली भी दे सके हैं के

''हरि कारो री हरि कारो री, ये द्वे बापन बिच बारो री''.

यासु ज्यादा गंदी गाली ओर क्या हो सके है! पर ठाकुरजी वाकु भी स्वीकारे हैं.

अपने यहां एक बडो मीठो नियम है के जब ठाकुरजीकु अपन गाली देवे हैं तो ठाकुरजीके चरण ढंक दिये जाय हैं. क्योंके चरणके दर्शन होनेपे दैन्य आ जाये तो रसाभास हो जाय. यासु खिलानेसु पहले ठाकुरजीके चरण ढंक दिये जाय हैं. गाली देनेकेलिये तो मुखारविंद अच्छो है. आदमी

यदि आंखमें आंख मिलाके गाली नहीं दे तो गाली खानेकी और देनेकी दोनों मजा गई. कोई आंख नीची करके गाली देवे तो खानेकी भी मजा नहीं आवे. यासु अपन ठाकुरजीके केवल चरण ढंकके गारी सुनावें हैं :

''खरन भये असवार अहो हरि होरी है''

और यों भी कह्यो है के *''जो कहो सो थोरी है''*. प्रभुने सुलह कर रखी है यासु अपने सब रंग प्रभु स्वीकारेंगे. ये पुष्टिकी पराकाष्ठा है.

गये बरस सेमिनार भयो तब ये ही बात कही के हम पुष्टिमार्गके हैं, यदि तुमकु पुष्टिमार्गके कोई सिद्धान्तपे गुस्सा आतो होवे तो भले गाली दो. तो वो बाले के नहीं, नहीं... तो मैने कही के हम तुमकु कह रहे हैं के यदि गाली देनी होवे तो दो. हम होलीके भावसु सुनेंगे. हमारे साथ संकोच मत करो के हमारे महेमान बनके आये हो तो हमारी आलोचना कैसे कर सकें. जब अपने बीच राग-द्वेष नहीं है, स्नेह है... मां अपने बच्चाकु धूर्त, बदमाश, गुंडा कहे तब भी न मांके मनमें द्वेष आवे न बच्चाकु वाकी बुरी लगे है. हम बनारस पढवे गये तब वहां हमने वो माहौल देख्यो के रस्ताके एक छौरसु कुछ लोग गाली देते आवें, रस्ताके दूसरे छौरसु दूसरे लोग गाली देते आवें. अपनकु लगे के अब मारा-मारी होयगी, खून-खच्चर हो जायेगो. पर पासमें आते ही दोनों लोग गले लिपट जायें! वहां दोस्तीको इजहार ही गाली-गलौचके साथ होवे है! अपने राजस्थानमें भी होरीमें-शादीमें गाली गायी जावे है. यासु गाली केवल द्वेषकी ही अभिव्यक्ति है ऐसी बात नहीं है. गाली स्नेहकी भी अभिव्यक्ति है. अपनी या वृत्तिकु ठाकुरजीने सुलेहको झंडा फरकाके स्वीकार्यो है.

होरीकी सानुभावता कायमें? अपन तो ठाकुरजीकु गाली देवें पर कोई दि ठाकुरजी अपनकु गाली देदें वा दिन अपनी होली फल गई.

द्वितीयापाट :

द्वितीयापाटके दिन ठाकुरजी इतने गाली खानेके बाद पाछे अपनी मर्यादामें बिराज जावे हैं. *''द्वितीयापाट सिंहासन बैठे अविचल राज*

तिहारो''. या दिन ठाकुरजी पाछे अपने पाटपे बिराज जावें हैं. अब गाली-वाली नहीं चलेगी. हां, पर्सनल लेवेलपे चलानी होवे तो चले पर ओफिशियलि नहीं चले है. होलीमें तो आफिशियलि चले है. जैसे शादि-ब्याहमें समधीकु अपन ओफिशियलि गाली दे सके हैं. पर वाके पीछे यदि कोई समधीको अपने समधीके साथ ऐसो स्नेह सम्बन्ध है तो पर्सनलि गाली दे सके है पर भरे समाजमें समधीकु गाली नहीं दे सके है. दो तो बुरो मानलेगो. और शादिमें समधी-समधनकु गाली नहीं सुनाई तो शादिको मजा क्या आयो! ऐसे होरीमें गाली नहीं दी तो होलीको मजा ही क्या! तो सोचोके ठाकुरजी कितनो अपने नापको है, कितनी भक्ताधीनता प्रकट कर रहे हैं.

या सम्बन्धमें एक रहस्य समझनेको है के सिवाय भारतके ईसाई, यहूदी या मुसलमान आदि कोई भी धर्ममें आराध्यकु कुछ भी खराब कहनो सम्भव नहीं है, मर्डर हो जाये. अपने यहां ऐसो नहीं है. क्योंके अपनो आराध्य मनुष्यके लेवल्पे उतरने तैयार है और अपन वाके लेवल्पे चढने तैयार हैं. उन धर्मनमें खुदाके पैगंबर उतरे परनन्तु खुदा मनुष्यके लेवल्पे उतरे नहीं है और मनुष्य खुदाके लेवल्पे चढ नहीं सके है. करके उनकु निरन्तर पाप-कुफ्र ही दीखतो रहे है. अपनने भगवान्के साथ इतनो घनिष्ठ भाव रख्यो है के कोई भी तरहके सम्बन्ध प्रभुके संग निभानेमें अपनकु कुफ्र या पाप को बोध नहीं होवे है. बल्कि घनिष्ठताको बोध होवे है. ये तो जो ठाकुरजीकु घरमें पधराके होली खिलावे वो ही जान सके है. गुजरातीमें अच्छी कहावत है ''वन्ध्या शुं जाणे प्रसवनी पीड!'' बांझ प्रसवपीडाकु क्या समझे. ऐसे अपने प्रभुके संग होली खेलवेमें क्या आनन्द है वो तो घरमें जो ठाकुरजीकु पधरावे, होरी खिलावे और गारी गावे वाकु ही पता चल सके है. बाकी तो सब बांझ हैं. दर्शनिया सब पुष्टिमार्गकी वन्ध्या हैं जो केवल देख ही रही हैं. पर उनकु वा प्रसवकी पीडामें जा आनन्द छुप्यो भयो है वो नहीं मिले है.

श्रीवल्लभजयन्ती :

श्रीमहाप्रभुजीको प्राकट्य ठाकुरजीके मुखारविदको प्राकट्य है.

जाके कारण अपनकु भक्तिको इतनो दिव्य रहस्य जानने मिल्यो है.

नृसिंहचतुर्दशी :

ये उत्सव अपने यहां बहोत महत्त्व रखे है. या लिये नहीं के अपने ठाकुरको स्वरूप नृसिंह है. अपनो ठाकुर नृसिंह नहीं है. पर फिर भी श्रीमहाप्रभुने सुंदर विवेचना करी है के प्रभु अक्षरब्रह्मात्मक हैं याको प्रमाण नृसिंहको अवतार है. प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु के बीच विवाद क्या हतो वापे ध्यान दो. प्रह्लाद कहेतो हतो के भगवान् सर्वत्र हैं, हिरण्यकशिपुकु ये मान्य नहीं हतो. वाने पूछी के क्या या खंभामें भी तेरो भगवान् है? प्रह्लादने कही के है. हिरण्यकशिपुने गदा मारी और खंभामेंसु नृसिंह प्रकट भये.

श्रीमहाप्रभुजी नृसिंह अवतारकी विवेचना यों करे हैं के ये तो प्रमाण है के प्रभु सर्वव्यापी है. ऐसी बात तो हती नहीं के खंभा पोलो हतो और ठाकुरजी नृसिंह बनके वामें बिराज गये होवें. हिरण्यकशिपु भी इतनो तो बेवकूफ नहीं हतो. पर ठाकुरजी जैसे खंभामेंसुं प्रकट वो या बातको प्रमाण है के अपनो सेव्यस्वरूप शिलाके होवे, धातु, रत्न, वस्त्र, लगाव या काष्ठ को होवे वामें अक्षरब्रह्मके रूपमें तो प्रभु मौजूद है ही. और अपन यदि अपने सेव्यमें प्रह्लादके जैसो भाव रखते होंगे के ब्रह्म यहां है तो खास अपनलिये प्रभु वहां प्रकट हो सके हैं. यासु श्रीमहाप्रभुजीने सेव्यस्वरूपके निरूपणके प्रसंगमें ये ही बात समझायी है के नृसिंह जैसे प्रह्लादकेलिये प्रकटे वो खंभामें हते नहीं और प्रकटे ऐसी बात नहीं है. खंभामें हते ही, पर प्रह्लादकी प्रतिज्ञा हती के खंभामें भी भगवान् हैं यासु वाकी प्रतिज्ञा सत्य करनेकेलिये खंभामेंसु प्रकट होके प्रभुने दिखायो. यासु श्रीमहाप्रभुजी समझावे हैं के भगवान् सर्वत्र हैं तो भी **''एनं उद्धरिष्यामि इति तदा मृदादेः प्रादुर्भूतो''**. जब भक्त अपने भगवान्को चयन करे के मोकु भगवान्कु या रूपमें भजनो है वहां ''या भक्तको मोकु उद्धार करनो है'' ऐसे संकल्पके साथ प्रभु अपनो स्वरूप प्रकट करे हैं.

सामान्यतया लोग नृसिंह अवतारकी कथामें भार वापे देते होवें हैं के आप हिरण्यकशिपुकु मारवेकेलिये प्रकटे. पर सोचो के हिरण्यकशिपुकु मारवेकेलिये भगवान्कु प्रकट होनेकी जरूरत है क्या! सारी सृष्टिकु जो संकल्पमात्रसु प्रकट कर सके है और संकल्पमात्रसु जो सृष्टिकु अपनेमें लीन कर सके है वाकु हिरण्यकशिपुकु मारनेकेलिये प्रकट होनो पडे! ऐसी जरूरत वाकु नहीं है. प्रभु वाकेलिये नहीं प्रकटे हैं. प्रभु प्रकटे हैं प्रह्लादके वचनकु सत्य करनेकेलिये. यासु श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के नृसिंहावतार प्रभुने अपनी अक्षरात्मकतामेंसु पुरुषोत्तमता प्रकट करी वाको अवतार है. करके नृसिंह जयन्ती पुष्टिमार्गकेलिये बहोत महत्त्वपूर्ण उत्सव है. जिनके घरमें ठाकुर बिराज रह्यो है उनकु ये मेसेज् नृसिंहजी ही दे सके हैं ... हिरण्य मतलब सोना और कशिपु मतलब तकीया. हिरण्यकशिपु मतलब सोनाकु माथाके नीचे रखके सोनेवाले. ऐसे हिरण्यकशिपुनकु भगवान् सर्वत्र नहीं दीखे हैं. उनकु तो माथाके नीचे ही भगवान् दीखतो होवे है के भगवान् तो बस यहां ही है. भगवान्को सर्वत्र दर्शन तो जो प्रह्लाद होवे वाकु ही होवे है.

बंबईमें हमारे बडे मंदिरमें रजोबाई क्षत्राणीके बालकृष्णलाल बिराजे हैं. और राजा आसकरणके और वाघाजी रजपूतके ठाकुरजी आजु-बाजु बिराजे हैं. पुराने समयसु बालकृष्णजीकी झारी सोनाकी है और बाकी सबकी चांदीकी है. वैष्णवें मुखियाजीकु कहते के हमकु चांदीकी जारीमेंसु नहीं, सोनाकी झारीमेंसु प्रसादी जल दो. मुखीयाजी भी पाछे सोनाकी झारीके जलको रेट ऊंचो रखे हैं. चांदीकी झारीको रेट एक रुपैया और सोनाकीको पांच रुपैया! वामें भी पाछे मुखियान्के बीचमें कोम्पिटिशन् चलती. छोटे मुखिया कहते के बडे मुखिया ही तुमकु सोनाकी झारीको जल दे सकें ऐसो कोई नियम नहीं है. हम भी तुमकु सोनाकी झारीमेंसु जल दे सके हैं. हकीकत जबकि वहांकी ये है के सब झारीको जल एक तांबाकी मटकीमें ठला दियो जाय है. ठलानेके पीछे वाको जल न सोनाकी झारीको रहे है न चांदीकी झारीको.

पुष्टिमार्गमें या तरहके कैसे-कैसे कौभांड चले हैं के जाकि श्रीमहाप्रभुजीने कल्पना भी करी नहीं होयगी वो आपकु बताऊं हूं के ९९ प्रतिशत वैष्णवकु मठडी-मोहनथालमें ही ठाकुरजीके प्रसाद होनेको भाव होवे है, झारीके जलमें प्रसाद होनेको भाव नहीं होवे है. वो तो मंदिरन्में पनालामें ढोल दियो जाय है. बाकी पुरानी पद्धति ऐसी हती के झारीको प्रसादी जल एक मथनीमें ठलायो जाय. पीछे वो मथनीको जल अपन जामेंसु जल पीवें वामें ठला दियो जाय. अपने ठाकुरजीको प्रसादी जल अपनकु आग्रहसु लेनो चहिये. पर दुर्भाग्य है के लोगनमें मठडी-मोहनथालमें प्रसादको बडो भाव है पर झारीके जलमें प्रसादको भाव नहीं रह गयो है. मतलब ये के भाव ठाकुरजीमें नहीं है, हिरण्यकशिपुवालो भाव है. सर्वत्र प्रभु बिराज रहे हैं, सब कछु प्रभुको प्रसाद है ऐसो भाव अपनेकु नहीं है, जामें अपनकु स्वाद लगे है उन मठडी-मोहनथालमें ही अपनकु चेंटान्की तरह प्रसादको भाव आवे है. चेंटानकु कैसे गुडमें भाव रूढ होवे है ऐसे अपने भीतर मिठाई मात्रमें प्रसादको भाव रूढ हो गयो है. ठाकुरजीकी सेवामें विनियोगमें आयी भयी वस्तुमें प्रसादको भाव नहीं है. प्रसादको भाव नहीं होके **प्रस्वादको** भाव अपने भीतर भर गयो है. ये अपने भीतर बैठ्यो भयो हिरण्यकशिपु है. पर प्रह्लाद अपनकु प्रेरणा दे रह्यो है के प्रभुकु अपनकु सर्वत्र देखनो चहिये मठडी-मोहनथालमें ही नहीं देखनो चहिये. हिरण्यकशिपुनने पुष्टिमार्गमें ऐसो विपरीत क्रम चला रख्यो है बाकी ठाकुरजीकी झारीको जल भी उतनो ही महनीय प्रसाद है जितनो महनीय प्रसाद मठडी-मोहनथाल है. अपनकु मठडी-मोहनथालसु कोई द्वेष नहीं है. पर झारीके जलकु निम्न स्तरको प्रसाद समझके मठडी-मोहनथालकु उत्तम प्रसाद माननो ये तो पुष्टिमार्गमें महान् घृणित कृत्य है. यासु ज्यादा घृणित काम दूसरो कोई हो नहीं सके है. प्रभु कहे हैं :''**पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति, तद् अहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः**''. पत्र फूल फल जल जो भी मोकु भक्तिसु समर्पित करो हो तो मैं वाकु स्वीकारुं हूं. और मठडी-मोहनथाल धरनेसु पहले वामें खुदके खानेको भाव लायो तो ठाकुरजी वाकु अरोगें नहीं हैं. और ये सहज सम्भव है के झारीको जल क्योंके तुमने

केवल ठाकुरजीके अरोगनेके भावसु धर्यो है यासु ठाकुरजी केवल झारीको जल ही अरोगते होवें. ठाकुरजी सोचते होंगे के ये तो शुद्ध मेरे ही लिये धर्यो गयो है. ये मैं आपकु राजसभावकी बात बता रह्यो हूं. भोग धरनेमें अपनो राजस भाव हो सके है और झारी भरनेमें सात्त्विक भाव होवे! यासु प्रभु भी शायद झारी पहले अरोगते होवें और मठडी-मोहनथाल ये सोचके अरोगते ही नहीं होवें के धरनेवालेको भाव यामें बिगड्यो भयो है तो मैं क्यों अरोगुं! ये पुष्टिमार्गकी दुर्दशा है. अपन श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्त समझ नहीं पाये. अपन नृसिंह चतुर्दशीको उत्सव बराबर नहीं मना रहे हैं वाको ये प्रमाण है. नृसिंह चतुर्दशी प्रत्येक पुष्टिमार्गीकु बराबर मनानी चहिये.

''यह व्रत माधव प्रथम लियो,
जो मेरे भक्तनकों दुःख दे ताकों फारों नखन हियो''.

भक्तकी प्रधानता प्रभुने नृसिंह चतुर्दशीके दिन प्रकट करी है. भक्ताधीनता प्रकट करी है. एक भक्तके उद्धारकेलिये प्रभुने नृसिंहावतार लियो है. आप फिरसु सोचो के नृसिंह चतुर्दशीमें बालभाव कहां है! पर फिर भी अपन नृसिंह चतुर्दशी मनावे हैं के नहीं!

एक रहस्यकी बात बताउं हू के प्राचीन हर गोस्वामीके घरमें नृसिंहजीको प्रादुर्भाव करनेकेलिये ठाकुरजीके संग एक नृसिंह शालिग्राम बिराजे ही है. शालिग्रामके छत्तीस प्रकार होवे हैं, उनमेंसु एक प्रकार नृसिंह शालिग्राम होवे है. हमारे घरमें भी नृसिंह शालिग्राम बिराजे है. किलामें भी बिराजे है. हर प्राचीन घरमें नृसिंह शालिग्राम बिराजे है.

नृसिंह जयन्तीके दिन नृसिंह शालिग्रामकु पञ्चामृत, पूजन होवें. ठाकुरजी तो वस्त्र-शृंगार धरके सिंहासनपे बिराजे भये हावे हैं, उनकु तो पञ्चामृत होवें नहीं. यासु ठाकुरजीकी गोदमें बिराजे भये नृसिंहजीकु पञ्चामृत ठाकुरजीके भावसु होवें हैं. पञ्चामृतमें नृसिंहजीके प्राकट्यकी भावना करके नृसिंहजी ठाकुरजीके पास बिराजें. तब ठाकुरजी और नृसिंहजीकु एकवत् मानके तिलक-आरती-भोग आदि सब समर्प्यो जाय है.

नृसिंह चतुर्दशीके दिन जैसे नृसिंह शालिग्रामकु पञ्चामृत होवे हैं. प्रबोधिनीके दिन सादे शालिग्रामजीकु पञ्चामृतादि होवे हैं. वो भी प्रायः सब घरनमें बिराज ते. गोवर्धनपूजाके दिन गिरिराजजीको पूजन होवे है. वामन द्वादशी और राम नवमी के दिन एकदम छोटे लड्डुगोपालको जन्मोत्सव करके ठाकुरजीके पास पधरायो जातो. और जन्माष्टमीके दिन दो बखत पञ्चामृत होवे है. जन्मदिनको सवेरेको पञ्चामृत मुख्य ठाकुरजीकु होवे है. और जन्मको पञ्चामृत मुख्य ठाकुरजीकु नहीं होके गोदमें जो लड्डुगोपाल बिराजते होवें उनकु होतो. तो नृसिंहशालिग्राम, सादे शालिग्राम, गिरिराजजी और छोटे लड्डुगोपाल इतने गोदके ठाकुरजी प्रायः हर घरमें बिराजते.

अब विचार करो के यदि अपने यहां केवल बाललीलाको ही भाव होतो तो ये चार जयन्ती कैसे मनतीं, प्रबोधिनी कैसे मनती. नृसिंहजयन्तीकु तो व्रजलीलाके साथ कोई लेनो-देनो नहीं है पर ये ब्रह्मलीला है. ब्रह्म सब कछु बन्यो है करके ब्रह्म कुछ भी बन सके है. या बातकी दुहाई नृसिंहावतार देवे है. करके श्रीनाथजीकी पीठिकामें नृसिंहजी बिराजे है. वाकी भावना भी ये ही बताई गयी है के श्रीनाथजी पुरुषोत्तम हैं तो नृसिंहजी अक्षरब्रह्म हैं. गये बखत मैने आपकु ये बात समझायी हती के ठाकुरजी जहां बिराजे हैं उनको वो धाम अक्षरब्रह्म है. अक्षरब्रह्म भी पाछे ठाकुरजी स्वयं ही बने हैं. अपने यहांकी सेवाभावनामें ठाकुरजीको सिंहासन, गादी, व्रज, वैकुण्ठ और यदि अपन स्मरण कर रहे हैं तो अपनो हृदय अक्षरब्रह्म स्थानी है. अक्षरमेंसु पुरुषोत्तम प्रकट हो सके है. जैसे कडी धूपमें रूई रखी भयी होयगी तो रूई नहीं जलेगी पर आईग्लास रूईके ऊपर रखो और वामेंसु धूपकु रूईपे डालो. रूई तुरंत जलने लगेगी. क्यों? आईग्लास् फैली भई धूपकी किरणन्कु कोन्सन्ट्रेट् कर देवे है जासु वाकी तीव्रता बढ जावे है और वो रूईकु जला देवे है. ऐसे, भक्तको भाव यदि तीव्र है तो पुरुषोत्तमकु प्रकट करवेकेलिये वो आईग्लास्के मानिन्द हो जावे है. आपको भाव है के मोकु प्रभुकु भजनो है तो अक्षरब्रह्ममें पुरुषोत्तमकु प्रकट कर सको हो. यदि भाव नहीं है तो वो अक्षरब्रह्म तो है ही पर वामें पुरुषोत्तम प्रकट नहीं हो सके है. नृसिंह चतुर्दशी

अपनकु या रहस्यकु समझानेको उत्सव है. या लिये पुष्टिमार्गमें नृसिंह चतुर्दशीको असाधारण महत्व है. व्रजलीलामें नृसिंह नहीं है तो नहीं है पर व्रज यदि अक्षरात्मक है और कृष्ण पुरुषोत्तम है तो वाको डेमोन्स्ट्रेशन् नृसिंहजीने दियो है, वाको सिद्धान्त नृसिंहजीने ही स्थाप्यो है.

ऐसे ही श्रीराम जयन्तीको भी अपने यहां महत्त्व है. राम मर्यादाके रूपमें प्रकट भये हते फिर भी भक्तकेलिये उनने अपनी मर्यादा तोडी: सीताजीकेलिये रोनेमें, शबरीके जूठे बेर खानेमें, बालीकु मारनेमें, अयोध्यावासीन्कु स्वधाम ले जानेमें. वैसे राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं. मर्यादा उनको स्थायी भाव है और पुष्टि सञ्चारीभाव है. और अपने कृष्णमें पुष्टि स्थायी भाव है और मर्यादा सञ्चारी भाव है. जब मर्यादाको आवेश कृष्णकु आ जावे है तब आप मर्यादाको पालन बडी सचाईसु करने लग जावें हैं. राम और कृष्ण या तरहसु एक-दूसरेके पूरक अवतार हैं. चाहो तो कम्पेर करो चाहो तो कोन्ट्रास्ट करो. जैसे श्रीराम सीताजीके लिये ऐसे रोये के जैसे कोई सामान्य पति अपनी पत्नीकेलिये रोतो होवे. पर कृष्ण कभी कोई गोपीकेलिये या स्वामिनीजीकेलिये रोये नहीं हैं. सब उनकेलिये रोयीं, वो कोईकेलिये नहीं रोये. रामके एक हैं और कृष्णकी सोलह सहस्र हैं. हर बातमें रामके अपोझिट् कृष्ण हैं. राम कभी रण छोडे नहीं, कृष्णकु रण छोडके भाग जानेमें कोई तकलीफ नहीं है. डरपोक होनेके कारण वो रण नहीं छोडे है. लड सके है, मार सके है फिर भी रण छोड देवे है. रामने बालीके सन्दर्भमें व्याधकी लीला करी तब बालीने पूछी के *''मै बेरी सुग्रीव पियारा कारण कवन नाथ मोहि मारा!''*. उनने कही के इतनीसी बात है! चल तु मोकु व्याधकी तरह मार लीजो, बस! ऐसे अन्य भी खुबसूरत विरोधाभास इन दोनोंकी लीलामें है. पर फिर भी इन दोनोंकी आवश्यकता अपनकु भक्तिमें है. क्योंके यदि माहात्म्यज्ञान नहीं होवे तो भक्ति नहीं हो सके है. माहात्म्यज्ञान मर्यादा है. और सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह नहीं होवे तो भी भक्ति नहीं हो सके है. और वो पुष्टि है. ऐसे मर्यादा और पुष्टि दोनों आवश्यक है. ठाकुरजीको दक्षिण चरण मर्यादाभक्तिको है और वाम चरण

पुष्टिभक्तिको है. ऐसे अपने ठाकुरजीके चरण भी उभयविध हैं, ठाकुरजीकी दृष्टि भी उभयविध है, ठाकुरजीके आकार्य भक्त भी मर्यादा और पुष्टि दोनों हैं.

श्रीनाथजीकी पीठिकाकी भावनामें ऐसे बतायो है के कटिपे जो श्रीहस्त है वासु आपने भक्तनकु वशमें कर रख्यो है और ऊर्ध्व हस्तसु आप भक्तनकु बुला रहे हैं. कई लोगनकु ऐसी भ्रान्त धारणा है के श्रीनाथजी गोवर्धनकु धारण करनेवालो स्वरूप है. गोवर्धनकी तो कन्दरामें आप ठाडे हैं. गोवर्धनधारणको स्वरूप श्रीजीको नहीं है. आप कन्दरामें ठाडे होके भक्तनकुं बुला रहे हैं. आपको वाम श्रीहस्त पुष्टिको है. होरीकी बात मैं कर रह्यो हतो. वामें आवे है के ''एंठत हो गजब गोवर्धन उठाये कहा!''. आपने गोवर्धन पर्वत उठायो वामें कौनसो तीर मार्यो! आप पर्वत क्यों उठा पाये वाको रहस्य हम आपकु बतावे हैं के आपने वाम श्रीहस्तसु पर्वत उठायो हतो. और आपको वाम अंग तो श्रीस्वामिनीजीको है! ''वाम अंग नीके वृषभाननन्दनीको है''. आपकु शक्ति तो वृषभाननन्दनीकी मिली हती! ये गाली है. और भगवान् सुलह करके गाली खावे हैं के हां, ठीक है, चलेगी. तो या रहस्यकु समझो के ठाकुरजीके भक्त मर्यादा भी हैं ओर पुष्टि भी हैं. केवल पुष्टिको फिक्सेशन् अपनकु नहीं रखनो है ये तो अपने ठाकुरजीको स्वरूप ही बता रह्यो है. करके श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों मिलके पुष्टिभक्ति बन रही है. पर सेवाको जहां तक सवाल है, अपन केवल रामनवमी और दशहरा के दिन रामलीला गावें हैं बाकी अपन व्रजलीला गावे हैं. क्योंके सेवामें प्रभु सेवककी मर्यादा स्वीकार रहे हैं. अपन प्रभुकी मर्यादा स्वीकारके करेंगे तो सेवा निभनी बंद हो जायेगी. क्योंके प्रभुकी मर्यादा तो सेवामें शास्त्रने बताई हती. उन मर्यादाके अनुसार सेवा करनेको सामर्थ्य न तो सबको हो सके है और न सबकु वाकी सुलभता हो सके है और न वो निभायी ही जा सके है. यासु श्रीमहाप्रभुजीने अपनेपे कितनी बडी कृपा करी, अपन श्रीमहाप्रभुजीको उत्सव क्यों मना रहे हैं वो आपकु समझा रह्यो हूं के श्रीमहाप्रभुजीने प्रकट होके अपनकु ये बतायो के मर्यादा अपनकु तोडनी नहीं

है पर सेवाके क्रममें सेवककी मर्यादा ठाकुरजी निभायेंगे. अपनकु ठाकुरजीकी मर्यादासु सेवा नहीं करनी है.

भक्तिको जहां तक सवाल है, भक्तिके अन्तर्गत सेवा है, सेवाके अन्तर्गत भक्ति नहीं है. जैसे एक कबाट है. वाके भीतर खाना हैं. ऐसे भक्ति एक कबाट है. वाके भीतर एक सेवाको खाना है, एक कथाको खाना है, एक स्वधर्माचरणको खाना है ऐसे कई खाना हैं. सेवाके खानामें भक्ति नहीं है, भक्तिके भीतर सेवा है. भक्तिमें माहात्म्यज्ञान मर्यादा है और स्नेह पुष्टि है. वाके अन्तर्गत नित्यसेवाक्रम स्नेहकी प्रधानतासु है, मर्यादाकी प्रधानतासु नहीं है. प्रभु अपनी मर्यादा स्वीकार रहे हैं के तु ब्राह्मण है तो मैं भी ब्राह्मण हूं, तु क्षत्रिय है तो मैं भी क्षत्रिय हूं. तु धनवान है तो मैं धनवान् हूं, तु निर्धन है तो मैं भी निर्धन हूं.

चैतन्य सम्प्रदायमें एक वार्ता है के ठाकुरजीने कोई तादृशी वैष्णवकु स्वप्न दियो के मेरो स्वरूप वा वृक्षके नीचे है. तु पधरा. वो वहां गयो और वाकु स्वरूप मिल्यो. वो तो भिक्षा मांगके अपनो निर्वाह करतो हतो. वाने भिक्षा जो मिलती वाकु ठाकुरजीकु भोग धरनो शुरु कियो. एक दिन ठाकुरजीने वासु कह्यो के तेरो भिक्षाको भोजन मोकु नहीं भावे है. तो वाने कही के तब तो आप कोई ऐसेके वहां पधारो के जो आपकु बिना भीख मांगे भोग धरे. मेरे पास तो दूसरी कोई आजीविका नहीं है. वाने ठाकुरजीकु ये नहीं कही के आपकु अच्छो अरोगनो होवे तो मोकु धन देदो. ठाकुरजीने वाकु कही के मैं दूसरेके पास नहीं जाउंगो, तेरे पास ही रहूंगो. मोकु अच्छो-अच्छो नहीं अरोगनो है. तोकु जो भीख मिले है वो अपन दोनों खायेंगे. ये पुष्टि है. अपने यहां भी ऐसे चरित्र (पद्मनाभदास-किशोरीबाई आदिके) वर्णित हैं.

जैसे मैने कह्यो के श्रीराम कभी-कभी मर्यादा तोडे हैं और श्रीकृष्ण कभी-कभी मर्यादा पाले हैं. श्रीकृष्ण क्योंके कभी-कभी मर्यादा पाले हैं

करके अपन चार जयन्ती ठाकुरजीकी मनावे हैं, ठाकुरजीकी मर्यादा निभाते भये. आप राम तरीके प्रकटे हो, आप नृसिंह-वामन तरीके प्रकटे हो यासु शास्त्रविधिके अनुसार पञ्चामृत स्नान पूर्वक ठाकुरजीको पूजन उन दिननमें करें हैं. नित्यक्रममें अपन पूजनको अंग प्रधान नहीं रखके स्नेहप्रधान सेवा करे हैं.

अक्षयतृतीया :

उत्सवक्रममें अपन कल वसन्तसु ग्रीष्म ऋतुके उत्सव तक आये. ग्रीष्म ऋतुके उत्सवमें अक्षयतृतीया शास्त्रीय-पौराणिक उत्सव है. युगादि तिथि है. पुष्टिमार्गके साथ अक्षयतृतीया दो तरहसु जुड्यो भयो है. शास्त्रीय ढंगसु तो अपन मनावें ही हैं. साथ-साथ श्रीनाथजीको पाटोत्सव श्रीमहाप्रभुजीने पूरणमल्ल क्षत्रीयके मनोरथसु देवालयमें कियो. पर ये पुष्टिमार्गमें मनायो जातो श्रीनाथजीको पाटोत्सव नहीं है. पर ऐतिहासिक पाटोत्सव है. या बातकु मैं कई बखत प्रवचनमें दोहरा चुक्यो हूं के श्रीनाथजी बहोत पीछे श्रीगुसांईजीके घर-सतघरामें पधारे, फागुन वद सप्तमीके दिन, और नृसिंह चतुर्दशी तक श्रीनाथजी देवालयकु छोडके श्रीगुसांईजीके घरमें बिराजे. या बातकेलिये श्रीव्रजरायजीने कही के पुष्टिमार्गमें यासु बडो उत्सव ओर कोई हो नहीं सके है. तो, या ढंगसु भी अक्षयतृतीया पुष्टिसम्प्रदायसु जुडी भयी है. साथ-साथ इन दिननमें ग्रीष्म ऋतु एकदम चढ जावे है अपने पूरे जोरसु. करके अपन या दिन ठाकुरजीकु चन्दन धरावें हैं. बहोत सारे दक्षिणके मर्यादामार्गीय मन्दिरनमें ठाकुरजी बारहों महीना चन्दन धरें हैं. और वो भी ऐसे ढंगसुं चन्दन धरें के जैसे चन्दनके वस्त्र धरे होवें. अपने पुष्टिमार्गमें चन्दन धरानेकी अपनी पद्धती है. एक तो अपन बारहों महीना चन्दन धरावें नहीं हैं. ग्रीष्म ऋतुमें ठाकुरजीके पास चन्दन पधरायो जाय है. पर धारावें केवल अक्षय तृतीयकु ही. वामें भी अपने ठाकुरजीके श्रीहस्त, चरण, वक्षस्थल और मस्तक जा नापके होवें वा नापकी चन्दनकी गोलीयें बनाके उनकु धरावें हैं. आखे श्रीअंगपे चन्दनको कलेवर नहीं चढावें हैं. मूर्तिपूजामें वो विहित है करके मर्यादामार्गमें वैसो कियो जाय है.

चन्दन समर्पवेके प्रकार :

अपने यहां चन्दन ठाकुरजीकु तीन तरहसु चढायो जाय है. सबसु पहेलो प्रकार वसन्त ऋतुको आपकु बतायो के जब अपन ठाकुरजीकु चन्दनसु खिलावें हैं. सामान्यतया मर्यादामार्गमें चन्दनमें अंगुली डुबोके वाके छींटा उडाये जाय हैं. ये चन्दनसु की जाती पूजा है. अपन वसन्त ऋतुमें चन्दनसु पूजा नहीं करें हैं, खिलावें हैं. खिलानो मतलब ठाकुरजीके वस्त्रकु चन्दनके रंगसु चितकबरो बनानो, सजानो. स्वरूप अपनकु जैसो अवकाश देवे वा ढंगसु अपन खिलावें हैं. श्रीहस्त, वक्ष, पाग पे चन्दनके टिपकाएं लगाये जाय हैं, छींटा नहीं उडाये जाय हैं. क्योंके ये पूजा नहीं है. पीछे उन टिपकान्‌के ऊपर गुलालके, आसपास चोवाके टिपकाएं लगाये जाय हैं. वामें खिलानेवालेकी जैसी इच्छा होवे ऐसे खिला सके है. मूल हेतु ये है के चारों रंगसु ठाकुरजीकु चितकबरो बनानो है, विविध रंगसु रंगनो है जासु कि एक ही रंग वस्त्रपे नहीं दीखे.

पहले ठठाको अबीर आतो हतो. सफेद अबीर पहले सिंघाडाको बनतो हतो. ठठाको अबीर सुगन्धकेलिये आवे है, रंगके रूपमें वो नहीं आवे है. रंगके संग ठाकुरजीकु सुगन्ध भी आवे वाकेलिये ठठाको अबीर आतो हतो. वाके अंदर कपूरकाचली जैसी चीजें मिलायी जाय हैं. यदि ठाकुरजीके खेले भये वस्त्र अपन संभालके रखें तो एक-एक साल तक भी वाकी महेक वामें रहे है. मैं अक्सर ठाकुरजीके डोलके दिन धरे वस्त्रकु साथ रखुं हूं. बहारगाम जावें तो कमसु कम ठाकुरजीकी महेक तो अपनकु मिले. दूसरे रंगनसु भी ठाकुरजी खेले हैं. सामान्यतया खेलके शुरुआतके दिननमें चार रंगसु ठाकुरजी खेले हैं. दूसरे रंगसु ठाकुरजी होरीडंडा रोप्यो जाय वाके बादके दिननमें खेले हैं. जैसे रसिया गावेके विषयमें है. शुरुआतके दिननमें केवल वसन्त राग गवे. पर बादके दिननमें दूसरे रागकी छूट हो जावे है.

तो एक चन्दन समर्पवेको प्रकार चन्दनसु खिलानो है. दूसरो ठाकुरजीकु चन्दनसु चर्चित करनेको प्रकार बडे उत्सवमें होवे है. वो प्रकार

खास करके श्याम स्वरूपकु किया जाय है. वामें ठाकुरजीके गालके दोनों बाजु चन्दनसु कमलपत्र किये जाय हैं. शलाकाकु चन्दनमें डुबोके कमलके तीन पत्ता बनाये जाय हैं. और वाके पीछे गोलाईवाली डाली बनाई जाय है. याके दो प्रकार होवे हैं. एक तो कमलपत्र और दूसरो मरवट कह्यो जाय है. मरवट प्रबोधिनीके दिन होवे है.

अपने ठाकुरजी यदि गौर हैं तो कस्तूरी या कंकु सु कमलपत्र-मरट होवे हैं. गौर स्वरूपकु चन्दनसु मरवट नहीं होवे है. श्याम स्वरूपपे तो चन्दनी रंग खिले है, गौरपे खिले नहीं है यासु कस्तूरी या कंकु सु उत्सवपे कमलपत्र होवे है.

याके अलावा जब-जब पञ्चामृत और पूजाको प्रकार होवे तब-तब चन्दनसु ठाकुरजीकी पूजा होवे है. जैसे, चार जयन्ती, प्रबोधिनी और गोवर्धनपूजा. ये पूजा शास्त्रविधिके अनुसार होवे है. या बखत मर्यादाविधिके ढंगसु अंगुली चन्दनमें डुबोके थोडे छींटा वस्त्र-फूलमालापे उडाये जाय हैं.

ठाकुरजीकु जब अभ्यंगस्नान होवें वा बखत भी चन्दनको उपयोग होवे है. आज अपन जा साबुनसु स्नान करें हैं वो सफाई और सुगंध दोनों काम एकसाथ करे है. प्राचीन कालमें ये काम अलग-अलग वस्तुसु कियो जातो हतो. सफाईको काम आंवला करते और सुगन्धकेलिये चन्दन लगायो जातो. अभ्यंगमें सबसु पहले ठाकुरजीके श्रीअंगपे फुलेल, चमेलीको तेल, की मालिश होवे. बादमें आंवलासु श्रीअंगकी सफाई होवे. पीछे स्नान होके श्रीअंगपे चन्दन सुगन्धकेलिये धरायो जाय है. ऐसे अभ्यंगमें भी चन्दनको उपयोग होवे है.

याके अतिरिक्त सबसु अलग प्रकार अक्षयतृतीयाको है. या दिन उष्णकालकी दृष्टिसु ठाकुरजीकु ठंडककेलिये श्रीअंगपे चन्दनकी गोली धरायी जाय है. ये विधि मर्यादामार्गमें भी है.

रामानुजसम्प्रदायके एक गुरुजीसु मैं 'श्रीवचनभूषण' ग्रन्थ पढतो हतो. एक दिन वो बहोत खुश भये तो उनने मोकु वरदराजस्वामीके वरदहस्तको इतनो बडो पूरो चन्दन दियो. वा चन्दनपे ठाकुरजीकी चारों अंगुलियें और अंगूठा अंकित हते. वाकु अपन अपने माथेपे रखें तो अपनकु ऐसो ही लगे के ठाकुरजी अपनकु आशीर्वाद दे रहे हैं.

अपने यहां भी या तरहसु ठाकुरजीकु चन्दन धरायो जाय है. वो चन्दन वडो करके अपन बाहरगाम जावें तब वाकु साथ ले जावें तो ठाकुरजीके चरणारविन्दके चन्दनको स्पर्श करके ठाकुरजीके चरणस्पर्शको भाव तो अपन कर ही सके हैं. बहोत बखत तो ठाकुरजीको प्रसादी चन्दन स्वरूपके भावसु सेवामें भी पधरायो जाय है. हमारे यहां भी मथुराधीशजीके चार श्रीहस्तके चार चन्दन सेवामें बिराजे हैं. हमारे दादीजी मथुराधीशजीके घरके हते. दादीजीकु मथुराधीशजीपे बहोत आसक्ति हती. यासु दादाजी जब वहांसु किशनगढ पधारे तब बहोत करके साथमें प्रसादी चंदन पधराके लाये हते. उनकी मथुराधीशजीपे इतनी आसक्ति हती के यहां तो वो बालकृष्णलालकी सेवा करते पर बालकृष्णलाकु भी मथुराधीशजीके भावसु चार आयुध धराते. लालन तो प्रायः वेणु-वेत्र नहीं धरें हैं पर दादीजी लालनकु भी मथुराधीशजीके भावसु वेणु-वेत्र धराते. लालनको नाम भी उनने 'मथुराधीश' रख्यो. उनको पाटोत्सव भी वो मथुराधीशजीके पाटत्सवके दिन ही मनाते.

तो ठाकुरजीकु जो चन्दनकी गोली धराई जाय है वो ग्रीष्मोपचारके रूपमें धराई जाय है. वामें अपनी ऐसी धारणा है के ठाकुरजीकु वक्षपे चन्दन धरानेसु शीतलता होवे है. मोकु अभी भी याद है के पहले श्रीमहाप्रभुजीको उत्सव मैने लगातार १६-१७ वर्ष तक किशनगढमें ही मनायो हतो. वा बखत किलामेंसु ब्रजमोहनजी मुखीयाजी दोना भरके ठाकुरजीको प्रसादी चन्दन पधराके आते और मोकु यहां-वहां धराते. सचमुचमें वासु बडो सुखद अनुभव होतो हतो. उनने मोकु चन्दन धरायो करके वाकी सुखदताको बोध

मोकु भयो. नहिंतो तो मैं ऐसे समझतो हतो के चन्दन ठाकुरजीकु धरानो वो कोई जातकी शास्त्रीय विधि है जाकु अपनकु करनी चहिये.

या तरहसु अपनने देख्यो के एक अक्षयतृतीयामें कितने सारे उत्सव मिश्रित हैं. युगादि है, श्रीनाथजीको देवालयमें पाटोत्सव है जाकु आज अपन नहीं मनावें हैं. क्योंके देवालयमें बिराजे वाकु पुष्टिमार्गसु क्या लेन-देन. और ठाकुरजीकु ग्रीष्मोपचार भी होवे है. करके वा दिनसु चन्दन, गुलबजल, पंखा, कुंजा आदि आवें. जडाउ शृंगार बंद होके सीप और मोती के हलके शृंगार ठाकुरजी धरें. याके पीछे नृसिंहचतुर्दशी आदि उत्सव आवे हैं जो मैने आपकु समझाये.

रथयात्रा :

रथयात्राको उत्सव मर्यादामार्गीय उत्सव है. पर वा उत्सवकु मनानेमें अपने और मर्यादामार्ग के बीच बहोत बडो अन्तर है. प्राचीन प्रणालीके अनुसार देवालय बनानो हंसी-खेलकी बात नहीं हती. क्योंके देवालय सिर्फ देवको मन्दिर नहीं होतो हतो, वासु जुडी भई बहोत सारी बातें होती हती. मुसलमान भारतमें आये वाके पीछे देवालय बनानेकी प्रणालीमें बहोत सस्तोपन आ गयो. प्राचीन कालमें देवालय ऐसी प्रणालीके होते हते के जामें आध्यात्मिकता और अधिदैविकता धडकती रहेती हती.

देवालयनिर्माणकी पद्धति :

जब कोई देवालयको निर्माण होतो तब साथ-साथ वेद-वेदाङ्गनकी पाठशाला, यात्रीन्केलिये धर्मशाला, गोशाला, पुस्तकालय, देवपूजाके फूल-तुलसी आदिकेलिये बगीचा आदि भी बनते. इतनो ही नहीं, देवपूजाके जलकेलिये, देवके विहारकेलिये, देवपूजार्थ स्नानकेलिये एक पुष्करणी (छोटो तालाब) बनाई जाती हती. वामें कपडा धोनो, कुल्ला करनो जैसी क्रियाएं वर्जित हतीं. देवालयसु जुडे भये खेत होते हते जाको अनाज या उपजको द्रव्य देवालयके कार्यार्थ वापर्यो जातो. ये सारी पद्धति देवपूजनके

शास्त्र पञ्चरात्रमें विस्तारसु वर्णित हैं.

ऐसो देवालय समस्त गामको होतो हतो. वामें बिराजनेवालो देव आखे गामको देव कहलातो हतो. पूरो गाम वा देवकी प्रजा कहलातो. वामें जो उपनीत ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य होते उनकु देवपूजाको अधिकार होतो हतो. ये तो वाकी सिस्टम्की बात बता रह्यो हूं. और गामके जो अनुपनीत लोग होते वो भी होते तो वा देवकी ही प्रजा यासु उनकु दर्शन देनेकेलिये देव रथमें बिराजके देवालयसु बाहर गाममें पधारतो और सारे गाममें घूमते. ये प्रणाली श्रीजगन्नाथरायजीमें आज भी है.

समग्र जगदीश क्षेत्रके राजा श्रीजगन्नाथरायजी हैं. वहां तक कि जगन्नाथपुरीको लौकिक राजा अपने आपकु मन्त्री मानतो. ये भावना बहोत जगह रही है. जैसे सांगलीके मुख्य देव गणपति हैं. वहांको राजा गणपतिजीकु अपनो राजा मानतो और खुदकु उनको मन्त्री मानतो. किशनगढके राजन्में भी ऐसी भावना रही है के ठाकुरजी उनके स्टेटके राजा हैं और वो उनके दीवान हैं.

ठाकुरजी अपनी प्रजाकु दर्शन देनेकेलिये रथमें बिराजके पधारे हैं. सौराष्ट्रमें माधवपुर नामको गांव है. वहां श्रीमाधवरायजी बिराजे हैं. वहां जब माधवरायजीकी रथयात्रा निकले तब वहां तक छूट है के हरिजन माधवरायजीकु छूके चरणस्पर्श कर सके है. वा दिन ठाकुरजी छुवे नहीं है. क्योंके वा दिन ठाकुरजी राजाकी तरह अपनी प्रजाके बीचमें पधारे हैं.

ये पद्धति दक्षिणमें हती. पर श्रीगुसांईजी जब जगन्नाथजी पधारे तब वहांको उत्साह देखके आपकु ऐसो मनोरथ भयो के अपने घरके ठाकुरजीकु भी रथमें पधराके उत्सव मनानो चहिये. पर अपने उत्सवको रहस्य समझो. अपनो ठाकुरजी गामको तो राजा है नहीं, अपने घरको राजा है, घरको ठाकुर है. करके अपने ठाकुरजीकी रथयात्रा अपने घरके भीतर ही निकले है,

घरसु बहार कभी भी नहीं निकले है. ये कितनी बडी बात है. और जिनके पास बडे घरकी सुविधा होवे जामें ठाकुरजीको निजमन्दिर, तिबारी, डोलतिबारी, चौक आदि सब होवें. तो रथयात्राके दिन ठाकुरजी निजमन्दिरमेंसु तिबारीमें पधारे हैं, वहांसु फिर ठाकुरजी रथमें बिराजके चौकमें घूमें हैं. चौकमें घूमके फिर डोल तिबारीमें पधारें. वहांसु घूमके पाछे चोकमें पधारके चौथे भोगके पीछे पाछे निजमन्दिरमें पधार जाते. निजमन्दिर यशोदाजीको घर है, चोक गिरिराजजी है, डोल तिबारी वृन्दावन है. या ढंगसु अपन अपने घरमें ही सारे व्रजकी भावना करके ठाकुरजीकु फिरावें हैं. अपन गाममें ठाकुरजीकु नहीं फिरावे हैं. अपनो ठाकुर गामको ठाकुर नहीं है के जाकु अपन गाममें फिरावें.

दुर्भाग्य है के पुष्टिमार्गके देवालयवादीन्ने अपने घरके ठाकुर और गामके ठाकुर के रहस्यकु समझ्यो ही नहीं. कितनी मीठी बात है के अपनो घरको ठाकुर रथमें बिराजे है और *''मैया! मैं रथ पर चढ डोलूंगो''* ऐसी जिद्द करे है. पर डोलेगो कहां? जहांको राजा है वहीं तो डोलेगो! जहांको राजा नहीं है वहां कैसे डोलेगो! किशनगढके राजाकी सवारी निकलेगी तो किशनगढमें निकलेगी के जयपुरमें! ऐसे अपने घरके ठाकुरकी सवारी अपने घरमें ही निकलती हती. ये कितनी मीठी-मधुर बात हती पर अभागे देवालयवादीनकी खोपडीमें ये आ नहीं सके है ऐसी काट खायी भयी खोपडी उनकी है. अपनो ठाकुर रथमें बिराजे पर कभी भी ठाकुरजीको रथ घरकी ड्योढीके बाहर नही निकले!

मैं अक्सर प्रवचनमें ये बात कहतो होउं हूं के अपने किशनगढके राजान्ने तो उनके ठाकुरजीके मंदिरके आगे हाऊ-बिलाऊ बैठा रखे हैं ठाकुरजीकु डरानेकेलिये के महाराज! या दरवाजासु बाहर मत निकलियो नहिंतो हाऊ-बिलाऊ काटेंगे. जैसे बच्चाकु अपन डरावें ऐसे ठाकुरजीकु डरानेकेलिये उनने ये कियो है. सोचो के राजाकु अपने ठाकुरजीपे कितनो भाव होयगो! मोकु भी उनको भाव बहोत अच्छो लग्यो. मैने भी हाऊ-

बिलाऊ लेनेकी सोची पर कहीं मिले नहीं. शायद बनने बंद होगये हैं. पर गये बरस हम नेपाल गये हते. वहां मोकु हाऊ-बिलाऊ मिल गये. मैने भी ठाकुरजीकु डरानेकेलिये दो हाऊ-बिलाऊ खरीदे. पदमें आवे है *''दूर खेलन जिन जाओ ललारे बनमें बैठे हाऊ-बिलाऊ''*. ठाकुरजीने कही के मैने तो कोई हाऊ-बिलाऊ देखे नहीं, गाय तो रोज चराउं हूं. अरे, तू नहीं डरे है पर हमकु तो तोकु डरानो पडेगो के दूर खेलन मत जाओ वनमें बैठे हाऊ-बिलाऊ. वन कौनसो? अपने घरके बाहर हाऊ-बिलाऊको वन है. ये कितनी बडी बात हती जो किशनगढके राजन्ने समझी. वो गोस्वामी नहीं हते पर गोस्वामीन्कु समझने जैसी बात उनने सोची हती. आजके गोस्वामीन्कु इन वैष्णव राजान्के शिष्य बनके समझनो चहिये. आज हम लोगन्के ये बदहाल हो गये हैं के हम ठाकुरजीकु ले-लेके यहां-वहां डोल रहे हैं, वाकी एड्वर्टाइझ छापे हैं, ठाकुरजी पधार रहे हैं यात्राकरने खास आओ. ये सब तुम कौनकु दिखा रहे हो? कौनकु बुला रहे हो? ये क्या धंधा है! तुमकु यदि भीड इकट्ठी करनी है तो अपने अंदर ऐसे गट्स् पैदा करो के तुम्हारे व्यक्तिके आकर्षणसु वैष्णव आवे. तुमकु उनसु जितनी भेट बटोरनी होवे बटोरो! झोला तुम्हारो है, पाकिट वाकी है. तुमकु कौन मना कर रह्यो है! जितनो लूट सकते हो उतनो लूटो. पर कमसु कम ठाकुरजीकु तो बीचमें मत फंसाओ! सोचो, कहां गई वो भावना के ''वनमें बैठे हाऊ-बिलाऊ''. दिल दूखे है जब अपन रथयात्राको विचार करे हैं. कैसी हती अपनी रथयात्रा और कैसे बदहाल आपनने आज कर दिये हैं. क्या अपनकु ठाकुरजीकु गाममें घुमानो नहीं आतो हतो? क्या इतने अपने अनुयायी नहीं हते? स्टेटके जमानामें तो ऐसी स्थिति हती के राजा वैष्णव हते तो जो पुष्टिमार्गी नहीं हते वो भी राजाकु अच्छो दिखानेकेलिये तिलक-कंठी पहन लेते हते. इतनो वर्चस्व हतो तब भी अपनने अपने ठाकुरजीकी रथयात्रा अपने घरसु बाहर क्यों नहीं निकली यापे कभी विचार कियो है? यहांके राजा तो ये मानते ही हते के कल्याणरायजी ठाकुरजी किशनगढके राजा हैं और हम उनके दीवान हैं. पर फिर भी उनने कल्याणरायजीकी रथयात्रा किलाके बाहर कभी भी नहीं निकाली. क्यों? सोचो. ठाकुरजी उनके राजा

हैं ये उनको भाव हतो पर पुष्टिसिद्धान्तपे वो कितने दृढ हते के ठाकुरजी तो घरके हैं सो घरके बाहर नहीं पधारने चहिये. करके उनने हाऊ-बिलाऊ बैठाये. ये पुष्टिको भाव आज कहां चलो गयो! कभी ये विरोध सोचें तो अपनकु रोनो आवे. हृदयकी वो मृदुता कहां चली गई के ठाकुरजीकु अपन इतनो अपनो मानें के जैसे अपनो बच्चा घरको दरवाजा छोडके जावे और अपनकु घबराहट हो जावे के बच्चा कहां गयो, कहां गयो. ऐसो भाव अपनकु अपने ठाकुरजीके प्रति क्यों नहीं रह्यो? याके पीछे मुख्य कारण ये है के अपनकु अपने घरके भीतर अपने ठाकुरजीकी सेवा सुहानी बंद हो गई है. मोकु लगे है के दस-पंद्रह सालमें ये हाल हो जायेगो के अपने ठाकुरजीकी भी रथयात्रा गाममें निकलने लग जायेंगी. शकिलने अच्छी बात कही है :

नई सुबहपे नझर है और साथ ये भी डर है
ये सहर भी रफ्ता-रफ्ता कहीं शाम तक न पहोंचे
गमे आशिकीसे कहदो राहे आम तक न पहोंचे
मुझे डर है कि ये तोहमत मेरे नाम तक न पहोंचे

ये तोहमत पुष्टिमार्गके नाम तक पहोंचेगी के पुष्टिमार्गके ठाकुरजी भी गाममें घूमते हो जायेंगे. हरेकृष्णवाले उनके ठाकुरजीकी रथयात्रा उनके सम्प्रदायके प्रचारकेलिये निकाले हैं. अपनकु भी कोई दिन कोम्पिटिशन्को भाव आयेगो और अपन भी उनकी देखा-देखी उनके हथकंडा अजमाते हो जायेंगे.

एक बालक मोकु कह रहे हते के अपनकु भी मुसलमाननकी तरह अपने मंदिरन्पे लउड्स्पीकर रखके वापे यमुनाष्टक जोर-जोरसु बजानो चहिये. मैने कही उनकु चिल्लाने दो, अपनो यमुनाष्टक इन सब चीजनकेलिये नहीं है. अपनो यमुनाष्टक अपने ठाकुरजीकी सेवाकेलिये है, गामकु जगानेकेलिये थोडी है. मुसलमाननकी बांग नमाजीनकु मस्जिद्में बुलानेकेलिये होवे है. अपनो यमुनाष्टक अपने तन-मनकु सेवानुकूल शुद्ध करनेकेलिय है. प्राचीनकालमें न्हाते बखत ये श्लोक बोल्यो जातो हतो :

श्रीकृष्णवल्लभे देवी यमुने तापहारिणी ।

सेवार्थैः स्नातुमिच्छामि जलऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।

हे श्रीकृष्णकु प्रिय श्रीयमुनाजी! जितनी समय हमसु सेवा नहीं भयी वाके कारण, मानसिक ताप हमकु भयो होवे के नहीं पर जीवात्माकु प्रभुसेवासु विमुख रहेनो तापजनक है, वा तापकु आप हरनेवले हो. मैं ठाकुरजीकी सेवाकेलिये स्नान करनो चाह रह्यो हूं. आप या जलमें प्रकट हो जाओ के जासु आपमें स्नान करके मैं ठाकुरजीकी सेवाके लायक बन जाउं.

ठाकुरजीकु पुष्ट करते बखत भी यमुनाजलसु स्नान करायो जाय है. यमुनाजीसु ठाकुरजी स्नान करे लेवें तो ठाकुरजी भी 'पुष्ट' हो जावें. और अपन यमुनाजलसु स्नान करें तो ठाकुरजीकी सेवा करने लायक हो जावें. आजकल तो सब भूल गये पर प्राचीन समयमें लोगन्में ऐसो भाव हतो के जो ब्रह्मसम्बन्ध लेवे जावे वाके आगे एक आदमी जमीनमें जल छिडकते भये चलतो. वामें भाव ऐसे सोच्यो जातो के श्रीयमुनाजी अपनकु ठाकुरजीके पास ले जा रहे हैं.

''ब्रह्मसम्बन्ध जब होत या जीवकों तब ही इनकी भुजा वाम फरके,
दौर कर सौर कर जाय पियसों कहे अति आनन्द मनमें जु हरखे''.

यासु यमुना तो वो तत्त्व है के जो अपनकु भी पुष्ट करे है और अपने ठाकुरकु भी पुष्ट करे है.

संक्षेपमें ये समझो के रथयात्राको उत्सव वैसे शास्त्रीय उत्सव है पर अपनने वाको बडी खुबसुरतीसु पुष्टिमार्गीकरण कियो है. या रहस्यकु यदि अपन भूल गये तो अपन पुष्टिमार्गमें जीने लायक नहीं रह जायेंगे. यासु ये आवश्यक है के हर पुष्टिमार्गी वा रहस्यकु समझे और वाके अनुसार जीये. अपनी रथयात्राको रथ पुष्टिपथपे चले है, गामके पथपे नहीं चले है. या रहस्यकु कभी मत भूलीयो.

अपने यहां निर्वाणोत्सव नहीं :

एक ओर घटना याके साथ जुडी भई है. उत्सवात्मक रूपसु नहीं

पर ऐतिहासिक रूपसु जुडी भई है. वो ये है के आजके दिन आचार्यचरण नित्यलीलामें पधारे हैं. मानो ठाकुरजी आचार्यजीकु लेने रथपे बैठके पधारे और आप ठाकुरजीके संग पधारे. जैन-बौद्धनमें निर्वाणोत्सव मनायो जाय है, अपने यहां तिरोधानको उत्सव मनायो नहीं जाय है. वाके पीछेको कारण वार्तामें बहोत अच्छे ढंगसु समझायो है के जा बखत श्रीमहाप्रभुजी नित्यलीलामें पधारे वा बखत कई भगवदीयें रोवे लग गये. अच्युतदास सारस्वतने उनकु आश्वासन दियो और जब टेरा खोल्यो तो आचार्यजी भीतर बिराजे भये पोथी देख रहे हैं ऐसे दर्शन सबनकु करवाये. यासु जब आचार्यजी सदा बिराज रहे हैं तो फिर अपन तिरोधानको उत्सव क्यों मनावें!

बौद्ध-जैन निर्वाण माने हैं. 'निर्वाण' मतलब बुझनो. अपनो आचार्य बुझतो होवे ऐसो दीपक नहीं है, सदा प्रज्वलित दीपक है. न अपन श्रीमहाप्रभुजीके परलोकगमनको उत्सव मनावें हैं. क्योंके जब श्रीमहाप्रभुजी भूतलपे बिराज ही रहे हैं तो अपन क्यों परलोकगमनको उत्सव मनावें. अपने आज भी श्रीमहाप्रभुजीकी सेवा करे हैं. पहले श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूपकी सेवा नहीं होती हती. पर मैने यहां किशनगढमें श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूप पधराये और सेवाको क्रम शुरु कियो. अब तो कई जहग श्रीमहाप्रभुजीके स्वरूप सेवामें पधारे हैं. चित्र और स्वरूप के अलावा श्रीगुसांईजीके कालसु श्रीमहाप्रभुजीके हस्ताक्षर-पादुका की सेवा साक्षात् स्वरूपके ढंगसु ही होती हती. बैठकजीमें भी श्रीमहाप्रभुजीकी स्वरूपसेवाको प्रकार हतो ही. इतने सारे श्रीमहाप्रभुजीकी सेवाके प्रकार हते ही क्योंके श्रीमहाप्रभुजी सदा सर्वदा बिराज ही रहे हैं तो फिर अपन क्यों रथयात्राके साथ तिरोधानको उत्सव मनावें! करके रथयात्राके पदनमें श्रीमहाप्रभुजीके पधार जानेको कोई पद नहीं है. अपन श्रीमहाप्रभुजी, कृष्ण-राम के जन्मोत्सव मनावें हैं पर उनको निर्वाणोत्सव नहीं मनावें हैं. क्यों? क्योंके *''सदा व्रजहीमें करत विहार''.* तुम्हारे भीतर यदि भावना है ठाकुरजीकु घरमें पधराके सेवा करनेकी, ठाकुरजीकु हृदयमें पधराके भावभावना करवेकी तो ठाकुरजी यहीं बिराज रहे हैं. अपन क्यों निर्वाणोत्सव मनावें! ये कहवेके पीछे मेरो हेतु ये है के आज

पुष्टिमार्ग जा ढंगसु बिगडतो जा रह्यो है वाकु देखते भये ऐसो लगे है के मुसलमान, जैन और बौद्धन की देखादेकी अगले १०-१५ सालमें अपन भी श्रीमहाप्रभुजीको निर्वाणोत्सव मनाते हो जायेंगे. आज तक अपनने क्यों ये उत्सव नहीं मनायो वाको भाव बिलकुल स्पष्ट है के श्रीमहाप्रभुजी हर वक्त अपने साथ बिराज ही रहे हैं. स्वयं श्रीमहाप्रभुजी अन्तःकरणप्रबोध ग्रन्थमें आज्ञा करे हैं के ''**देह-देशपरित्यागः तृतीयो लोकगोचरः**''. श्रीमहाप्रभुजीको देह-देशपरित्याग लोकगोचर मात्र है. लोगनकु ऐसो लगे है के आपने देह-देशको परित्याग कियो है. वस्तुतः न तो आपने देहत्याग कियो है और न आपने देशत्याग कियो है. ये तो आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी अपने शब्दनमें कर रहे हैं. यासु ही आज पांचसोसु भी अधिक वर्ष तक अपन याकु श्रीमहाप्रभुजीकी आसुरव्यामोहलीला ही कहते आये हैं. अर्थात् असुरनकु ऐसो लगेगो के श्रीमहाप्रभुजी भूतल छोड गये हैं, दैवी जीवनकु तो ऐसो लग ही नहीं सके है के श्रीमहाप्रभुजी अपनकु छोड गये हैं. श्रीमहाप्रभुजी, श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीनृसिंह, श्रीवामन सदा अपने साथ बिराज रहे हैं. करके श्रीगुसांईजीने 'विद्वन्मण्डन' ग्रन्थमें नित्यलीलावादमें लिख्यो है के प्रभुकी सभी लीला नित्य हैं. पर अपनकु वाकी नित्यता तो समझमें आ सके के यदि अपने भीतर वाकी भावना होवे. ये पुष्टिमार्गको ही सिद्धान्त नहीं है. मर्यादामार्गमें भी कोई श्रीकृष्ण या श्रीरामको निर्वाणोत्सव नहीं मनावे है. क्योंके अपनो ठाकुर नित्यलीलामें बिराज रह्यो है ऐसो वैष्णव, शैव आदि सभी वैदिकधर्मावलम्बिनको भाव हतो. यासु अपनने कभी भी इन घटनाकु असामान्य नहीं मानी. अपन याकु इतनी सहजतासु लेवे हैं के पहले आप वैसे बिराजते हते अब या तरहसु बिराजे हैं. यासु यामें अपनकु न तो उत्सव मनाने जैसो कछु लगे है और न छाती कूट-कूट के ''हाय हम न हुवे'' करने जैसो लगे है.

मैं जबलपुर गयो तब एक वैष्णव मेरे सामने रो-रोके कहने लगी के मैं पिछले सात-आठ वर्षसु ठाकुरजीकी सेवा कर रही हूं पर ठाकुरजीके दर्शन अभी तक नहीं भये. मैने वासु कही के जब तोकु दर्शन ही नहीं हो रहे

हैं तो फिर तु सेवा कैसे कर रही है ये तो बता! ये सुनके वाकु क्लिक् भयो. फिर वो कहने लगी के यों तो दर्शन दे रहे हैं पर यों नहीं दे रहे हैं. मैने कही के यों और यों को मतलब क्या है? तु जाकी सेवा कर रही है वाकु क्या तु धातु-पथ्थरको टुकडा मान रही है? ऐसो यदि मान रही है तो तोकु कभी दर्शन होंगे ही नहीं. और यदि साक्षात् मान रही है तो फिर तोकु दुःख क्यों हो रह्यो है के ठाकुरजी दर्शन नहीं दे रहे हैं. दर्शन दे रहे हैं तभी तो सेवा कर रही है! फिरसु यहां नृसिंह अवतारकु याद करलो तो सारो रहस्य समझमें आ जायेगो. प्रह्लाद बनोगे तो समझमें आयेगो, हिरण्यकशिपु बनोगे तब तो फिर आसुरव्यामोह लीला ही होयगी.

बडे मंदिरमें एक बखत ऐसो विवाद भयो हतो. हमारे परिवारके मुख्य ठाकुरजी बालकृष्णलाल हैं. एक दिन चर्चा करते-करते हमारे चचेरे भाईने मोसु पूछी के तु बालकृष्णलालमें ठाकुरजी माने है के नहीं. मैने कही के नहीं मानुं हूं. अब तो ऐसी कांय-कांय मची के जैसे दिवालीको फटाकडा फूट गयो होवे. सब कहने लगे के ये तो पढ-पढके नास्तिक हो गयो है. याकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है. बालकृष्णलालमें ठाकुरजी नहीं माने है. ये बात काकान् तक पहोंची. सबने अपने-अपने पितानकु जाके कही. काकानने जाके फरीयाद हमारे दादाजीसु करी. दादाजीने मोकु बुलाके फटकार्यो के श्यामु, तु क्या बकवाद करे है! दादाजीकु कही के मैने कोई बकवाद नहीं करी है. ये लोग कह रहे हते के तु बालकृष्णलालमें ठाकुरजी माने है के नहीं. तो आप ही बताओ के बालकृष्णलालमें ठाकुरजी होवे हैं के बालकृष्णलाल स्वयं ठाकुरजी हैं! बालकृष्णलाल कोई डब्बी तो है नहीं के जाके भीतर ठाकुरजी होवें. दादाजी ये सुनके हंस पडे और कही के तु तो ऐसे ही सबकु चिढातो रहे है. मैने कही के लोग सवाल गलत करें तो उनकु मैं कैसे जवाब दउं!

तो ये बात ऐसी है. तो ठाकुरजी तो साक्षात् हैं, दर्शन तो देही रहे हैं. फिर अपन रोनेकी जरूरत क्या है! ठाकुरजीकु स्नान करा रहे हैं, कपोल

खिला रहे हैं, रंग छांट रहे हैं... दर्शन तो हो ही रहे हैं. अब ओर कौनके दर्शन करने हैं! अब तुमकु श्रद्धा नहीं है, विश्वास नहीं है तब तो तुमकु जीवित आदमीपे भी विश्वास नहीं होयगो. तुम्हारो क्या भरोसा!

एक परिचितकु ज्योतिषिने कहदी के तुम्हारी आत्मा तुम्हारेमेंसु निकलके नारियलके पैडपे बैठ गई है और कोई दूसरे दुष्टकी आत्मा तुम्हारे भीतर घुस गई है. वो रोती-रोती मेरे पास आके कहने लगी के अब मैं क्या करूं. मैने कही के दुष्ट आत्मा तेरे भीतर घुस गई है तब भी तू मोकु पहचान रही है, मैं तोकु पहचान रह्यो हूं फिर चिन्ताकी बात क्या है? तेरी आत्माकु नारीयलके पैडपे बैठनेदे. तेरेकु क्या फर्क पड रह्यो है! ज्योतिषिएं कैसी-कैसी बकवास करे हैं. अपन भी कैसी बातें सोचें हैं के बालकृष्णलालमें ठाकुरजी, श्रीनाथजीमें ठाकुरजी. बालकृष्णलालमें ठाकुरजी होवें? बालकृष्णलाल खुद ठाकुरजी हैं. पर ये रहस्य अपन यदि प्रह्लाद होवें तो ही समझमें आ सके है, हिरण्यकशिपुनकु ये समझमें नहीं आ सके है. उनकु अपनी अक्कलकी गदा मारनेकी इच्छा हो ही जावे है.

हिंडोरा :

रथयात्राके बाद हिंडोराके दिन आवे हैं. ये यद्यपि ऋतुक्रम है, उत्सव नहीं है.

ठकुरानी तीज :

यामें ठकुरानीतीज आवे है. ये लीलात्मक उत्सव है.

पवित्रा एकादशी :

मैने आपकु समझायो हतो के ये अपने सम्प्रदायको-ठाकुरजीको प्राकट्योत्सव है. कृष्णको प्राकट्य व्रजमें निःसाधन जीवनकेलिये भयो ऐसे वर्तमान जीवनकेलिये ठाकुरजीको प्राकट्य पवित्रा ग्यारसके दिन श्रीमहाप्रभुजीके सामने भयो है. ये प्रभुको प्राकट्य गुरुके रूपमें है. प्रभु अपने

पुष्टिमार्गके आद्य गुरु हैं. आद्यगुरुतया ठाकुरजीने श्रीमहाप्रभुजीके द्वारा ब्रह्मसम्बन्धमन्त्र दियो. ये बहोत बडो उत्सव है. पुष्टिमार्गको जन्मदिन है. केवल इतनो ही नहीं, अपने प्रभुको भी पुष्टिप्रभुतया प्राकट्यको दिन है.

मर्यादामार्गी भक्त भी पवित्रोत्सव मनावे हैं. पूजाको एक चक्र पूर्ण होवे वाके उपलक्ष्यमें पवित्रोत्सव मनायो जाय है. ब्राह्मणको एक वर्ष राखी पूनमकु पूरो होवे, क्षत्रियको दशहराकु पूरो होवे, बनियाको वर्ष दिवालीपे पूरो होवे और शूद्रको वर्ष जैसे होलीपे पूरो होवे है ऐसे पूजाको एक वर्ष पवित्रा ग्यारसकु पूरो होवे है. अपने यहां ठाकुरजीकी पूजा स्वतन्त्रतया नहीं करी जाय है, सेवाङ्गतया करी जाय है. वो भी पाछी स्थायी भावसु नहीं करी जाय है, सञ्चारी भावसु कभी-कभाक करी जाय है जासु कि प्रभुके प्रति अपनो दैन्य-मर्यादाके भावकु अपन भूल न जायें. करके अपन ठाकुरजीकु पवित्रा धरावे हैं.

जैननमें एक मजेदार उत्सव ''मिच्छामि दुक्कडम्'' को होवे है. या दिन हर जैन एक-दूसरेसु मिलके वर्ष भरमें भई गलतीकी माफी मांगे है. देवपूजामें पवित्रोत्सव अपनो मिच्छामि दुक्कडम् ही है. हमने सेवा-पूजामें जो कछु गलती करी होवे वाकु आप भूल जाओ. वर्षके कुल दिनके ३६० तारको पवित्रा अपन या भावसु ठाकुरजीकु धरावें हैं. हमारी क्षमायाचनाकु आप कंठमें धारण करो और हमकु क्षमा करो. पूजा करते बखत जीवस्वभाववश कुछ-न-कुछ अपराध अपनसु होवें ही हैं. पुष्टिमार्गीय भावसु ठाकुरजीकु कहनो होवे तो ये और कह सके हैं के ''क्षमा बडेनको चाहिये छोटेनको उत्पात''. आप बडे हो. आप क्षमा नहीं करोगे तो ओर कौन करेगो! और हम छोटे हैं. हम उत्पात नहीं करेंगे तो ओर कौन करेगो! तो मिच्छामि दुक्कडम् भी अच्छी बात है और क्षमा बडेनको चाहिये छोटेनको उत्पात ये भी अच्छी बात है. पर अपनो पूजामार्गीय शुद्ध माफी मांगनेको भाव नहीं है, मिश्र भाव है या रहस्यकु खास समझियो.

राखीपूनम :

ये फिरसु अपने यहां बडो महत्वपूर्ण उत्सव है. या अर्थमें के व्रजमें ठाकुरजीकु कोई बहन नहीं हती. एक जो बहन हती वाकु तो कंसने पहले ही ऊपर भेजदी हती. पर फिर भी *''बहन सुभद्रा राखी बांधत''* गावे हैं. अपनने ठाकुरजीकी बहन द्वारकासु पधराई है. लोग बेवकूफीकी बातें करें हैं के पुष्टिमार्गमें बालभाव है. पर सोचो के बालभावमें सुभद्रा है कहां! राखीके पद गाके देखो *''बहन सुभद्रा राखी बांधत बल और श्रीगोपालके''*. तो बालभाव कहां रह्यो. सुभद्रा तो ठाकुरजी मथुरासु भी पधार गये पीछे जन्मी है. श्रीमहाप्रभुजीने त्रिविधलीलानामावली लिखी है वामें लिख्यो है के बाललीलाके नामनके पाठसु प्रभुमें प्रेम होयगो, पौगंडलीलाके नामपाठसु आसक्ति होयगी और द्वारकालीलाके नामपाठसु प्रभुमें व्यसन होयगो. **''यद्य स्याद् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात् तदैव हि''**. यदि द्वारकालीलाके साथ अपनो कोई सम्बन्ध नहीं होतो तो वा लीलाके नामपाठसु व्यसन कैसे सिद्ध हो सके है! अपनने कृष्णकु पूर्णतासु स्वीकार्यो है और कृष्णकी पूर्णताकु स्वीकार्यो है. कृष्णके जितने पहलू है उन सबकु अपनने स्वीकारे हैं. हीरा तब ही खूब चमके है के जब वाके बहोत सारे पासाएं तराशे जायें. बिनतराशे हीरामें वैसी चमक नहीं होवे है. हीरको हीरपन ही वो है के वाके अलावा दूसरे कोई भी रत्नमें उतने पहलू तराशे नहीं जा सके हैं. याको कारण ये है के कितनो भी तराशनेपे हीरा टूटे नहीं है. दूसरे रत्न तराशते-तराशते टूट जाये हैं. याका कारण उनमें ज्यादा पहलू तराशे नहीं जा सके हैं. ज्यादा पहलू तराशे नहीं जा सके हैं करके उनमें वो चमक नहीं आवे है. पुष्टिमार्गको ठाकुर हीरा है. वामें एक नहीं अनेक पहलू तराशे भये हैं. अपनने अपनी भावनासु, श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तसु अनेक पहलू तराशे हैं. उन सारे तराशे गये पहलूसु अपनो पुष्टिप्रभु चमक रह्यो है. या रहस्यकु यदि अपन नहीं समझेंगे तब तक लोग अपनकु बेवकूफ बनाते रहेंगे के पुष्टिमार्गमें बालभाव है और हमारे यहां किशोरभाव है. अरे, हमारो भाव कृष्णके प्रति पूर्णताको है और कृष्णकु हम पूर्णतासु स्वीकारें हैं. सेवामें हमने व्रजलीला स्थायीभावके रूपमें स्वीकारी है जरूर पर सञ्चारी भावतया सुभद्राजी

ठाकुरजीकु राखी धराने आ सके है *''बहन सुभद्रा राखी बांधत बल और श्रीगोपालके''* ये पद या बातको प्रमाण है. या अर्थमें राखीको उत्सव अपनकु ये याद दिलानेकेलिये अच्छो है के बहेन भाईकु राखी बांधे है, मां भी बांधे है, पुरोहित भी यजमानकु राखी बांधे है, और आजकल तो हिंदी फिल्मनने ऐसो घोटाला फैला दियो है के राखी बांधी मतलब भाई हो गयो पर अपने यहां पत्नी भी पतिकु राखी बांधे है. पहली राखी इन्द्राणीने इन्द्रकु बांधी है. राखीको मतलब रक्षा. रक्षाको बंधन राखी है. तेरी प्रभु रक्षा करें वा भावनासु वो बांध्यो जाय है. वो कोई भी कोईकु बांध सके है. अपन भी ठाकुरजीकु बांध सके हैं. यदि सुभद्राकु नहीं भी पधराते तब भी कोई फर्क नहीं पडतो. क्योंके अपने यहां तो यशोदाजी और गर्गाचार्यजी राखी बांधें हैं ऐसे भी पद हैं. और अपन ठाकुरजीकु राखी बांधें ऐसे भी पद बनाके राखी बांध सकें हैं. पर वाके बावजूद अपनने सुभद्राकु राखी बांधने बुलाई है वो या बातको प्रमाण है के अपने यहां केवल भाव नहीं है **''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः''**.

छठीको उत्सव :

ये छोटो उत्सव है पर बडो मीठो उत्सव है. अपन जन्माष्टमीके एक दिन पहले सप्तमीके दिन ठाकुरजीकी छठीको उत्सव मनावें हैं. अपनकु प्रश्न होवे के छठीको उत्सव ठाकुरजीके जन्मके अगले दिन क्यों मनायो जावे है? श्रीमहाप्रभुजी याको समाधान करे हैं के जा दिन ठाकुरजीकी छठी हती वा दिन पूतना व्रजमें आ गयी. यासु वा दिन छठी पूजी नहीं जा सकी. यासु जब ठाकुरजी एक बरसके भये वा दिन छठी पूजी गई. छठीकी भावना ऐसी है के वासु ठाकुरजीकी आयुष्य बढे, सब तरहसु अभिवृद्धि होवे, आयु-अरोग्य-क्षेम सब बढें.

आज अपन छठी जन्मके एक दिन पहले पूजे हैं पर लीलामें छठी एक वर्ष बाद आनेवाली घटना है. यहांसु आगे पाछो जन्माष्टमीसु अपनो *''ब्रज भयो महरके पूत जब यह बात सुनी, सुनि आनन्दे सब लोग गोकुल*

गनित गुनी'' सेवाको प्रथम उत्सव फिरसु शुरु हो जावे है.

पुष्टिमार्गको प्रारम्भ पवित्रा ग्यारससु है पर अपने ठाकुरके जन्मसु ही अपन अपने सेवाको क्रम शुरु करें हैं. करके सभी सेवाकी लिखि भई विधिमें जन्माष्टमीसु ही सेवाको क्रम शुरु होवे है ये उल्लेखनीय है. वैसे पवित्रा ग्यारससु भी सेवाविधि लिखी जा सकती हती पर जा दिन अपनो ठाकुर जन्म्यो वो अपनो पहलो उत्सव है. वाके बाद तो ''**सबविध मंगल होत गोपालसों**'' गोपालसु सबविध मंगल है, नित्य उत्सव है.

या तरहसु अपनने उत्सवको क्रम विचार्यो.

मनोरथक्रम

परिभाषा :

'मनोरथ'को पारिभाषिक अर्थ अपन ऐसो कर सके हैं के सेवाकरनेवालेकी विशेष इच्छासु भगवत्सेवा सम्बन्धी मनायो जातो कोई विशेष उत्सव के जो कोई तिथिविशेषपे मनायो नहीं जातो होवे.

मनोरथ कौन कर सके?

वैसे 'मनोरथ'को सामान्य अर्थ होवे है मनको रथ या मन रूपी रथ. वापे सवार होके जीवात्मा जैसे दोड्यो ऐसे दौडे है. पर जब अपन प्रभुसम्बन्धी मनोरथकी बात कहे हैं तब वो सामान्य इच्छा या आकांक्षा स्वरूप नहीं होके भगवत्सेवा सम्बन्धि, प्रभु सम्बन्धि कोई इच्छा या आकांक्षा वो मनोरथ है. मनोरथको जब ये स्वरूप है तब ये बात भी बिलकुल स्पष्ट है के वो इच्छा या आकांक्षा भगवत्सेवककी होनी चहिये. जो भगवत्सेवक नहीं है वाकु मनोरथको कोई प्रसङ्ग ही नहीं है.

मनोरथके विकृत प्रकार :

या सम्बन्धमें एक बात सावधानीसु समझनी चहिये के वर्तमान समयमें अपने यहां मनोरथको जो अर्थ समझ्यो जाय है वो तो पुष्टिसिद्धान्तसु सर्वथा प्रतिकूल अर्थ है. चलतो-फिरतो कोई भी के जाकी पाकिट पैसासु फूली भई है वो मन्दिरमें जाके वहां जो मनोरथके जो रेट् बंधे भये होवें वाके अनुसार भेट मंदिरमें जमा करा देवे. मंदिर वा भेटके बदलेमें वा ग्राहककु नियमके अनुसार मिठाई देवे जैसे होटलमें ग्राहककु मेनू दियो जाय के एक थालीके इतने रुपये, लड्डूके इतने, अचार-चटनीके इतने... तो वर्तमानमें तो अपने यहां होटलनके जैसो सिस्टम हो गयो है मनोरथके नामपे. होटलमें कोईपे रोक-टोक नहीं होवे है, दुकान खुली है जो चाहे सो आ जावे, मेनू देखे, जो खानो होवे वाको ओर्डर देवे और रेडीमेड थाली आ जावे. ये मनोरथ तो महा भ्रष्ट है. ये न तो पुष्टिमार्गकी कथा है और न मर्यादामार्गकी

कथा है. ये तो कुष्ठीमार्गकी कथा है. अपने मार्गकु कोढको रोग हो गयो है वाकी कथा है. अभी अपन या कोढकी बातकु एक ओर रखें.

सिद्धान्त ये है के सेवाकर्ताकु नित्य-उत्सव-ऋतुक्रमानुसार सेवा करते-करते इन सेवाके अलावा यदि वाके मनमें प्रभुसेवा सम्बन्धि कोई विशेष इच्छा हो रही है, या इनमेंसु कोई तिथिविशेषमें प्राप्त नहीं है फिर भी कोई विशेष सेवाकी इच्छा हो रही है तो वो प्रकार मनोरथको पारिभाषिक प्रकार है.

सिद्धान्ततः मनोरथ करनेकेलिये योग्य वो ही है के जाके घरमें ठाकुरजी बिराज रहे हैं. सेवा करनेवालो ही मनोरथको अधिकारी है. बाकी ऐरे-गैरे कोई भी आके कहे के मेरे मंगलाको मनोरथ है, मेरो राजभोगको मनोरथ है... पर भाई, तुम्हारे ठाकुरजी कहां हैं? ठाकुरजी ही नहीं है तो मनोरथ कैसो! कोईकु बच्चाको मनोरथ होवे. अपन पूछें के पत्नी कहां है? पति कहां है? यापे कहे के वो तो बाजारु कोई भी ले आयेंगे. ये कोई मनोरथ है! ये तो दुष्टता है. बच्चाको मनोरथ है तो पति-पत्नी तो होने चहियेके नहीं! ऐसे जाकु मनोरथ होवें वाके घरमें ठाकुरजी होने चहिये. और पाछे वो ठाकुरजीकी सेवा होती होवे तो मनोरथ है. सेवा ही नहीं है और निकल पडे हैं मनोरथ कराने! ये तो भ्रष्टाचार है भक्तिमार्गके हिसाबसु. तात्पर्य ये है के मनोरथको मतलब है भक्तको मनोरथ.

मनोरथ भक्तिभावप्रसूत हों :

प्रभु भक्तमनोरथपूरक हैं. भक्तके मनोरथ भी कई तरहके हो सके हैं. लौकिक मनोरथ भी कभी भक्तकु हो सके हैं. पर श्रीमहाप्रभुजीने समझायो है के भक्तिभावसु प्रसूत मनोरथ-इच्छा या भक्तिभावकु प्राप्त करने या बढाने की इच्छास्वरूप मनोरथके पूरक प्रभु हैं. क्योंके पुष्टिप्रभु हैं. आप कभी भी भक्तके मनोरथ अपूर्ण नहीं रखेंगे. पर भक्तके लौकिक मनोरथनकु पूर्ण करनेकेलिये पुष्टिप्रभु बंधे भये नहीं हैं.

एक दिन मैं किशनगढसु दिल्ली जा रह्यो हतो. ट्रेनमें एक सहयात्रीने मोसु पूछी के आप कौनसे सम्प्रदायके धर्मगुरु हो? मैने कही के आपने शायद वल्लभाचार्यजीको नाम सुन्यो होयगो. तो वाने कही के वो तो हमारे सेठजीके यहां हर साल आवे हैं. मैने कही के वल्लभाचार्यकु लीला पधारे पांचसो साल बीत गये हैं. वो तुम्हारे शेठजीके घर कैसे आवे हैं! तो वो बोल्यो के नहीं, वो ही आवे हैं. मैने कही के एकसे नामके दो व्यक्ति हो सके हैं. हम जा वल्लभाचार्यके सम्प्रदायके हैं वो पांचसो साल पहले भये हैं. फिर वो बोल्यो के हां, आपको तिलक अलग है और उनको तिलक अलग है. मैने कही के अब ठीक है. फिर वाने पूछी के आपको हेडक्वार्टर कहां है. मोकु कहनेकी इच्छा तो भई के हेड्क्वार्टर हेडमें होवे ओर कहां होवे! पर बात टालनेकेलिये मैने कह दियो के नाथद्वारा हमारो हेडक्वार्टर् है. तो वो बोल्योके वहां तो हम हर वर्ष जावें हैं. ये सुनके मोकु बडो आश्चर्य भयो के हर वर्ष जो नाथद्वारा जावे है वाकु श्रीवल्लभाचार्य कौन है ये भी पता नहीं है! ये अपनी कैसी दुर्दशा है, रोने लायक स्थिति है. चर्चमें जानेवालेकु ईसाको पता नहीं होवे, मस्जिदमें जानेवालेकु मोहम्मदको पता नहीं होवे क्या ये सम्भव है? मैं त्रस्त हो गयो वासु. ऐसे आदमीसु क्या बात करनी. पर हम दोनोंकु नींद आ नहीं रही हती. थोडी देर बाद वाने कही के वो ब्यावरकी एक मीलको मेनेजर है और जब कोई सौदा होनेवालो होवे तो वो मनोरथ करावे खास नाथद्वारा जावे है. और यदि उनको मनोरथ उनकी हाजरीमें हो जावे तो वो समझे के उनको सौदा हो जायेगो. और यदि कोई कारणसु उनकी हाजरीमें मनोरथ नहीं हो पावे तो वो समझे के सौदा नहीं होयगो. याकु समझो के ये मनोरथ मीलके मेनेजरको तो मनोरथ है पर भक्तमनोरथ नहीं है.

उनने मोकु एक घटना सुनाई के एक बखत कोई बडो ऑर्डर मिलनेवालो हतो तब वो नाथद्वारा गये. वो वहां पहोंचे और दर्शन बंद हो गये. वो तो नर्वस् हो गये के श्रीनाथजीने टेरा लेलियो अब सौदा कैसे होयगो! वो गये सीधे मुखीयाजीके पास. उनकु कुछ रुपये दिये और कही के

कोई भी तरहसु दर्शन करादो. संयोगसु तब तक ताला मंगल नहीं भये हते. मुखीयाजीने उनकु अंदर बुलाके दर्शन करवा दिये. ये घटना सुनाके उनने मोसु पूछी के उनने सही कियो के गलत. मैने कही के सच्चो, अच्छो के खोटो बतानेवालो मैं कौन! आप राजी, मुखीयाजी राजी और शायद श्रीनाथजी राजी हो तो बीचमें बोलनेवालो मैं कौन! वाकु क्या कहनो! पुष्टिमार्गी होवे तो वाकु कुछ अपन कह सकें. मीलके मेनेजरकु राय देनेवालो मैं कौन! थोडी देर बाद वाने कही के मेरे पिताजी आपके जैसो ही तिलक लगाते हते. तब मैं समझ गयो के ये पुष्टिमार्गी नहीं है, पुष्टिमार्गीको बेटा है. फिर तो मैं थकके सो गयो.

एक पुष्टिमार्गीने अपने बेटाकु पढा-लिखाके मीलको मेनेजर बना दियो. बापने अपनो कर्तव्य अवश्य निभायो पर एक पुष्टिमार्गीने अपने बेटाकु अच्छो पुष्टिमार्गी बनानेको कर्तव्य नहीं निभायो ये सोचके मोकु बहोत दुःख भयो. यदि बापने पुष्टिमार्गीको कर्तव्य निभायो होतो तो मेरे साथ ऐसी दुर्घटना नहीं घटी होती के एक पुष्टिमार्गीको बेटा पुष्टिमार्गीकु देखके, वल्लभाचार्यको नाम लेनेपे भी और वामें भी पाछो बार-बार श्रीनाथजी दर्शन करने जानेवालो श्रीमहाप्रभुजीकु नहीं पहचानतो होवे यासु बढके दुःखकी बात दूसरी क्या हो सके है. ये अपने पुष्टिमार्गकी दुर्दशा है. इतनी दुर्दशामें जो मनोरथ चल रहे हैं वाके सब रथ टूटे भये हैं, पैयाएं भी टूटे भये हैं और घोडाएं बिलकुल दिशाशून्य होके दौड रहे हैं ऐसो लगे है. ये मनोरथ भगवान् तक पहोंचा सके ऐसे नहीं हैं, सौदा तक शायद पहोंचा देतें होयेंगे. ''जाकी रही भावना जैसी प्रभुमूरत तिन देखी तैसी''. पर ये मनोरथ पुष्टिमार्गीय नहीं हैं.

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के भक्तिभावप्रसूत अथवा भक्तिभावकु प्राप्त करनेकेलिये प्रकट होती इच्छानकु प्रभु अवश्य पूर्ण करें हैं. अपनकु अपने मनकी धांधलीके कारण इच्छाएं पूर्ण नहीं हो रही हैं ऐसो लग सके है पर प्रभु उनकु कोई न कोई तरहसु वाकु पूर्ण करें ही हैं. अपनेमें वाको

अनुभव करनेकी समझ होवे तो पता चल सके है के प्रभुने कैसे सारो जुगाड बैठा दियो है.

अपनने मनोरथको मौलिक और विकृत ऐसे दोनों स्वरूप देखे. याके अन्तर्गत भक्तिभावकी मुख्यता है यापेसु भावकी निरुपाधिकता आवश्यक है ये तो अपन समझ ही सके हैं. मीलके मेनेजरके बारेमें सोचें तो ऐसी बात नहीं है के वाकु ठाकुरजीपे श्रद्धा नहीं है या भाव नहीं है. श्रद्धा-भाव है पर मीलको सौदा पटानेके हेतुसु है. या तरहको भाव श्रीमहाप्रभुजीकी दृष्टिमें भक्तिप्रसूत भाव नहीं है, लौकिक कामना-उपाधिसु प्रसूत भाव है. ये मौलिक अन्तर है. ये बात अपन समझे तो ये जिज्ञासा होवे है के भक्तिप्रसूत भाव कैसे होवे हैं.

स्वरूपानन्द और भजनानन्द :

भक्तिप्रसूत भाव दो तरहके हो सके हैं : स्वरूपानन्द सम्बन्धि अथवा भजनानन्द सम्बन्धी. भगवान्के स्वरूपमें आनन्दको दान करनेकी सामर्थ्य है. वाकु पानेकी अपने मनकी ललक-आकांक्षा वो मनोरथको एक प्रकार है. दूसरो प्रकार भजनानन्दकुं पानेकी आकांक्षाको है. माने भगवत्स्वरूप जहां गौण होतो होवे और भजनको भाव प्रमुख होवे. ''मैं या तरहसु भजन करुं'' ऐसी भावना. भजन भगवत्स्वरूपके बिना तो हो नहीं सकेगो ये तो स्पष्ट ही है. पर मुख्यता स्वरूपानन्द सम्बन्धि नहीं होके भजन कैसे करनो वाके प्रकार सम्बन्धी होवे है के मोकु या प्रकारसु भजन करनो है. 'भजन' को आज मतलब ऐसो होवे है के ढोल-मंजिरा लेके धुन-कीर्तन करनो. पर यहां वा अर्थमें अपन चर्चा नहीं कर रहे हैं. 'भजन'को मतलब सेवा होवे है.

मनोरथके इन दो विभागकु समझ लेनेके बाद अब ये समझो के एक तो भगवत्स्वरूपको संयोग होवे है और दूसरो भगवत्स्वरूपको विप्रयोग होवे है. संयोग=मिलन और विप्रयोग=बिछुडनो. सामान्यतया ऐसो होवे है

के अपने प्रियसु बिछुडे हैं तब बिछुडनेकी अनुभूतिकु प्रियकी अनुभूति नहीं मान्यो जाय है. क्योंके प्रियकी अनुभूति नहीं होनो बिछुडनो है. पर श्रीमहाप्रभुजीने ये समझायो है के अपनो प्रिय प्रभु नटवर है. नट भी है और वर भी है. नटवर होनेके कारण वासु मिलनेमें भी आनन्द है और वासु बिछुडनेमें भी कोई तरहको आनन्द है. और बिछुडनो भी वाकी अनुभूतिको अंग है. यासु अपने यहां भगवान्के विप्रयोगको अनुभव होनो वो भगवान्की अननुभूति नहीं है, भगवान्की अनुभूतिको ही एक प्रकार है. जैसे पुत्र-पति-पत्नीको आंखके सामने होनो मिलन है, आंखके सामने नहीं होनो वियोग है. पर भगवान्को मिलन और भगवान्सु वियोग ये दोनों वाकी ही अनुभूतिके अलग-अलग प्रकार हैं. अपनकु सवाल होवे के भगवान्सु बिछुडनो वाकु भगवान्की अनुभूति कैसे कही जा सके. पर छाया और प्रकाश कु सोचो. अंधेरा अलग वस्तु है. वाकु छाया मत समझियो. यहां प्रकाश है तो छायाको अनुभव होवे है. बिलकुल अंधेरा होवे तो छायाको भी अनुभव नहीं हो सके है. यहां अपन छायाकु देख रहे हैं वासु अपन प्रकाशकी विभाजक रेखा देख सक रहे हैं. तो जैसे प्रकाश और छाया एक-दूसरेके पूरक हैं ऐसे भगवान्के मिलने और बिछुडने की अनुभूति एक-दूसरेकी पूरक हैं. दुनियामें न जाने कितने व्यक्ति और कितनी चीजें ऐसी हैं के जो अपनकु मिली नहीं है. जैसे दक्षिण ध्रुवमें 'पेंग्विन्' नामको बडो पक्षि होवे है. वो अपनकु मिल्यो नहीं है. क्या अपनकु वासु बिछुडनेको अनुभव होवे है? नहीं. अपन कोईकु ऐसो अनुभव नहीं हो रह्यो है के अपन पेंग्विन्सु बिछुड गये हैं. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के बिछुडनेको अनुभव तुमकु तभी होयगो के जब तुमकु प्रेमको अनुभव है. प्रेमको अनुभव है तो एक दीवारकी ओट होनेपे भी बिछुडनेको अनुभव हो सकेगो. भक्तकविने तो वहां तक कही है के *''तब हार कहारसे लागते हैं अब आनिके बीच पहाड परे''*. एक-दूसरेसु गले मिलनेपे गलेको हार भी दूरीको ऐसो अनुभव करा रह्यो के मानो दोनोंके बीचमें कोई पहाड आ गयो होवे. यासु श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के विप्रयोगके अनुभवमें प्रियतमके करते प्रेमको अनुभव प्रधान हो जावे है. और संयोगमें प्रियतमको अनुभव होवे है वा बखत प्रेमकी

प्रधानता नहीं रहे है, प्रियतमकी प्रधानता होवे है. बिछुडनेमें प्रेम प्रधान हो जाय है, प्रियतम अप्रधान हो जावे है. जितनो-जितनो बिछुडनेको अनुभव अधिक होवे उतनो-उतनो प्रेम बढतो जाय है. ऐसे ही जितनो-जितनो प्रेम बढतो जाय है उतनो-उतनो बिछुडनेको अनुभव अधिक होतो जाय है. प्रेम कम होते ही बिछुडनेको अनुभव खतम हो जाय है.

प्रभु नटवर क्यों हैं ये श्रीमहाप्रभुजी समझावे हैं के जब प्रभु अपने सामने हैं तब आप वर हैं. वर-वधूवालो वर, वरराजा. और जब प्रभु अपने सामने नहीं हैं वा बखत भी यदि उनको प्रेम अपने हृदयमें जोर पकड रह्यो है तो ये प्रेम कौनको नाटन है? कौन ये नाटक कर रह्यो है? प्रियतमको अनुभव नहीं होवे और केवल प्रेमको अनुभव होवे ये नाटक करनेवालो तो वोही है.

''पानी बिच मीन पियासी मोहि सुनि सुनि आवे हांसी''. पानीके बीचमें मछली प्यासी कैसे हो सके है? ऐसे प्रभु जो सर्वव्यापी हैं उनसु जीव बिछुड कैसे सके है? जो सर्वान्तरात्मा हैं वासु जीव बिछुडेगो कैसे? पर यदि वो ऐसो नाटक करे है... वो ऐसो नाटक अपने साथ कब करेगो? या तो वो अपने भीतर प्रेम बढानो चाहे है यालिये नाटक करे है या अपने भीतर वाकेलिये प्रेम बढ्यो है तो वो ऐसो नाटक कर सके है. बाकी प्रभुसु बिछुडनो तो प्रभुकी हकीकत हो ही नहीं सके है. पानी बिच मीन प्यासी रह कैसे सके है? पर फिर भी यदि पानी मच्छीकु ऐसी प्रतीति करावे के वो प्यासी है तो वो पानीको नाटन ही समझनो पडेगो. यासु श्रीमहाप्रभुजी प्रभुकु 'नट' कह रहे हैं. प्रर प्रभु केवल नट ही नहीं हैं. प्रभु अपने भीतर केवल बिछुडनको भाव ही जगावे है ऐसो नहीं है, प्रभु अपनसु मिले भी है. यासु वो नटवर हैं. एक सूफीने बहोत अच्छी बात कही है : *''खुदरा न नुमाई व नुमाई हमाझा''*. वो कहे है के तू खुद्कु प्रकट करे भी है और प्रकट करनेके बावजूद तू खुद्कु छुपा भी ले है. हरेकमें तु हमकु प्रकट अनुभव दे भी रह्यो है और हरेकमें तू अपनेकु छुपा भी रह्यो है. अपनेकु लगे के ऐसे कैसे हो

सके है. पर समझो के अपनने दही जमायो. वाकी छाछ बनाई. वामेंसु मख्खन निकाल्यो. वाको घी बना दियो. दूसरी भी बीस-पच्चीस चीज बनाली, रसगुल्ला-गुलाबजामुन-पेडा-बासोंदी. अब इन सबमें दूध अपनकु अलग-अलग रूपमें अनुभवमें आ रह्यो है के नहीं. अलग-अलग रूपमें अनुभवमें आनेके कारण वो खुदकु प्रकट भी करे है और खुदके मूल रूपकु दूध छुपावे भी है. रसगुल्ला-पेडा ये सब कौनकी नुमाईश है? दूधकी ही तो है! दूधकी ही नुमाईश होनेके बावजूद भी दूध अनुभवमें आनो बंद हो गयो. जब औरतें परदा करती हतीं तब भी ऐसो होतो हतो. परदामें रहके वो अपनेकु छुपाती और कोई तरहसु खुदकी नुमाईश भी करती. जैसे घटामें चांद छुपतो रहे, झलकतो रहे. या तरहसु परमात्माको स्वरूप है ''*खुद्रा न नुमाई व नुमाई हमाझा*''. वो नट भी है, वो वर भी है. वर माने सामने आने वालो और नट माने नाटक करनेवालो. अपने यहां प्रकट है फिर भी अप्रकट होनेको नाटक करनेवालो या अर्थमें वो नट है. और दोनोंकु मिलाके भगवान्‌को नाम 'नटवरवपु' है.

स्वरूपानन्द संयोग और विप्रयोग ऐसे दोनों तरहसु हो सके है. संयोग-विप्रयोगके भी पाछे बाह्य और आभ्यन्तर ऐसे दो-दो भेद हो सके हैं. मतलब ये के बाहरसु अपन बिछुडे भये हैं पर भीतरसु अपनकु ऐसे लगतो होवे के नहीं, हम बिछुडे भये नहीं हैं. जैसे मैने आपकु बात बताई के द्वारकाकी रानियें जब व्रज आयीं तब उनने व्रजभक्तनसु पूछ्यो के हम तो जबसु कृष्णसु बिछुडी हैं तबसु बहोत परेशान हैं पर तुम इतनी प्रसन्न कैसे हो? तब व्रजभक्तनने कह्यो के हम तो कृष्णसु बिछुडे ही नहीं हैं. याको मतलब क्या? क्या व्रजमें कृष्ण हते? कृष्ण बाहर नहीं हते पर भीतरसु तो उनकु कृष्णकी अनुभूति निरन्तर होती ही रहती हती. तो बाहरसु वियोग है और भीतरसु संयोग है. ये भी एक स्थिति है.

कभी ऐसो भी हो सके है के भीतरसु वियोग होवे और बाहरसु संयोग होवे. ''*न गैर लगता है न अपनोंकी तरह मिलता है, तू जमानेकी तरह मुझको*

सताता क्यूं है!''. तोकु देखुं हूं तो ऐसो नहीं लगे है के कौई गैरसु मिल रह्यो हूं. पर जब मिले हैं तब ऐसे भी नहीं मिले है के जैसे कोई अपनो मिलतो होवे. ये कैसो अनुभव है? भीतरसु वियोग है और बाहर संयोग है. अपनेकी तरह नहीं मिल रह्यो है यासु कोई तरहको वियोग है और जब मिले है तब पाछो गैर नहीं लग रह्यो है.

जब ये समझमें आ गयो तो ये भी समझमें आ जायेगो के एक स्थिति ऐसी भी हो सके है के भीतर-बाहर दोनों जगह संयोगको अनुभव होवे. मन भी वामें रम्यो भयो है और आंखें भी वामें रमी भयी हैं.

याके बाद चौथी स्थिति ऐसी भी हो सके है के न भीतर है न बाहर है. दोनों जगह विप्रयोगको अनुभव होतो होवे.

ऐसे कुल मिलाके स्वरूपानन्दके चार प्रकार होवे हैं. प्रमेय - साधन-फल प्रकरणके तीन प्रकरणनमें श्रीमहाप्रभुजीने इन भगवदनुभूतिके तीन प्रकार बताये हैं. केवल अन्तिम प्रकार भ्रमरगीतमें बतायो है के जब ठाकुरजी मथुरा पधार गये हैं.

भजन पुष्टिमार्गके हिसाबसु तीन तरहसु हो सके है. एक प्रकार लीलास्मरणको है. दूसरो प्रकार सेवाको है. और तीसरो प्रकार ...को जामें अपन प्रभुके गुण गाते रहें. याके अनुसार मनोरथ भी अपने तीन प्रकारके हो सके हैं.

अपन नित्य-ऋतु-उत्सव क्रमकी सेवा कर रहे हैं. पर भगवान्‌की कोई लीलाके सम्बन्धमें मनोरथ होवे के हम प्रभुकी या लीलाको सेवामें अनुभव करें. लीलाके मनोरथ कई तरहके हो सके हैं. प्रायः नित्यसेवाके क्रमके तो मनोरथ होवें नहीं हैं क्योंके वो तो स्वभावसु हो ही रही है. पर ऋतुक्रमकी सेवाको मनोरथ अपनकु हो सके है.

पदमें आवे है *''भीजत कब देखोंगी नैनन''*. बरसात पडती होवे, ठाकुरजी भीजते होवें, ठाकुरजीकी केशावलीमेंसु टप-टप-टप बूंदें टपकती होवें. ठाकुरजीके वस्त्र गीले हो गये होवें ऐसे दर्शन मोकु कब होंयगे! ये ऋतु सम्बन्धि लीलाको मनोरथ भयो. यशोदाजीको मनोरथ पदमें प्रकट होवे है *''कब मेरो मोहन चलेगो घुटुरुवन तब हों करोंगी बधाई''* जब वो मोकु 'मैया' कहके बोलेगो तब *''सर्वस्व वार देहों मोहनपे 'मैया' कहीके बुलावे''*. ये मनोरथ है. भक्तिभावसु प्रसूत लीलात्मक मनोरथ है. ऐसे मनोरथ यशोदाजीकु ही होवें ऐसी बात नहीं है. अपनकु भी ऐसे मनोरथ हो सके हैं. इन मनोरथनकु पूर्ण करनेकेलिये अपन सेवामें कोई अतिरिक्त क्रम करें तो प्रभु उनकु पूर्ण करेंगे. क्योंके ये मनोरथ भक्तिभावसु प्रसूत हैं और प्रभु भक्तमनोरथपूरक हैं. पर यदि प्रभु ऐसे मनोरथ पूर्ण नहीं करते होवें तो थोडी बहोत हेरा-फेरी करके, छूट लेके अपन अपने ढंगसु इन मनोरथनकु पूर्ण कर सके हैं. जैसे बरसात नहीं पड रही है. पर अपन फुहारा छोडके ठाकुरजीके आगे बरसात पड रही है ऐसो अनुभव कर सके हैं. ये लीलात्मक मनोरथके प्रकार हैं.

आप सब लोग यहां (किशनगढ) सौभाग्यशाली हो के यहां मनोरथनकी विकृति गुजरात-बंबईकी तरह जोर नहीं पकडी है. गुजरातके शहरन्में तो विकृत मनोरथनको कोई पार नहीं रह गयो है. गुजरातके एक गांवमें ठाकुरजीकु अक्रूरजी कंसके वहां पधराने आये वाको मनोरथ भयो! वाकी सजावट ऐसी भई के रथमें ठाकुरजी बिराजे हैं और अक्रूरजी उनकु मथुरा पधरा जारहे हैं! गोकुल-मथुराके रस्ताएं बने हैं. गोपीएं रथके आगे पडी भई बिलख-बिलखके रो रही हैं. बेवकूफ दर्शनार्थीएं दर्शन करके कह रहे हते के आज तो गजब दर्शन भये, गजबकी झांकी भई. अरे भाई, ये झांकी गजबकी है या माथा कूटनेकी है! मैने पत्र लिख्यो के ऐसो दुष्ट मनोरथ तो कंसकु भयो हतो. ऐसो क्रूर मनोरथ पुष्टिमार्गीकु भयो कैसे? अक्रूरजी ठाकुरजीकु मथुरा पधरा जायें ऐसो मनोरथ पुष्टिमार्गीकु तो नहीं हो सकेन! तो देखो, आजकल अपनकु राक्षसनके जैसे मनोरथ होवे लगे हैं.

थोडो भी जाके भीतर भक्तिभाव होयगो वाकु ये बात समझमें आनी ही चहिये के ऐसो मनोरथ अपने यहां नहीं हो सके है. क्योंके न तो यामें स्वरूपानन्द है और न यामें भजनानन्द है. यामें तो सजावटके द्वारा भीड इकठ्ठी करके पैसा कमाने मात्रको मनोरथ है. धिक्कार है उनकु के जो ऐसे मनोरथ कर रहे हैं.

गुजरातके ही एक गांवमें अधिकमासमें ठाकुरजीकु मारने पूतना आई वाको मनोरथ भयो. सजावटमें बडीसी पूतना बनाई. वापे ठाकुरजीकु बैठाये. वाके भीतर एक टेप प्लेयर रख्यो. वामेंसु थोडी-थोडी देरमें अवाज निकलती ''अरे, मर गई रे, मर गई...'' भगवानने तो पूतनाकु मारी हती. पर तुमकु ऐसो कुमनोरथ कैसे भयो के ठाकुरजीकु मारने पूतना आवे!

आज पुष्टिमार्गी भक्तिभावसु रहित हो गये हैं वाके सर्टिफिकेट्के जैसे ये कुमनोरथ हैं. इनको आनन्द लेनो ये अपनी राक्षसी मनोवृत्तिको परिचय देनो है.

एक जगह ठाकुरजीके ब्याहको मनोरथ भयो. वामें हजारनकी भीड आई. मनोरथी एक शादि-ब्याहको डेकोरेटर् हतो. वाने मनोरथकी सजावटमें अपने धंधाके प्रचारको पाटीया लगा दियो. वाकी पब्लिसिटि बहोत भई. लोगनकु भयो के इतनी अच्छी सजावट करे है तो अपने प्रसङ्गनमें याकु ही कोंट्राक्ट देंगे! सोचो के ये ठाकुरजीको मनोरथ हतो या धंधाकी पब्लिसिटि हती!

बंबईमें तो अखबारनमें आतो होवे है के नाथद्वारा छप्पनभोग कराने जा रहे हैं. जिनकु हमारे साथ चलनो होवे वो चल सके है. दो बस जायेगी, तीन बस जायेगी. फिर सब लोग अपने-अपने नाम लिखावें. पता ही नहीं चले है के यामें मनोरथ क्या भयो! ये मनोरथ नहीं हैं. मनोरथ भक्तिभावसु प्रसूत होने चहिये, भाव निरुपाधिक होनो चहिये, स्वरूपानन्द या भजनानन्द

की कामनासु मनोरथ होने चहिये.

स्वरूपानन्दको अनुभव अपन दो तरहसु कर सके हैं. या तो स्वरूपकी ऐसी छटाके दर्शन के जाके कारण अपनकु स्वरूपानन्दकी अनुभूति होवे या सेवाको कोई ऐसो प्रकार जो सजावटवालो होवे, जामें अपनकु प्रभुकी कोई लीलाकी झांकीसी मिले. ठाकुरजीकु अपन शृंगार धराके आरसी दिखावें पीछे वा आरसीकु अपन हृदयपे लगावे हैं. ये मनोरथको ही एक प्रकार है. यामें अपन ठाकुरजीकु ये जतावे हैं के जैसे आप आरसीमें स्फुटतया दर्शन दे रहे हो ऐसे मेरे हृदयमें आप मोकु दर्शन दो. मेरो हृदय आरसीके जैसो स्वच्छ हो जावे, निर्मल हो जावे के मेरे हृदयमें भी ... जैसे वो कहे है के *''दिलके आईनेमें है तसवीरे यार, जब जरा गर्दन झुकाई देखली''*. ये मनोरथ है, भक्तिभावप्रसूत स्वरूपानन्द सम्बन्धी मनोरथ है. आंखसु तो मोकु दिखलाई दे रह्यो है पर आरसीमें जैसे आप कैद हो रहे हो ऐसे मेरे हृदयमें कब कैद होगे ये मेरो मनोरथ है. अपन प्रभुसु कुछ मांगें नहीं हैं. क्योंके मांगनो तो अच्छी बात नहीं है. आरसीकु हृदयसु लगाके अपन प्रभुकु जतावे हैं. ऐसे मनोरथमें तो भक्तिभावको सौन्दर्य है के जामें अपन स्वरूपानन्द लेनो चाहे हैं या स्वरूपकु शृंगार धराके, भोग धरके, हिंडोरा-पलना-फूलमंडलीकी सजावट करके यशोदाजी जैसे ठाकुरजीकु झुलाती हतीं वा तरहसु ठाकुरजीकु झुलाके, गोपीजन ठाकुरजीकु जैसे छाक अरोगाने जाती हती वैसी प्रभुकी लीलाको आनन्द लेनेकेलिये, अपने घरमें भले वृन्दावन नहीं होवे पर दो-चार पैड लगाके, गिरिराजजी नहीं होवें तो दो-चार भाटा धरके प्रभुकु उन-उन लीलानको आनन्द अनुभव करनो चाहें तो ये सारे मनोरथ स्वरूपानन्द या लीलानन्दके मनोरथ हैं. ऐसे मनोरथ अपने घरमें किये जा सके हैं.

यासु ही मैने आपकु बतायो के भगवान् तो अपनकु विप्रयोगको दान करे वामें भी प्रभुको नटरूप है ये श्रीमहाप्रभुजी स्वीकार्यो. पर अपन वाको मनोरथ नहीं करे हैं. भगवानकु अपन यों कह सकें के बहोत दिन साथ

रहे लिये अब आप हमसु बिछुडो! कोई अपने प्रियकु ऐसो कहेगो के थोडे दिन तुम परदेश चले जाओ, हम तुम्हारो विप्रयोग करनो चाह रहे हैं! यदि ऐसो कह रहे हैं तो मतलब साफ है के भक्ति-स्नेह खत्म हो गयो है. जब अपन विप्रयोग मांग रहे हैं तो भक्ति खत्म हो गई है. पर मांग नहीं रहे हैं और अपनकु बिछुडनको अनुभव हो रह्यो है तो लोकमें वो अनुभव वा व्यक्तिको अनुभव नहीं है, वा व्यक्तिके अनुभवको अभाव है. परन्तु ठाकुरजी प्रेमात्मक भी हैं और प्रियतमात्मक भी हैं. रसखान कहे है *''ज्यों हरि प्रेमस्वरूप हैं त्यों प्रेम हरिस्वरूप, एक होय दोउ यों लखें ज्यों सूरज और धूप''*. यासु प्रभुके विप्रयोगको अनुभव भी प्रभुको ही एक तरहको अनुभव है. सूरज और धूप एक होते भये भी दो दिखलाई दे रही हैं ऐसे प्रेम हृदयमें है और हरि सामने हैं. हरि सामने हैं और वाको प्रेम हृदयमें अनुभव हो रह्यो है तो वो वाकी धूप है. और हरि दिखलाई नहीं दे रह्यो है पर वाकी धूप अनुभवमें आ रही है तो वो वाको बिछुडनो है. ये बात समझमें आ सके है पर याको मनोरथ कोई कर नहीं सके है. विप्रयोगमें भी स्वरूपानन्द मिल सके है पर वाको मनोरथ नहीं हो सके है. मनोरथ तो संयोगको ही होयगो. या रहस्यकु समझो.

कैसे-कैसे मनोरथ प्रभुके करने वाकी जनरल् गाईड् लाईन् मैने आपकु बताई. कई मनोरथ कैसे करने वो अपनकु पता है. पर एक बात समझो के आज जा तरहसु छप्पनभोगके मनोरथ हो रहे हैं, अन्नकूटके मनोरथ हो रहे हैं वो ठाकुरजीकु अरोगानेकेलिये नहीं होवे हैं, दर्शन खोलनेकेलिये होवे हैं. क्योंके भोग धरनेकी घडी ९० मिनिट होवे है. और दर्शन वाके खुले हैं ६-८ घंटा! यासु ही बात साफ हो जा रही है के ये मनोरथ भोग अरोगानेकेलिये नहीं होवे है, दर्शन खोलनेकेलिये होवे है. ये मनोरथें भक्तिभावसु प्रसूत मनोरथ नहीं हैं. ये मनोरथें भक्तिभाव प्राप्त करनेकेलिये भी नहीं हैं. क्योंके मनोरथ जब कोई प्रेमी-भक्तकु अपने प्रियतम-भगवान् केलिये होयगो तब वो दूसरेको वामें व्यवधान सहन नहीं करेगो. समझो के मोकु अपनी पत्नीके साथ कहीं घूमने जानेकी इच्छा है

वामें कोई पडौसन कहे के मैं भी साथमें चलूंगी तो मोकु मजा नहीं आयेगी. मोकु मेरे बच्चानके साथ खेलनेकी इच्छा है वा बखत कोई आ जायेगो तो मोकु मजा नहीं आयेगी. ऐसे मैं मेरे ठाकुरजीको मनोरथ कर रह्यो हूं वा बखत कोई ताका-झांकी करे तो मेरे मनमें डिस्टर्बन्स् होनो चहिये. पर जब अपन खुद चाहें के लोग मनोरथमें ताका-झांकी करें तो मतलब साफ है के अपन लोगनकु दिखानेकेलिये मनोरथ कर हे हैं. वो मनोरथ ठाकुरजीकेलिये नहीं है लोगनकेलिये है के आओ देखो, हम ठाकुरजीकु पलना झुला रहे हैं, देखो हम हिंडोरा झुला रहे हैं, आके देखो हमने ठाकुरजीकु अन्नकूट भोग धर्यो है, आके देखो के हमने छप्पनभोग धर्यो है... तो मनोरथ कौनको भयो? ठाकुरजीको के दर्शनार्थीन्को? ये मनोरथ भक्तिभावप्रसूत नहीं है. मैं तो हर वक्त ये ही शुभकामना करुं हूं के जाके हृदयमें पुष्टिभक्तिको बीजभाव है वाकु कभी ऐसे मनोरथ न जगें के जो भक्तिभावप्रसूत न होवें, भक्तिभाव जनक न होवें. श्रीमहाप्रभुजी पुष्टिजीवन्कु कुमनोरथनसु बचावें ये ही शुभकामना है. क्योंके ''*साधन ओर नहीं या कलिमें जासों होय निवेरो, सूर कहा कहे द्विविध आंधरो बिना मोलको चेरो*''.

प्रश्न : खंडिता कौनकु कहे हैं?
उत्तर : खंडिताको भाव ये है के प्रभु वचन दे गये के पाछे पधारेंगे पर पधारे नहीं या पधारनेमें विलम्ब भयो वाको नाम 'खंडिता'.

प्रश्न :
उत्तर : अच्छो प्रश्न करनेकेलिये खुब-खुब बधाई. एक तो भाषा होवे है और एक भाव होवे है. मेरे यहां एक खवास हतो. वा बखत हमारे घरमें श्यामको त्रिकोण हतो. मेरो नाम भी श्याम, हमारे ठाकुरजीको नाम भी श्याम और खवासको नाम भी श्याम हतो. मेरे खवासको वाके बापके साथ एक दिन झघडा हो गयो. बापने वाकु गुस्सामें कही के जा, निकलजा. वाने पूछी के कहां जाउं. तो बापने कही के कूवामें जा. वो सचमुचमें कूवामें कूद गयो. बाप बोल्यो भले पर वो सचमुचमें ऐसो थोडी चाहतो हतो के वाको

बेटा कूवामें गिरे.

अपने घरमें आनेवालेकु अपन ''आओ-आओ'' कहे हैं पर जरूरी नहीं है के आनेवाले हर व्यक्तिके प्रति अपनो भाव स्वागतको ही होवे. अपन कोईकु 'जाओ' कहें तब जरूरी नहीं है के वाके प्रति अपनो भाव बिदा करनेको होवे. कई बखत 'जाओ' कहनेमें स्नेह भी प्रकट होतो होवे है और 'आओ' कहनेमें स्नेह प्रकट नहीं होतो होवे. अपन परेशानीमें होवें वा बखत कोई आ गयो तब अपन कहें के 'आओ'. पर वा बखत अपने मनमें स्नेह-स्वागतको भाव नहीं है.

तो ये बात ध्यानमें लेनी चहिये के जब खंडिताके भाव मनमें हैं और वो प्रभुकु 'जाओ' कह रही है तो वो प्रेमके कारण कह रही है. प्रेम खंडित होनेके कारण 'जाओ' नहीं कह रही है. अंग्रेजीमें एक उक्ति है : सम् टाईम् आई लव् यू, सम टाईम् आई हेइट् यू. बट व्हेन आई हेइट् यू बिकोझ आई लव् यू'' कभी मैं तोकु प्यार करुं हूं, कभी में तोसु घृणा भी करुं हूं. पर जब मैं तोसु घृणा करुं हूं वाको कारण ये ही है के मैं तोसु प्यार करुं हूं. गुस्सा अपनकु वापे ही आवे है के जाकु अपन अपनो मानते होवें. जाकु अपन अपनो नहीं मानें वापे गुस्सा ज्यादा दिन नहीं टिक सके है. जाकु अपनने अपनो नहीं मान्यो वासु अपनो मतलब क्या है? जो करनो होवे सो करो. करो या मत करो. अपनो बच्चा पढे नहीं तो अपनकु गुस्सा आवे है. पडौसीको बच्चा नहीं पढे तो अपनकु कभी गुस्सा आवे! क्यों नहीं आवे? अपनो बच्चा जुगार खेलतो होवे, शराब पीतो होवे तो अपनकु गुस्सा आवे. पर पडौसीको बच्चा ऐसो करतो हवो तो अपनकु कहां गुस्सा आवे है. निन्दाको भाव आवे पर गुस्सा नहीं आवे. क्यों? क्योंके अपनने वाकु अपनो नहीं मान्यो है. यासु एक बात समझो के खंडिताको भाव प्रेम खंडित होनेको भाव नहीं है. प्रेम अखंडित है या लिये गुस्सा आ रह्यो है. यासु जब खंडिता 'जाओ' कह रही है तब वामें भाव चले जाओ यहांसु ऐसो नहीं है, शिकायतको भाव है के देरीसु क्यों आये. भाषा वैसी है पर भाव वैसो नहीं है.

एक सच्ची बात बताउं के हर गुसांईसु मैं इतनो झघडा करुं हूं. सब गुसांई मेरे कारण परेशान हैं. सब कहे हैं के श्याम मनोहरजी हमारे द्वेषी हैं. पर समझो के मोकु उनपे स्नेह है या लिये मैं उनसु झघडा करुं हूं वरना वे भाडमें जायें, मेरो क्या गयो? वो कुछ भी करें वामें मेरो क्या नुकशान? मानो के कोई बालक मनोरथें करके हजार-लाख रुपैया बटोर लेतो होवे तो वामें मेरो क्या गयो? पर मोकु ऐसो लगे है के ये सब मेरे भाई हैं ऐसे क्यों करें हैं! झघडा या लिये है. मैं कोई मुल्लके साथ झघडने क्यों नहीं जाउं हूं के तुम गलत तरहसु नमाज क्यों पढ रहे हो! वो सही पढे के गलत वासु मेरेकु क्या मतलब! कोई ईसाईसु मैं क्यों झघडा नहीं करुं हूं. उनसु मोकु क्या मतलब! क्यों गुसांईनसु झघडुं हूं? क्या झघडा करनेकी मेरी आदत है? ऐसी आदत तो नहीं है.

एक दिन बंबईमें दो भाई मेरे घर आये. दूसरो कोई वा बखत हतो नहीं. वो आके दरवाजाके पास दूर बैठ गये. मैने उनकु पास बैठकेलिये दो-तीन बखत कही पर वो ठीक है - ठीक है कहते रहे. मैने भी सोची के ठीक है तो ठीक है! पीछे आधा-पौना घंटा तक वो मेरेसु सवाल-जवाब करते रहे. थोडी देरमें एक आदमी दूसरेकु कहने लग्यो के खतरे जैसी तो कोई बात लग नहीं रही है. मैने उनसु पूछी के कैसो खतरा? तो उनने कही के लोग ऐसो कहे हैं के श्याम मनोहरजी सबसु बहोत झघडा करे हैं और कभी-कभी तो गुस्सामें तमाचा भी मार दे हैं. हम या डरसु दूर बैठे के आप मारो तो कमसु कम जल्दी भाग तो सकें! मैने कही के अब तो कोई डर जैसी बात नहीं है न. अब तो वो जब भी आवे हैं तब पास ही बैठे हैं. तो कभी ऐसो होवे है. मेरी ख्याति झघडालू होनेकी है. पर इतनो भी झघडालू नहीं हूं के जो आवे वाकु बंदरकी तरह काट लूं. हां, जहां स्नेह है वहां तो झघडा करुंगो ही. या तो वो मोकु उनकी बात समझा दें, या मेरी बात वो समझलें बस इतनोसो झघडा है. खंडिताकु लगे है के ठाकुर वाको है करके वो झघडा करे है के ''जाओ, क्यों लेट आये?''. यहां 'जाओ' को मतलब जाओ नहीं है, क्यों लेट आये ये मतलब है.

प्रश्न :

उत्तर : आत्मामें परमात्मा है, आत्मा सो परमात्मा नहीं है.

प्रश्न :

उत्तर : मन्त्रीसे प्रधानमन्त्री होता है या मन्त्रीओंमें कोई प्रधानमन्त्री होता है? मन्त्री हों ४०-५० तो उनमेंसे कोई प्रधानमन्त्री होता है. ऐसे अनेकानेक आत्माएं हैं, उनमें एक परमात्मा होता है. इसलिये आत्मा सो परमात्मा कैसे होगा? जो मन्त्री सो प्रधानमन्त्री ऐसे थोडी होता है. तब तो प्रधानमन्त्री जैसा कुछ रही ही नहीं. कई मन्त्री हैं उनमेंसे एक मन्त्री प्रधान है. ऐसे कई आत्मा हैं उनमेसे एक आत्मा परम है. जो परम आत्मा है सो परमात्मा. कई दोस्तोंमें एक परममित्र होता है. इसलिये अपना सिद्धान्त आत्मा सो परमात्माका नहीं है, आत्मामें परमात्माका है.

सेवामें मनोरथकी रीतिके पीछे रहे भये सिद्धान्त और उनकी विकृति इन दोनों बातनकी चर्चा करी. भक्तकी भगवत्स्वरूपानन्द या भजनानन्द की आकांक्षा मनोरथ है. इन आकांक्षाके कारण भक्त क्या-क्या कर सके है? भक्त वो ही कार्य करेगो के जासु वाकु यातो विशेष स्वरूपानन्द प्राप्त होवे या भजनमें आनन्दविशेषको अनुभव होवे. मनोरथ नित्यसेवामें भी हो सके है, ऋतुक्रम-उत्सवक्रममें भी हो सके है और इनके अलावा भी हो सके है.

लीलानुभूतिमें पिछवाई-कीर्तन :

सेवामें अपन कोई लीलाविशेषको अनुभव करनो चाहें जैसे अपने यहां ठाकुरजीके पीछे पिछवाई लगाई जाय है. वाको रहस्य मनोरथमें रह्यो भयो है. श्रीमहाप्रभुजी-श्रीगुसांईजीके कालमें चित्रवाली पिछवाई नहीं होती हती, सादी पिछवाई आती हती. चित्रवाली पिछवाईको क्रम श्रीनाथजी नाथद्वारा पधारे वा बखतसु शुरु भयो.

जाकी जो मान्यता होवे, मेरी दृढ मान्यता है के पिछवाईके कारण ठाकुरजीके दर्शनमें विशेष आनन्द आवे है. क्यों? अपन सेवामें दानके दिननमें दानके पद गावे हैं. पद गाते समय अपने मनमें भी कोईन कोई चित्र उभरतो भी होवे है. पर हरेक व्यक्तिमें ऐसो सामर्थ्य नहीं होवे है के सुने भये पदको पूरे-पूरो चित्र वो मनमें उभार सके. सी.आई.डी.में ऐसी ब्रांच होवे है के जो अपराधीको वर्णन सुनके वाको चित्र तैयार करे है. और वो चित्र काफी हद तक गुनहगारके जैसो बने है. ये सामर्थ्य बहोत बडी है के सुनी भई बातकु आंखनसु देखी भई होवे ऐसी तरहसु ग्रहण कर पानो. ये हरेकके बसकी बात नहीं है. वैसे ये सच है के बडेनके बजाय बच्चान्में ये सामर्थ्य अधिक होवे है. बहोत वापरी भई तलवारकी धार जैसे बुठ्ठी हो जावे है ऐसे बडेन्के मनकी शक्ति भी दुनियाके घात-प्रतिघातकु सहन करते-करते बुठ्ठी हो जावे है. जैसे-जैसे उम्र बढे ऐस-ऐसे मनकी संवेदना शक्तिकी धार अधिक बुठ्ठी होती जावे है प्रायः. बच्चानमें ये शक्ति बहोत प्रबल होवे है.

मैं कलकत्तामें कोईके घर ठहेर्यो हतो. वहांके बच्चाएं मोकु रातमें कहानी सुनने घेरके बैठ जाते. बच्चानकु भूतकी कहानीमें अधिक रस आतो. मैं उनकु डरावनी कहानी सुनातो. जब कहानीको मोड बहोत डरावनो आतो तो बच्चाएं पूछते के कहानी सच्ची है के जूठी. मैं कहतो के सच्ची है तो सब बच्चाएं डरके अपनी-अपनी मांके पास भग जाते. वैसे सोचें तो घरमें बैठे भये हैं, डरनेकी कोई बात नहीं है. पर बच्चानकी संवेदना शक्ति इतनी तेज होवे है के वो भयको साक्षात् अनुभव करे हैं. उनको अनुभव ऐसो होवे है के जैसे वो घटना उनके संग घटित हो रही है.

कीर्तन अपन या ही लिये गावे हैं के अपनकु सेवामें व्रजलीलाको अनुभव करनो है. ये अपनो मनोरथ है के सेवा मेरे घरमें मैं करुं और व्रजाधिपकी सेवा हो रही है यासु व्रजलीलाको अनुभव मोकु होनो चहिये. ऐसो अनुभव होनेमें अपने यहां सबसु ज्यादा सहायक एक तो कीर्तन हैं या

भावभावना हैं. जिनकु कीर्तन गानेकी सुविधा नहीं है वो भावभावनासु भी व्रजलीलाको अनुभव कर सके हैं. पर तकलीफ ये है के सेवाकी क्रिया करते बखत भावभावना तो उभरे के जब सेवाकर्ताके भीतर बहोत संवेदनशीलता होवे. और एकाध बार कभी उभर भी जावे पर नित्य-प्रति उभरनो कठिन है. यासु कीर्तन सबसु सक्षम उपाय है. सेवाके साथ अपन व्रजलीलाको कीर्तन करें तो लीलाको अनुभव दृश्यात्मक न सही पर श्रव्यात्मक तो होवेन! पर पिछवाई वा दृश्यकु भी अपने सामने लावे है. यासु दानलीलाके दिन होवें तो दानकी पिछवाई लगावें, शरत्पूर्णिमा होवे तो रासकी पिछवाई लगावें, प्रबोधिनी होवे तो ब्याहकी, उष्णकालमें जलविहारकी पिछवाई, जन्माष्टमीपे नन्दमहोत्सवकी, होलीके दिनमें खेलकी, अन्नकूटपे अन्नकूटकी पिछवाई लगावें. पिछवाई लगानेसु अपनकु दर्शनात्मक अनुभव होवे है. ये भी एक मनोरथ है के अपन सेवा करें वामें लीलाको अनुभव होवे. याकु अपन पिछवाईके माध्यमसु पूरो करते. होरीके दिनमें अपन अपने घरमें कुंज बनाके ठाकुरजीकु खिलावें. क्योंके ठाकुरजीने कुंजमें होरीको खेल खेल्यो वाके कीर्तन अपन गावे हैं. पर वो तो लीलाको श्रवणात्मक अनुभव है. यदि अपन थोडे पैड-लता की अपने घरमें ही कुंज बना देवें और वामें ठाकुरजीकु पधराके खिलावें, कुंजकु खिलावें तो अपनकु थोडो दृश्यात्मक लीलाको अनुभव भी हो सके है. ऐसे ही फूलमंडलीके केवल पद गाओ और वाके साथ-साथ फूलमंडली भी बानादी तो सेवा करते भये व्रजलीलाको अनुभव करनेको मनोरथ श्रवणात्मक-कीर्तनात्मकके साथ दर्शनात्मक भी अनुभव होवे है. यासु ही उष्णकालमें ठाकुरजी यमुनातटपे क्रीडा करे हैं वा भावसु अपने यहां ठाकुरजीके सन्मुख यमुनाजलके भावसु एक थाल भर्यो जाय है. वामें कछुआ, फूल आदि पधराये जाय हैं. जासु कि वा लीलाको दर्शनात्मक अनुभव अपनकु होवे. बहोत लोगनकु अन्नकूटके दर्शन करके आश्चर्य होवे के अन्नकूट भोग उलटो क्यों सजे है. पर समझो के अन्नकूट गिरिराजजीपे सजे है और ठाकुरजीने गिरिराजजीको रूप धारण करके अन्नकूट अरोग्यो है. तब तो भोग ऐसे ही सजेगो न! करके अन्नकूट अपने यहां चोकीपे नहीं सजायो जाय है.

अपन जब अन्नकूट भोग धरे हैं तब अपन वामें गिरिराजजीपे भोग धर्यो है वाके दर्शन करनो चाहे हैं. करके अपन ठाकुरजीकु सिंहासनपे बिरजवावें, ठाकुरजीके सामने और आजु-बाजु भोग साजें, वाके बाद खंड-पट और चौकी के आकारमें भोग सजावें, और फिर सखडीको कोट बानावें *''भयो भातको कोट ओट गिरिराज छुपायो''*. ऐसे जब अपन अन्नकूट सजावें तब कीर्तन तो अपन गावें ही हैं पर साथ-साथ सजावटके कारण अपनकु ऐसे दर्शन भी होवे हैं के ठाकुरजी गिरिराजजी बनके अन्नकूट अरोग रहे हैं. यासु अन्नकूट एक ऐसो भोग है के जो चोकीपे नहीं धर्यो जाय है, ढलानमें धर्यो जाय है. ये अपनो मनोरथ है के अपने घरमें अपन अपने ठाकुरजीकु सिंहासनपे बिरजवाके भोग धरें और अपनकु दर्शन ऐसे होवें के गिरिराजजीपे जब भोग सज्यो होयगो तब ऐसे ढलानपे ही तो सज्यो होयगो. ये मनोरथ है सेवा करते-करते लीलाके अनुभवको. ये प्राथमिक मनोरथ हैं.

प्रायः जितने भी स्वस्थ मनोरथ हैं उनको मूल अपने यहां सेवामें गाये जाते पदनमें होनो चहिये. पदनमें जिनके मूल हैं वो स्वस्थ मनोरथको थर्मोमीटर है. क्योंके वो पद व्रजलीलाके पद हैं. और व्रजलीलाके अनुभवको मनोरथ ही मुख्य है. व्रजाधिपकी सेवामें व्रजलीलाको अनुभव वासु बडो मनोरथ कोई हो नहीं सके है. याके प्रकार विविध हो सके हैं.

भजनानन्दके अन्तर्गत लीलानुभवके मनोरथ जैसे होवे हैं ऐसे भजनानन्दके अन्तर्गत सेवा और समर्पण के भी मनोरथ होवे हैं. ये लीला या स्वरूप सु जुडी बात नहीं है, अपने पहलूसु जुडी भई बात है. जैसे अपन किशनगढकी बात लें. जब महाराजा रूपसिंहजी औरंगझेबसु लडते-लडते आग्राके पास घायल होके पडे वा बखत उनके गलेको हार कोई जाके कल्याणरायजीकु जाके धरा देवे ऐसी उनकी तीव्र इच्छा भई. महाराजा मदनसिंहजी भी जब फ्रांसकी बोर्डरपे लडाई लड रहे हते वा बखत उनकु स्वप्नमें कल्याणरायजीके हीराको मुकुट धारण किये भये दर्शन भये. तो उनने फ्रांसमें ही जैसो दर्शन भयो वैसो मुकुट सिद्ध करवायो. ये लीलाकी बात

नहीं है. सेवाको ये मनोरथ है के मोकु ऐसो मनोरथ मेरी तरफसु करनो है.

सेवाके मनोरथकी पहली शर्त ये है **''तत्सिद्ध्यै तनवित्तजा''**. मनोरथ अपने तनुवित्तसु होनो चहिये. यदि मनोरथ अपनने अपने तनुवित्तसु कियो तब तो वो सेवात्मक मनोरथ भयो. और यदि अपनने अपने तनुवित्तसु नहीं कियो तब तो माफियावालो चक्कर भयो. कोईकु मरवानो है पर खुदमें मारवेकी हिम्मत नहीं है तो माफियाकु सुपारी देदे के मेरी ओरसु वाकु मारदे. ऐसे आज वैष्णवें हवेलीन्में जाके माफियान्कु भेट-सामग्री देके मनोरथ करवावे हैं. हम यामें हाथ-पांव नहीं हिलायेंगे, कौन ऐसे झंझटमें पडे! ऐसे मनोरथ तो बम्बईया माफियान्के जैसो खाता है. ये पुष्टिमार्गीय मनोरथ नहीं हैं. पैसा फेंक तमाशा देखवालो खाता है.

पुष्टिमार्गीय मनोरथ तो **''तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा''**के सिद्धान्तसु होवे है. अपने तनसु, अपने धनसु, अपने परिवारजनकु संग रखके अपने ठाकुरजीको मनोरथ करनो. क्यों? क्योंके **''गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः''** ये सिद्धान्त सेवाके बारेमें मुख्य है. भावके बारेमें व्रजलीला मुख्य है. फिरसु समझो के भावके बारेमें व्रजलीला मुख्य है और सेवाके बारेमें तनुवित्तजा, परिवार और घर मुख्य है. सेवामें व्रजलीला मुख्य नहीं है. क्योंके यदि सेवामें वो मुख्य होती तो हर पुष्टिमार्गी सेवाकर्ताकु व्रजमें ही रहनो पडतो. पर ऐसो नहीं है. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं **''गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः''**. सेवामें घरकी मुख्यता है. याही लिये अपन जाने हैं के श्रीमहाप्रभुजीने तीन बखत परिक्रमा करी, श्रीगुसांईजीने नौ बखत अडेलसु द्वारकाकी यात्रा करी. आप चाहते तो हर गाममें मंदिर बनवा सकते हते. आपके सेवकनमें धनसम्पन्न लोगनकी कमी नहीं हती. पर न श्रीमहाप्रभुजीने ऐसो दुःसाहस कियो और न श्रीगुसांईजीने. क्यों? क्योंके सेवा तो घरमें ही होनी चहिये. भाव व्रजको है. अपन सेवा व्रजलीलाके पद गाके कर रहे हैं यासु अपनो भाव भी व्रजको है. अपने घरको भाव भी व्रजको है और अपने ठाकुरको भाव भी व्रजाधिपको है. या रहस्यकु अच्छी तरहसु समझो के सेवाको ठाकुर

घरको है पर सेवाके ठाकुरको भाव व्रजके ठाकुरको है. यासु पदमें गायो जाय है के

''घरके ठाकुरके सुत जायो नन्ददास तहां सब सुख पायो,
माई आज बधाई''.

अपने घरको ठाकुर नन्दराय है. वाके यहां बेटा भयो है. यासु अपनो सेव्य ठाकुर घरको है और भाव्य ठाकुर व्रजको है **''भजनीयो व्रजाधिपः''**. जैसे नट डोरी बांधके वापे चले और सन्तुलनकेलिये लंबो बांस हाथमें रखे है. दायीं ओर गिरने जातो होवे तो वो बांसकु बायीं ओर झुका देवे और बायीं ओर गिरने जातो होवे तो बांसकु दायीं ओर झुका देवे. या तरहसु वो डोरीपे या पारसु वा पार तक जा सके है. ऐसे अपने यहां भी सेवामें घर और व्रजलीला बांसकी तरह झुकते रहने चहिये. यदि अपन बहोत ब्रजकी ओर झुक जायें के चलो सब छोडके ब्रजमें चले जाओ तो बांसकु थोडो घरकी तरफ झुका देनो. और घरमें बहोत आसक्ति बढने लगे और व्रजको भाव खतम होने लगे तो बांसकु थोडो ब्रजलीलाकी तरफ झुका देनो. ये करोगे तब सेवाकी रस्सीपे अच्छी तरहसु चल सकोगे. यदि कहीं एक जगह ज्यादा झुके तो धडामसु नीचे पडोगे और माथा फूटेगो. अमदावाद वाले महाराजश्री मजाकिया स्वभावके हते. उनने मजाकमें ही एक बडो अच्छो वचनामृत कियो *''सदा मन श्रीगोकुलमें रहीये, जो तन रहिये तो लुट जैये''*. यासु मनसु सदा व्रजमें रहनो पर तनसु रहोगे तो वहां तो आज डकैतनको साम्राज्य है, लुट जाओगे. क्योंके वहां ऐसे-ऐसे डकेत हैं के औरतनकी चूडीकेलिये हाथ ही काटके ले जावे हैं. ये वैसे मजाककी बात है पर समझनेको ये है के अतिशय व्रजलीलापे झुकाव या अतिशय घरपे झुकाव ये दोनों ही श्रीमहाप्रभुजीकु अभिप्रेत नहीं है.

व्रज अपन या लिये जावे हैं के अपनकु घरमें व्रजकी लीलाको अनुभव कब होयगो वाकी तडप जगे. घरमें सेवा अपन या भावसु करें के प्रभु कब अपनकु घरमें व्रजलीलाको अनुभव जतायेंगे. ऐसे डंडाकु यहां-वहां झुकाते रहनो चहिये. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के **''भावो भावनया**

सिद्धः''. भावकी सिद्धि भावनासु होवे है. तो व्रजभावभावनात्मिका सेवा और अपने घरमें तनुवित्तजा सेवा ये दो छोर हैं. इनमें कहीं भी अतिरेक नहीं करनो है. इन दोनोंके सन्तुलनकु सम्हालते भये सेवाकी रस्सीपे अपनकु चलनो है. अपनो ठाकुर नटवर है तो अपनकु भी थोडो नट बननो पडेगो.

Y__| AmÜ`mpË_H$Vm Ama ZmQ>H$s`Vm :

एक बहोत बडे विद्वान् भये, डॉ. भांडारकर. उनने एक किताब लिखी है ''शैविझम् एंड् वैष्णविझम् इन् इंडिया''. वामें वैष्णवविझमके प्रकरणमें पुष्टिमार्गके बारेमें उनके रिमार्क्स् अच्छे नहीं हैं. वो जो भी होवे पर उनने सेवाप्रकारके विषयमें ऐसे लिख्यो :

''पुष्टिमार्गीय सेवामें आध्यात्मिकता कम है और नाटकीयता ज्यादा है''.

मेरो एक अमेरिकन् पादरी विद्यार्थी है. वो पादरी बनानेकी संस्थामें काम करे है. वाने तीन साल मेरे पास रहके श्रीमहाप्रभुजीकी रासपञ्चाध्यायी सुबोधिनीपे पी.एच्.डी. करी है. वाकु मैने पूछी के तुम्हारो भांडारकरके विधानके बारेमें क्या अभिप्राय है. वाने कही के दुनिकाके कोई भी धर्ममें वर्शिप् या पूजा है और वामें यदि नाटकीय एलिमेंट् नहीं है तो वो वर्शिप् सच्ची हो ही नहीं सके है.

नाटक दो तरहके होवे हैं. एक तो दूसरेकु ठगनेकेलिये कियो जावे है, छल-प्रपञ्च, वो नाटक नहीं... मैने वाकी बातपे गम्भीरतासु सोच्यो तो मोकु भी वाकी बात पसंद आई. जैसे ईसाकु शूलीपे चढायो गयो वो शली क्रोस्के आकारकी हती. आज जितने भी ईसाई चर्चमें जावे हैं तब शूलीके सामने खडे होके ईसाकु शूलीपे चढाये गये होनेकी वामें भावना करे हैं. ये नाटक नहीं है तो ओर क्या है?

जो अल्लाह सातवें आसमानपे बैठ्यो भयो है, कुरानके हिसाबसु, वाकु मक्काकी दिशामें मुंह करके नमाज पढनो ये नाटक नहीं है तो ओर क्या है? उनकी कबरें भी मक्काभिमुख बने हैं. ये नाटक नहीं है?

जैन मन्दिरनकु लेलो. महावीर स्वामी तो वस्त्र भी धारण नहीं करते हते. उनको असली धर्म दिगंबर है. श्वेताम्बर तो पीछेसु चल पड्यो है. जो वस्त्र भी धारण नहीं करते हते उन महावीर स्वामीकु जैन मन्दिरनमें कितने शृंगार पहनावे हैं! खूब लड्डुएं भोग धरे हैं. और न जाने कैसे-कैसे मनोरथें करे हैं. अब ये नाटक नहीं है तो ओर क्या है?

तो कोई भी धर्म के जामें साधना जैसी वस्तु है तो वामें नाटक तो होयगो ही. पर वो नाटक कौनकेलिये है? दूसरेकु ठगनेकेलिये नहीं है, अपने श्रद्धास्पद परमात्माकेलिये है. यासु भागवतमें स्पष्ट आज्ञा करी है के मेरी लीलाको नाटक करनो भी मेरी भक्तिको एक प्रकार है. यासु तो अपन रामलीला और रासलीला करे हैं. ये राम-कृष्णकी भक्तिको प्रकार है. ऐसे ही शिवलीला करनो वो भी शिवभक्तिको ही एक प्रकार है. चित्र बनानो, भरतनाट्यम आदि नृत्य करनो ये सब कोईन कोइ तरहसु भक्तिके ही प्रकार हैं. शिवजीने भस्म धारण करी है करके सब शैव भस्म धारण करे हैं. शिवजी तो स्मशानमें गये हैं पर तुम तो बिना स्मशानमें गये ही भस्म धारण करो हो! ये नाटक नहीं है तो ओर क्या है? हां, ये नाटक ही है. पर अपने आराध्यकेलिये ये नाटक है. ये नाटक अपने उपास्यके प्रति अपने प्रेमको इजहार है. अपनकु नाटकसु डरनो नहीं चहिये. नाटक होयगो तो साधनामें रसात्मकता प्रकट होयगी.

करके, घरमें जब अपन तनुवित्त-परिवारकी विनियोगात्मिका सेवा कर रहे हैं वामे व्रजलीलाकी भावनाको नाटक करनेसु यदि अपन चूक गये तो अपनी साधनासु अपन चूक गये. मुसलमाननके ताजिया निकले हैं. और ''हाय हसन हम न हुवे'' ऐसे चिल्लावे हैं. हसन कब हतो, कब मर-मरा गयो. और वा बखत तुम होते तो क्या कर लेते! अब यदि तुम हाय-हाय करो तो वो नाटक ही तो है! पर वा हसनकु जो तकलीफ भई वाकु वाके प्रति श्रद्धाके कारण जो अनुभव कर रह्यो है वाको दिल ही जान सके है. जिनकु वाके प्रति संवेदना नहीं है वाकु तो ये नाटक ही लगेगो.

एसे भांडारकरके मनमें व्रजलीलाकी भावना नहीं है करके नाटक लग रह्यो है. महर्षि अरविन्दने बहोत अच्छी बात कही है के बहोत लोग आजकल खुदकु अक्कलवालो मानके कृष्णलीलाकु काव्यकी कल्पना माने हैं. पर यदि ये कल्पना है तो भी ऐसी कल्पना है के वाके ऊपर सो-सो हकीकत न्योछावर कर सके हैं. जीवनकी हकीकत उतनी अच्छी नहीं है जितनी अच्छी व्रजलीलाको सेवामें कियो जातो नाटक है. यासु वासु घबराओ मत. कई ज्ञानमार्गी घबरावे हैं, वो कहे हैं के ठाकुरजीकु पलना-हिंडोरा झुलानो नाटक है, अन्नकूट भोग धरनो नाटक है. पर इनकी बातनसु घबराओ मत. क्योंके तुम बोल रहे हो वो भी तो एक नाटक ही है! तुम आये-गयेकु नमस्ते कर रहे हो, ''आओ सा-बैठो सा'' कहो हो वो नाटक नहीं है वाकी क्या गैरंटी! वो जैसे जायगो सो ही वाकु गाली दोगे! लौटके आयेगो सो ही कहोगे ''कांई साब, क्यान् आया, बैठो साब''. ये नाटक नहीं है तो क्या है! तो सोचो, जीवनमें नाटक कहां नहीं है के जासु वासु अपनकु घबरानो चहिये.

और, ये बात समझो, अपनो नाटक यदि गामकु दिखानेकेलिये है तब तो मैं भी वाको निन्दक हूं. पर अपनो नाटक यदि ठाकुरजीके संग खेलकी तरह है तो वो बच्चानके खेलकी तरह है. एक बच्चा टीचर बन्यो है, एक विद्यार्थी बन रह्यो है. ''चलो पढो - लगाऊं सोटी!''.

हमारे एक चाचाको लडका बहोत लाड-प्यारसु बडो भयो. वाकी कभी पिटाई नहीं भई. कोई कारणसु वाकु दूसरेकी पिटाई करनेको व्यसन हो गयो. वाकु खिलौना भी हमारे चाचा बहोत लाके देते. हम सब जब खेलते तब वो चोर-सिपाहीको खेल खेलनेको आग्रह करतो और पठ्ठा खुद हमेंशा सिपाही ही बनतो. हम दूसरे जो चोर बनते तो उनकु पकड-पकडके वो पीटतो. खेलनेवाले ये समझ नहीं पाते के पिटाई नाटककी हो रही है के सचमुचकी पिटाई हो रही है.

ये भी एक नाटक है. बच्चाएं नाटक करे हैं, बडे भी नाटक करे

हैं. नाटक सब जगह है फिर डरनेकी बात क्या है! पर रहस्य ये समझोके अपनो नाटक कोईकु दिखानेकेलिये नहीं है. वो अपने प्रेमकु प्रकट करनेकी एक लेंग्वेज् है. वा भाषाके तौरपे लेंगे तो समझमें आयेगी के अपने घरके ठाकुरकु कहनो के तु ब्रजको ठाकुर है, मैं यशोदा हूं, ये चौक गिरिराजजी है, डोलतिबारी वृन्दावन है, निजमन्दिर नन्दालय है. नाटक शुरु हो गयो!

पंद्रह अगस्तकु अपन तिरंगे झंडाकु सलामी देवे हैं. ये नाटक नहीं है तो क्या है! कैसे कहोगे के नाटक नहीं है. तीन रंगके कपडाके थीगडाकु देश माननो ये नाटक नहीं है तो ओर क्या है? मूर्तिपूजाके विरोधी कई लोग कहे हैं के मूर्तिपूजा नाटक है. ठीक है चलो वो नाटक है पर तुम यज्ञ कर रहे हो वो क्या है? याको जवाब दो! यज्ञकी छोटीसी कुंडीमें सर्वव्यापी आखो परमात्मा समा कैसे गयो? ये नाटक नहीं है? नाटक ही है. ठीक है, तुमकु जो नाटक पसंद आवे वो तुम करो, हमकु जो पसंद आवे वो हम करें. यामें आक्षेप-प्रत्याक्षेपकी कोई बात ही नहीं है, न यामें डरनेकी कोई बात है. कोई अपनेपे आक्षेप करे के तुम नाटक कर रहे हो तो अपनेमें इतनो साहस होनो चहिये के वो जो नाटक करतो होवे वापे वाको ध्यान अपन खींच सकें. गुजरातीमें एक कहावत है ''जब तुम कोईकु एक अंगुली दिखाओ हो तब तीन अंगुली तुम्हारी ओर तन जाय हैं''. अपने दोष दिखानेवालेके तीन दोष अपन दिखा सकें इतनी हिम्मत अपनेमें होयगी तो पुष्टिमार्गीय मनोरथको रहस्य तुम समझ पाओगे. ये एक दिव्य रहस्यमय प्रणाली है. पर गामकु दिखानेकेलिये करनो ये जघन्य कोटिकी वृत्ति है. वो रहस्य नहीं है, नंगाई है. एक पति अपनी पत्नीकु कहे के ''तु सबसु अधिक सुंदर है'' ये नाटक नहीं है तो ओर क्या है? पर ये प्रेमालाप यदि गामकु दिखानेकेलिये करे तो तो वो भद्दगी हो गई. पर यदि वो ये प्रेमालाप आपसमें कर रहे हैं तो वो प्रेमकु प्रकट करनेकी एक भाषा है, नाटकीय होते भये भी. और गामकु सुनानेकेलिये करें तो भद्दगी हो गई. ऐसे ही अपने ठाकुरजीके प्रति अपन जो भी नाटक कर रहे हैं वो अपनो प्रेम प्रकट करनेकी एक भाषा है. ठाकुरजी भी अपने संग नाटक कर रहे हैं के मैं

ब्रह्माण्डको नायक नहीं हूं, तेरे घरको ठाकुर हूं. मैं ब्रजको नायक नहीं हूं, तेरे घरको नायक हूं. मोकु ब्रजकी गाय नहीं चहिये है, तेरे पास जो खिलौनाकी गाय हैं उनकु मेरे आगे तु सजादे मैं उनकु चराने जाउंगो. अपन राजभोगके समय दो-चार छोटी-छोटी गायनकु ठाकुरजीके आगे सजादे हैं. ठाकुरजी वा गायकु चराने पधारे हैं. ये नाटक है, ये अपनो मनोरथ है सेवा करते-करते लीलानुभव करनेको. जब संध्या आरती होवे तब सब गाय एक जगह रखदी जाय है. अब गाय सब गौशालामें गई. ठाकुरजी अब नन्द-यशोदाके पास पधार गये. ये नाटक करनेकी हिम्मत होनी चहिये. ये नाटक करनेकी मनोवृत्ति होनी चहिये. अपने ठाकुरके साथ या तरहसु खेलनेकी वृत्ति आध्यात्मिकता ही है, बल्कि आध्यात्मिकताकी पराकाष्ठा है. जो अपने प्रभुसु खेल नहीं पा रह्यो है वाको जीव दुर्भाग्यपूर्ण है. अरे, दुनियामें तुम खेल ही तो रहे हो, ओर कर क्या रहे हो! दुकानमें ग्राहकको हंसके स्वागत कर रहे हो वो नाटक नहीं है तो ओर क्या है? अपने सगे-सम्बन्धी-मित्रको स्वागत कर रहे हो वो नाटक नहीं है तो ओर क्या है? बहोत सारे नाटक ओल्रेडी चल रहे हैं. पर वो सब नाटक संसारके नाटक हैं. एक बखत भगवान्के साथ भक्तिको नाटक खेलो, एक बार घरके ठाकुरके साथ ब्रजलीलाको नाटक खेलो तब तुमकु समझमें आयेगो के नाटक रसाभिव्यक्तिकी कितनी गम्भीर प्रक्रिया है. करके अपने यहां भरतमुनिने ''**नाट्यस्तु पञ्चमो वेदः**'' कह्यो है. नाट्यशास्त्र पांचमो वेद है. क्योंके नाटकसु रसाभिव्यक्ति होवे है. अपन ये जाने हैं के रमायण अपन पढ सके हैं पर रामके दर्शन अपन कहां कर सके हैं. रामके विलापकी कथा जब अपन सुने हैं वा बखत अपनो दिल जैसे पसीजे है वो वाको प्रमाण है, भरतकी श्रद्धा जब रामपे देखें, लक्ष्मणकी भरतके प्रति आशंका-कुशंकाएं जब अपन भरतके प्रति देखें तो दो भाईनके बीच कैसो स्नेह है वाकी संवेदना अपने हृदयमें जगे है के नहीं? कभी रामलीला पढके देखो तो ये रहस्य पता चलेगो. वा बखत अपनो हृदय रामकी भक्तिसु, रामकी भावनासु कितनो मृदु बन जाय है, कठोरसु कठोर हृदय भी वा बखत कितनो कोमल बन जाय है या रहस्यको अनुभव करो. ये अनुभव जब टी.वी.में

रामायण-महाभारत आयी तब भी लोगनने कियो है. एक सामान्य बात बताऊं के रामायणमें जो सीताजी बनी वो अभिनेत्री कहीं सिगरेट् फूंक रही हती तो लोग वाकु मारने दौडे! सीताजी होके सिगरेट् फूंके है! अरे भाई, सीताजी थोडी सिगरेट् फूंक रहे हैं, अभिनेत्री फूंक रही है. वैसे ये मजाकिया घटना है पर जाने सीताको अभिनय कियो वाके प्रति लोगनको भाव कैसो भयो वाको ये प्रमाण है.

दया भवैयाकी वार्तामें आवे है के जब वो वैष्णव वेश करके राजाकु हंसाने गयो तब वा वेशके कारण वाके शरीरमें रहनेवाली तीन हत्याएं वाके शरीरसु बाहर निकल गयीं.

ये सृष्टि परमात्माको एक नाटक है. परमात्मा ही सब कुछ यामें भयो है, यहां न कोई जीव है न कोई शिव है. फिर भी वाने या सृष्टिमें कुछ परायोपन प्रकट कियो है. वोही परमात्मा जीव भी बन्यो है, वो ही परमात्मा शिव भी बन्यो है, वो ही कृष्ण भी बन्यो है, वो ही व्रज भी बन्यो है, वो ही दशरथ भी बन्यो है, वो ही राम भी बन्यो है. जब परमात्मा खुद सृष्टिके रूपमें नाटक कर रह्यो है तो अपनकु भी वाके साथ नाटक क्यों नहीं करनो चहिये! पर वो नाटक छलको नहीं होनो चहिये. वो नाटक खेलको, भक्तिको नाटक होनो चहिये. करके अपनी सेवामें नाटकीयता है. पर वामें डरनेकी कोई बात नहीं है. नाटकीयता बरतो पर गामकु दिखानेकेलिये नहीं. क्योंके तब वो भक्तिको मनोरथ नहीं होके सांसारिक मनोरथ हो जायेगो. पर जब तू और मैं अपन दोके अलावा ओर कोई नहीं ऐसे जब अपन नाटक कर रहे हैं तो वामें कोईकु दिखानेको प्रश्न ही नहीं है, वो शुद्ध भक्तिसु प्रसूत मनोरथ है. ऐसे मनोरथसु भगवल्लीलाको अनुभव होवे ही है. रामलीलामें रामचन्द्रजी जब वनवास पधारे हैं तब स्टेजके ऊपर वन कहांसु आ सके है. पर पीछे एक वनको परदा लगा दियो जाय है. वाके कारण अपनकु ऐसो ही अनुभव होवे है के जैसे रामचन्द्रजी वनवासकु जा रहे हैं. तो देखो, नाटकमें पिछवाई जो काम करे है वो ही काम अपने यहां

पिछवाई सेवामें भी करे है. ठाकुरजीके पीछे अपनने दानकी पिछवाई लगादी और अपन दानके पद गावें तो ऐसो ही लगे है के जैसे ठाकुरजी अपनसु दान मांग रहे हैं, रासके पद अपन गावें और ठाकुरजीके पीछे एक रासकी पिछवाई लगा देवें. ये सब अपने द्वारा की जाती गृहसेवामें व्रजलीलाको मनोरथ है जो पिछवाईके रूपमें साकार होवे है, विविध सजावटन्के रूपमें साकार होवे है. ये भजनानन्दको एक प्रकार है के अपन भजनको व्रजलीलाके रूपमें आनन्द लेनो चाहे हैं. व्रजलीलाको अपन घरमें किये जाते भजनमें आनन्द लेनो चाहे हैं. ये सारे भजनानन्दके ही प्रकार हैं.

तीसरो प्रकार गुणगान या कथा को भी है. वो भी भजनानन्दको ही प्रकार है. वाको भी मनोरथ हो सके है. जैसे अपने यहां श्रीमहाप्रभुजीने निरोधलक्षणमें याकु बहोत अच्छे ढंगसु समझायो है :

''यच्च दुःखं यशोदायाः नन्दादीनां च गोकुले,
गोपिकानान्तु यद्दुःखं तद्दुःखं स्यान् मम क्वचित्''.

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के जब ठाकुरजी गोकुलसु गाय चारनेकेलिये वृन्दावन पधारते वा बखत व्रजमें रहनेवालेन्कु जो सूनोपन लगतो हतो के ठाकुर घरमें नहीं है ऐसो सूनोपन अपनकु अनवसरके समय कब लगेगो! जैसे बच्चा पढवे जावे, छुट्टीमें पिकनिकपे जावे तब मांकु घरमें सूनोपन लगे ऐसो सूनोपन नन्द-यशोदाकु लगतो हतो. या तरहको सूनोपन मोकु सेवाके अनवसरमें कब लगेगो! ये श्रीमहाप्रभुजीको मनोरथ है. आगे आप समझा रहे हैं :

गोकुले गोपिकानाञ्च सर्वेषां व्रजवासिनाम्
यत्सुखं समभूत् तन् मे भगवान् किं विधास्यति!

शामकु जब ठाकुरजी गोकुलमें पाछे पधारे हैं वा बखत, स्कूलसु बालक आके जैसे मांसु चिपट जाय है ऐसे गाय चराके पाछे पधारते ठाकुरजीके दर्शनको सुख जैसे व्रजवासिन्कु होतो हतो ऐसो सुख मोकु कब

होयगो! ये सेवामें लीलाभावके मनोरथकी बात है.

आगे कथाकी बात श्रीमहाप्रभुजी बता रहे हैं :

उद्धवागमने जातः उत्सवः सुमहान् यथा
वृन्दावने गोकुलेवा तथा मे मनसि क्वचित्

जब ठाकुरजी मथुरा पधार गये तब व्रजवासिएं निरन्तर भगवच्चर्चा करते भये आपसमें भगवान्‌की यादमें डूबे भये रहते हते. ऐसेमें एक दिन उद्धवजी आये. उद्धवजीकु मुखसु पाछी कोई नयी भगवत्कथा सुनने मिलेगी ऐसी आशासु गोकुलके वासीनकु और वृन्दावनकी गोपिकानकु जैसो उत्साह भयो ऐसो उत्साह मेरे मनमें कब प्रकट होयगो! ये गुणगानको मनोरथ है. रत्नाकर बहोत अच्छी बात कहे है :

ऊधोके आवनकी सुधी मनभावनकी
नन्दगांवनमें आवन जबें लगी,
हमकों लिख्यो है कहा हमकों लिख्यो है हमकों लि
ख्यो है कहा कहन सबें लगी.

जो देखो वो उद्धवजीकु पकड-पकडके पूछती के हमारेलिये ठाकुरजीने कछु लिख्यो है के नहीं. अपन ठाकुरजीकी कथा सुनें वा बखत ऐसो भाव जगनो चहिये के यामें प्रभुकी ऐसी कौनसी बात है के जो खास मेरेलिये है. हमकों लिख्यो है कहा! ये भाव, उत्साह, उत्कंठा को जगनो वो गुणगानको मनोरथ है. ये मनोरथ भी अपने यहां कियो जा सके है. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं :

''प्रेम्णोन्यत् साधनं लोके नास्ति मुख्यं परं महत्,
श्रीभागवतमेवात्र परं तस्य हि साधनम्''

प्रभुको अनुभव प्रेमकु छोडके दूसरी कोई तरहसु केवल ज्ञान या केवल कर्मसु अच्छी तरहसु हो नहीं सके है. और भगवत्प्रेमकु प्रकट

करनेको साधन भागवतसु बढके दूसरो कोई हो नहीं सके है. ये बात कहके श्रीमहाप्रभुजी एक गुलांट् खा रहे हैं के

''परम् अत्र एको दोषः तदुपजीवनम् इति.
... वृत्त्यर्थम् उपायो न कर्तव्यः''

आज तो पुष्टिमार्गमें जो नियम ही बन गयो है के जो मरे वाके पीछे भागवत बैठानी. अरे, जो मरे है वो सब धुंधुकारी जैसे महा पापी ही होवे हैं कहा! मोकु तो मरनेसु डर लगने लग्यो है जा तरहको दौर आज पुष्टिमार्गमें चल रह्यो है वाकु देखके के मरे तो अपने बच्चाएं अपनकु धुंधुकारी मानके भागवत बैठादेंगे. भाई, तु मोकु धुंधुकारी समझतो होवे तो जीतेजी मेरे मूंहपे मोकु धुंधुकारी कहदेगो तो मोकु उतनो दर्द नहीं होयगो जितनो दर्द मोकु या बातको होयगो के मेरे मरे पीछे कोई भागवत बैठावे. पर आजकल हर पुष्टिमार्गी अपने मरे मां-बापकु धुंधुकारी समझ रह्यो है. ये बडी विचित्र परम्परा हो गई है. ऐसी भागवत कभी होनी नहीं चहिये, ऐसी भागवत कभी सुननी नहीं चहिये, ऐसी भगावतकथाकु कभी प्रोत्साहन देनो नहीं चहिये. पर ऐसी धुंधुकारीवाली ही भागवतकथा अपने यहां सबसु ज्यादा चल रही है.

अजीब दास्तां है ये कहां शुरु कहां खत्म,
ये मंजिल है कौनसी न वो समझ सके न हम.

ये मनोरथ अच्छो मनोरथ नहीं है. इनसु कभी भी अपनकु सेवाको भाव समझमें नहीं आ सके है. श्रीमहाप्रभुजीने जो मनोरथ अपनकु समझायो वो है ''उद्धवागमने जातः उत्सवः सुमहान् यथा, वृन्दावने गोकुलवे वा तथा मे मनसि क्वचित्''. भगवत्कथा सुनते समय मेरे मनमें वो उत्सव कब जगेगो! जा दिन वो उत्सव जगेगो वा दिनसु अपनेमें सेवाको भाव, सेवारीति सब कछु धीरे-धीरे समझमें आने लगेगो.

मैं समझुं हूं के अपने वचनामृत विचारको छेल्लो अंश ये ही हतो :

''सेवाको प्रकार एतन्मार्गीय वैष्णव जानत हैं. तिनसों मिलि भाव पूछिके सेवा करनी. तब

भगवद्भाव उत्पन्न होय, ठाकुरजीकी लीलाको सब भेद जाने''.

ये वो ही बात है जो श्रीमहाप्रभुजीने निरोधलक्षणमें बताई वो है **''उद्धवागमने जातः .... तथा मे मनसि क्वचित्''**. भगवद्भक्तनको संग करनो, उनसु लौकिक चर्चा नहीं करनी भगवच्चर्चा करनी. भगवद्भावकु समझनेको प्रयास करनो. समझानेको प्रयास करनो. एक-दूसरेसु मिलनो या लिये नहीं के गाममें अपनकु परिचय-संचय बढानो है पर या लिये के अपनो भगवत् संचय बढे, भगवल्लीला-गुणगानको परिचय बढे. सेवाको परिचय बढे, सेव्यको परिचय बढे. या हेतुसु जब अपन मिलनो शुरु करें तो वो अपनो पुष्टिमार्गीय मिलन है. या हेतुसु अपन नहीं मिलें और शादि-ब्याहमें मिलें, पिकनिकमें मिलें तो वो तो सांसारिक मिलन है. इनमें भगवद्भावको कोई प्रसंग नहीं है. पर जब अपन या हेतुसु मिले हैं के अपन भगवच्चर्चा करें, सिद्धान्त समझें, श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तको अभिप्राय समझें के जासु अपनेमें सेवाको भाव, सेवाकी समझ, मनोरथ कैसे होने चहिये वाकी समझ जागृत होवे.

एक बात समझो के अपने मनमें अहंकार नहीं होनो चहिये के हम जा प्रकारसु भक्ति कर रहे हैं वोही प्रकार सबसु श्रेष्ठ है. दूसरे लोग जो कर रहे हैं वो प्रकार हमारे बराबर श्रेष्ठ नहीं है. भक्तिको भाव या तरहके अहंकारकु झेल नहीं सके है. ऐसे ही न भक्तिको भाव वा तरहके दैन्यकु झेल सके है के हम तो जो कर रहे हैं वो गलत ही है, ठाकुरजीकु केवल श्रम ही करावे हैं... प्रायः वैष्णवन्में उनकु डरा-डराके ऐसो भाव भर दियो गयो है के तुम सेवा करो हो तो केवल अपराध ही करो हो. अरे यार, जन्मे तब वो अपराध हतो, मरे तो अपराध होयगो, जी रहे हैं तो अपराध है तो दो-चार अपराध और करलें तो क्या भयो! पर अपराध कायकेलिये करनो है वो बात समझले के अपराध गामकु दिखानेकेलिये नहीं, गामकु ठगके ख्याति और पैसा बटोरनेकेलिये नहीं. अपराध करनो है... मैं हर वक्त

समझाउं हूं के अपराध करनो है तो कैसो करनो है. विदेशकी घटना है. एक घरमें रंगाई-पुताई चल रही हती. मां उत्साहसु घर रंग रही हती. बेटी मांकु देख रही हती. इतनेमें मां बजारमें खरीदी करवे गई. बेटीकु भयो के मैं भी अपनी मांकु मदद करूं. वाने ब्रश् लियो और टीवी, फ्रिझ्, सोफा, कुरसी सब जगह रंग पोत दियो. इतनेमें मां घर आई. बेटीने बडे उत्साहसु मांकु कही के देख मां मैने कितनी अच्छी रंगाई करी! सब जगह रंग लगा दियो. मांने सोच्योके ये रंगाई भई के कबाडा! पर वा बच्चीको भाव मांकु खुश करनेको हतो. तूफान करनेको नहीं हतो. यासु जब मांने बच्चीके चहेराके निर्दोष भाव देखे तो वाने अपनी बच्चीकु गले लगा लियो. ऐसे अपन भी कभी ऐसी रंगाई-पुताई करेंगे तो प्रभु भी अपनकु गले लगायेंगे. तेने अपराध कियो पर मेरे सुखकेलिये कियो है. तेरी जितनी समझ हती वाके अनुसार तेने कियो. टी.वी.कु नहीं रंगनो चहियतो हतो पर तेने नामसमझीमें पोत दियो. पर ठीक है, तेरो भाव शुद्ध हतो. मोकु टी.वी.की सफाई करनी आवे है. वाके केमिकल्स् भी मेरे पास हैं और कपडा भी मेरे पास हैं. तु चिंता मत कर. तेनें मोकु प्रसन्न करनेकेलिये कियो, *''शाक विदुर घर खाई''*. केलाके छिलका खाके ठाकुरजीने नाराजगी प्रकट नहीं करी, प्रसन्न भये. और दुर्योधनने पूछीके मेरे यहां इतने पक्वान्न हैं फिर भी क्यों नहीं आओ हो, विदुरके घर क्यों जाओ हो? ठाकुरजीने दुर्योधनकु दो टुकसो जवाब दियो के राजा, कोई कोईके घर खाने कब जावे है? या तो भूख्यो होवे तो जावे और या फिर प्रेम होवे तो जावे. मोकु भूख नहीं है और तोकु प्रेम नहीं है तो मैं तेरे यहां क्यों आउं! विदुरकी पत्नीमें प्रेम हतो, भोजन करानेमें इतनी तन्मयता हती के छिलका अरोगाती गई और केला फेंकती गई. ठाकुरजी भी छिलका अरोगते गये *''शाक विदुरघर खाई सबसे ऊंची प्रेमसगाई''*. यासु प्रेमसगाईसु जो मनोरथ होयेंगे वो सबसु ऊंचे कहलायेंगे. गाम भले झल्लातो रहे के यामें नाटकीयता है. एक सच्ची बात बताउं के भांडारकरकु ऐसो कहनेको मोका मिल्यो के पुष्टिमार्गीय सेवाप्रकारमें नाटकीयता है वाको अपराधी भांडारकर नहीं है. वाके अपराधी पुष्टिमार्गी हैं. अपनने अपनो सेवाप्रकार गामकु क्यों दिखायो जासु के भांडारकर देख गयो. यदि गामकु

दिखाते ही नहीं, घरमें सेवा करते तो भांडारकरकु कैसे पता चलती के अपन कैसे सेवा कर रहे हैं. पर अपनने सेवाको प्रदर्शन गामके सामने कियो करके भांडारकर जैसे लोग देख गये और लिख दियो के यामें नाटक ज्यादा है और आध्यात्मिकता कम है. पर वाके अपराधी अपन हैं, वो नहीं है.

दादाजीके शिष्य मेरे एक मराठी परिचितकु मैने ठाकुरजी पधराये. उनने ठाकुरजीकु मराठी ढंगके वस्त्र धराये. वा दिन कोई पडौसी वैष्णवने उनके ठाकुरजीके दर्शन करे. उनने कही के अरे रे रे, बडो अपराध हो गयो. ऐसे वस्त्र कभी ठाकुरजीकु धराये जायें! मराठी वैष्णव डर गये. उनने मोकु फोन करके माफी मांगी. मैने बात पूछी तो उनने कही के आप जल्दी पधारो. मैं उनके घर २०-२२ मील दूर गयो. दर्शन किये तो ठाकुरजी मराठी ढंगके वस्त्र धरके बिराज रहे हते. दर्शन बडे सुंदर हो रहे हते. मैने पूछी के क्या अपराध हो गयो तो उनने सब बात बताई. मैने कही के बात सच है अपराध तो बहोत बडो भयो है. ये सुनके वो और डरे. उनने पूछी के याको प्रायश्चित्त क्या. मैने कही के या अपराधको प्रायश्चित्त ये ही है के आजके बाद तुम कभी कोईकु अपने ठाकुरजीके दर्शन मत कराईयो. दर्शन कराये वो अपराध भयो है, मराठी वस्त्र धराये वामें कोई अपराध नहीं भयो. बल्कि मोकु तो अच्छो लग्यो के तुम मराठी हो और तुम्हारे मनमें भावना जगी के हमारे घरको ठाकुर हमारे ढंगके वस्त्र धरे. विचार करो के अपनने सूथन-काछनी ठाकुरजीकु क्यों धराई. क्योंके मध्यकालमें हर समृद्ध व्यक्ति सूथन-काछनी पहनतो हतो. महाराज रूपसिंहजी, नागरीदासजी, हमारे पूर्वजन के चित्र देखलो. आपकु सूथन-काछनी पहने भये चित्र मिलेंगे. अपनकु वो वस्त्र अच्छे लगे तो ठाकुरजीकु भी वैसे वस्त्र धरानेको अपनो मनोरथ भयो और अपनने वो धराये.

ऐसो कह्यो जाय है के श्रीनाथजीने श्रीगुसांईजीकु आज्ञा करी के मोकु भी कुल्हा पहननो है. करके अपने यहां कुल्हेको शृंगार आयो. 'कुल्हा' फारसी शब्द है. श्रीगुसांईजीने सोची के ठाकुरजीकु मनानो ही तो

है! मुसलमानी वेश अपन क्यों धरावें! श्रीनाथजीकु कुल्हा कैसे धरानो ये समस्या भई तो गुसांईजीने केशको जूडा आगे धरायो. वाकी टोपीसी बन गई. और बची भई पागकी कुल्हा बनादी. ऐसे कुल्हे बनी. ये शृंगार ठाकुरजीने अपनी इच्छासु धरे करके गुसांईजीने नियम कर दियो के अबसु प्रत्येक उत्सवपे कुल्हेके शृंगार होयेंगे. ये ठाकुरजीको मनोरथ है. ठाकुरजीको भक्तके सामने प्रकट कियो गयो मनोरथ है. ठाकुरजीने ये नहीं कही हती के मोकु कुल्हा पहनके गाममें भटकनो है. उनने गुसांईजीके सामने इच्छा प्रकट करी के मोकु कुल्हा धराओ. तो अपनने कुल्हा धरादी. तो जब अपन कुल्हे धरा सके हैं तो मराठी परिवारको वैष्णव मराठी वस्त्र ठाकुरजीकु क्यों नहीं धरा सके! पर यदि गामकु दिखाओगे तो एक्स्पर्ट लोग कोमेंट् करेंगे ही के अरे रे रे अपराध हो गयो! यासु अपने ठाकुरकु कोईकु दिखानो ही सबसु बडो अपराध है. बाकी अपन अपने ठाकुरके संग खेल कर रहे हैं वामें अपराध कैसो. अपन राजी अपनो ठाकुर राजी फिर कैसो अपराध. हमारे चचेरे भाईकी मार खानेवाले राजी हते और हमारो चचेरो भाई राजी हतो. यामें कोई राग नहीं हतो कोई द्वेष नहीं हतो. बस एक खेल हतो. ऐसो खेल अपन अपने ठाकुरजीके साथ खेलें. ये मनोरथको सबसु बडो रहस्य है.

हम गोस्वामी जो अपराध कर रहे हैं वो रीतिको नहीं प्रीतिको अपराध कर रहे हैं. ठाकुरजीकी सेवा अपने गांठके द्रव्यसु नहीं गामके पैसासु करनी, गामके पैसासु सेवा करनी और पाछो गामकु ही प्रसाद बेचनो. वाके पैसा जेबमें डालने. अपने ठाकुरकी सेवा ठाकुरके सुखकेलिये नहीं, गामकु दिखानेकेलिये करनी. यासु हम गोस्वामीन्के जितने भी अपराध हैं वो सब प्रीतिके अपराध हैं. और एक रहस्यकु समझो के प्रीतिको अपराध ज्यादा खतरनाक होवे है बजायके रीतिके अपराधके. क्योंके रीतिको अपराध मर्यादामार्गमें खतरनाक होवे है पर पुष्टिमार्गमें रीतिको अपराध इतनो खतरनाक नहीं है. यदि रीतिको अपराध खतरनाक होतो तो पद्मनाभदास छोला कैसे अरोगा सकते? रजस्वला स्त्री ठाकुरजीकी सेवा कैसे कर सकती? तो रीतिको अपराध निश्चित अपराध है पर इतनो बडो नहीं है. पर

प्रीतिको अपराध इतनो बडो अपराध है के जासु बडो अपराध भक्तिमार्गमें ओर कोई हो नहीं सके है.

हम लोग प्रीतिको अपराध करे हैं. शायद तुम वैष्णवनसु कभी रीतिको कोई अपराध हो जातो होयगो तो हो जाये. कोई चिन्ताकी बात नहीं है. ठाकुर तुमपे प्रसन्न है यदि तुम ठाकुरकु सर्वस्व मानके सेवा कर रहे हो. और यदि कोई हवेली-मंदिरमें बिराजे ठाकुरपे तुम सर्वस्वको भाव कर रहे हो तो घरकी औरतके बजाय हिरोईन् अच्छी लगने जैसी बात है. पर याद रखियो के हिरोईन तुम्हारो घर नहीं बसा सकेगी. यदि घर बसायेगी तो वो हिरोईन नहीं रह जायेगी. क्योंके घरकी औरत उतनो शृंगार-मेकप कर नहीं सके है जितनो हिरोईन करती होवे है. पर घरकी औरत तुमकु कभी दगा नहीं देगी और हिरोईन कभी तुमकु चाहेगी नहीं. या रहस्यकु समझ जाओ. तुम बीमार पडे तो कोई हिरोईन तुम्हारी सेवा करने नहीं आयेगी. सेवा तो तुम्हारी घरकी औरत ही करेगी भले ही वो उतनी सुंदर नहीं लगती होवे. ऐसे अपने घरको ठाकुर घरके सेवकनको पूरो ध्यान रखेगो. और हवेलीको ठाकुर तो तुम मर जाओगे तो भी वाकु तुम्हारी ओर देखनेकी फुरसत नहीं मिलेगी. क्योंके वाके सामने हजारो लोग दूसरे खडे हैं. तुम मरो के जीओ वासु वाकु कुछ फर्क नहीं पडने वालो है. यासु प्रीतिको अपराध रीतिके अपराधसु ज्यादा खतरनाक है.

सम्प्रदायमें बहोत बुराईएं घुस गई हैं पर मैने आज तक कोई वैष्णवकु पैसा कमानेकेलिये सेवा करतो नहीं देख्यो है. कल दीख जाये वाकी गैरंटी मैं भी दे नहीं सकु हूं. पर आज तक तो ऐसो नहीं देख्यो है के कोई वैष्णव अपने ठाकुरजीको धंधा करतो होवे. प्रीतिको अपराध कोई वैष्णव तो नहीं करे है. रीतिको अपराध होतो होवे तो होवेदो. क्योंके जब ठाकुर तुम्हारी सेवा लेवे भूतलपे आयो है तो वाने वैकुण्ठकी रीति तोडी है. तुम्हारे घरमें वो बिराज्यो है तो वाने व्रजकी रीति तोडी है. वो तुमसु कहां वृन्दावन मांग रह्यो है. वो सिंहासन-खंड-पाटपे केवल दो खिलौनाकी गाय

ही तो मांग रह्यो है. वाने अपनी नौ लाख गायकी मर्यादा तोडी नहीं है. वो अपनी रीति तोड रह्यो है तो तुम थोडी तुम्हारी रीति तोडो तो वामें डरनेकी बात क्या है? तुम आनन्दसु अपने ठाकुरकी सेवा करो. लोग तो खुब डरायेंगे. अपराध हो जायेगो, सखडी भोग धरोगे तो अनाचार हो जायेगो. कैसो अनाचार! आज कौन आचार पाल रह्यो है? ठाकुरजीकु आचारकी कहां जरूरत है? आचार सेवाकर्ताको धर्म है. ठाकुरजी तो भंगीके यहां भी अरोग सके हैं और ब्राह्मणके यहां भी अरोग सके हैं. ठाकुरजीकु आचारकी जरूरत नहीं है. आचारकी जरूरत तुमकु है, मोकु है. हम-तुम आचार पालें नहीं और जबरदस्ती ठाकुरजीकु आचारमें जकडके रखें. ये कहांकी प्रीत है? रीतकु छोडो, प्रीतकु पकडो. प्रीतके पीछे रीतको रथ अपने आप घिसटतो आयेगो. पर रीतके पीछे प्रीतिकु बांधदोगे तो जयपुर महाराजवाली गति होयगी.

जयपुर महाराजकु अंग्रेजनने कार भेटमें दी. उनने कारमें बैठके शहरकी सैर करनेकी सोची. उनके दो-चार दरबारीनने कही के आज तक जयपुरको राजा घोडाके बिना सवारीमें निकल्यो नहीं है और आप बिना घोडाके कारमें निकलोगे तो आपकी शान क्या! उनने कही के या मोटर गाडीके आगे दो घोडा बांधदो. अब तो राजाकी शान नहीं बिगडेगीन! अब न घोडा चल सके और न गाडी. ड्राइवरने कहीके या तो घोडागाडीमें बैठो या मोटरमें पर ऐसी फजीहत मत करो. क्योंके मोटरको मतलब ही ये है के जो बिना घोडाके चले. ऐसे यदि अपन प्रीतकु रीतके पीछे बांध देंगे तो अपनी गाडी कैसे चलेगी? प्रीतिके पीछे रीति अपने आप चलेगी. प्रीति खुद तुमकु समझा देगी के सच्ची और खोटी रीति क्या है. रीति तुमकु समझा नहीं पायेगी के सच्ची प्रीति क्या है. शत् प्रतिशत् भी यदि तुमने रीतिको पालन कर लियो तो भी रीति तुमकु प्रीति नहीं समझा पायेगी. पर प्रीति तुमकु रीति अच्छी तरहसु समझा देगी. रामकु कडवे बेर नहीं अरोगाने चहिये ये शबरीकु कौनने समझायो? रामने समझायो, वाल्मीकीने समझायो के दशरथने समझायो. प्रीतिने वाकु ये समझायो हतो के कडवे बेर मैं मेरे रामकु

नहीं धरूंगी. रीति टूट गई तो टूट गई, भाडमें गई. रामने वाको कहां बुरो मान्यो हतो! तो प्रीतिके पीछे रीति घोडेके पीछे जुती भई गाडीकी तरह अपने आप खिंचती चली आयेगी. पर यदि गाडीके आगे या पीछे घोडा जोडोगे तो न गाडी चल पायेगी और न घोडा. मनोरथमें प्रीतिको घोडा जुडनो चहिये, रीतिको नहीं.

प्रश्नोत्तर

प्रश्न : अधिकमास कैसे आवे है? अधिकमासमें सेवाको क्रम क्या रखनो चहिये?

उत्तर : तिथि कभी-कभी दो हो जाती होवे हैं. एक तिथि जब दो सूर्योदयमें मौजूद होवे तो वो तिथि दो दिन मानी जाय है. ऐसे ही जो तिथि कोई भी सूर्योदयकु छुवे नहीं वा तिथिको क्षय हो जावे है. तिथिको मान सामान्यतया अहो-रात्रको होवे है. पर जाकु अपन २४ घंटा कहे हैं ऐसे ढंगको मान तिथिको नहीं है. तिथि थोडी बहोत यहां-वहां सरकती रहे है. आप आकाशमें देखोगेतो वाको कारण समझ सकोगे. सूरज-चंदा पूर्वमें उगे हैं पर दोनों एक ही स्पोट्पे नहीं उगे हैं. उनके उगनेमें थोडो स्थानभेद होतो रहे है. याके कारण उत्तरायण और दक्षिणायन को प्रभेद होवे है. याके कारण उनकी गतिमें फर्क पडे है. और तिथिको मतलब है जा दिन पूरो चन्द्र होवे वाकु पंद्रहसु भाग देनो. यासु चन्द्रकी एक-एक कला एक-एक तिथि बने है. यदि एक भागने सूर्योदयकु छू लियो तो वो तिथि दिनभरकी मानी जाय है. पर कभी ऐसो होवे के सूर्योदय ०७ :२० मिनिट तक हो रह्यो है. वा बखत तक एक तिथि है. अब सात बजके इक्कीस मिनिटपे यदि दूसरी तिथि आ रही है जो वा पूरे दिन रह रही है फिर भी वा दिनकी तिथि वो ही मानी जायेगी के जो बीस मिनिटके बखत हती. और यदि दोनों तिथि सूर्योदयके समयकु छू नहीं सके तो तिथिको क्षय मान्यो जाय है.

आकाशमें २७ नक्षत्र हैं. चैत्र महीनाकी पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा चित्रा नक्षत्रपे होयगो. वैशाखकी पूर्णिमाके दिन चन्द्र विशाखा नक्षत्रपे

होयगो. जेठमें चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्रपे होयगो. अभी अश्विनी-कृत्तिका-रोहिणी नक्षत्र अपने ऊपर हैं. क्योंके अभी वो महीना चल रहे हैं. सूर्योस्त होते ही वो नक्षत्र दिखलाई देवे हैं. और वो सारी रात चलेंगे.

जैसे तिथिको सिद्धान्त है ऐसे ही महीनाको भी सिद्धान्त है. हर महीनामें सूर्य एक राशीसु दूसरी राशीमें बदलनो चहिये. समझोके कोई महीनामें दो राशीमें बदल गयो तो वो मास अधिक हो जाय है. और कोई महीना ऐसो आयो के जामें सूर्यने कोई राशी बदली ही नहीं तो वो महीनाको क्षय मान्यो जाय है. क्षयमास १०० वर्षमें कभी एकाधबार आवे है. अधिकमास लगभग तीन वर्षमें एक बार आवे है.

अधिकमास क्योंके अधकीको मास है यालिये वाकु मलमास, अपवित्रमास मान्यो गयो है. या मासमें कोई भी कर्म नहीं हो सके है. कुछ भी नहीं हो सके तो क्या करनो? शास्त्रविधिके हिसाबसु भगवत्स्मरण करनो ये नियम भयो. जैसे ग्रहणके समय कुछ नहीं हो सके तो अपन भगवत्स्मरण-जप-कीर्तन करे हैं.

अपने पुष्टिमार्गकु भी ये प्रश्न आयो के अधिकमासमें क्या करनो. अधिकमासमें तिथियेंतो सब आवे हैं. जैसे श्रावण अधिक होवे और वामें तीज आई तो वा तिथिकु ठकुरानी तीजको उत्सव नहीं मनायो जाय है. शुद्ध श्रावणमें होवे पर मल श्रावणमें नहीं होवे. तिथियें सब आवे हैं पर उत्सव कोई नहीं मनाये जाय हैं. तो करनो क्या? याके दो कल्प हो सकते हते. एक तो ये के कुछ भी नहीं करनो, नित्यकी सेवा करते रहनो. दूसरो कल्प ये सोच्यो गयो के रीतके हिसाबसु कुछ नहीं कर सके हैं तो जो मनोरथ मनेमें होवे सो करो! या कल्पसु अधिकमासमें मनोरथें शुरु भये.

पुष्टिमार्गके भी सब घरनमें अधिकमासमें मनोरथ नहीं होवें हैं. पर कुछ घरनमें मनोरथनने जोर पकड्यो. समझनेकी बात ये है के बात दोनों ही

अच्छी हैं. कुछ न करो, केवल नित्यसेवा करो ये भी अच्छो है. और जब मासके हिसाबसु सेवाक्रम नहीं चल रह्यो है तो अपनकु छुट्टी मिल गई. तब मनोरथके हिसाबसु सेवाक्रम करो.

या स्थितिमें अपने मनोरथ चाहे स्वरूपानन्द सम्बन्धी होवें या फिर भजनानन्द सम्बन्धी होवें. और भजनानन्दमें भी अपने मनोरथ लीलाको, सेवाको या गुणगानको आनन्द लेनेके होवें वा सम्बन्धमें अपने मनोरथ अपन अधिकमासमें पूरे कर सके हैं. वा बखत अपनकु सेवाकी कोई रीत आडे नहीं आवे है.

ये बडी अच्छी, मीठी-मधुर, भक्तिभावसु प्रसूत बात है. जैसे नित्यक्रमसु सेवा करनी वो ठीक बात है वैसे ये भी अच्छी बात है. पर यामें गडबड एक ये हो गई के ''सैंया भये कुतवाल अब डर काहेका''. मनोरथके हिसाबसु सेवाकी छुट्टी मिली तब अपन गरमीमें शीतकालके मनोरथ करें तो वो गडबड है. महीना अधिक भयो है ऋतु अधिक नहीं भई है. यासु ऋतुसु विपरीत मनोरथ करनो वामें तत्सुखके विचारकी हानी है. ऋतुके अनुकूल मनोरथ किये जाने चहिये.

प्रश्न :

उत्तर : शिवलिंगमें दो प्रभेद होते हैं : स्वयम्भू और स्थापित. जहां स्वयम्भू शिवलिंग हैं वहां प्राणप्रतिष्ठा नहीं होती है और जहां स्थापना की जाती है वहां प्राणप्रतिष्ठा की जाती है. इसी तरह अपने यहां भी ठाकुरजीके कुछ स्वरूप स्वयम्भू हैं जैसे श्रीनाथजी. कई स्वरूप पुष्ट किये भये हैं. स्वयम्भू भगवत्स्वरूप जहां बिराजे हैं वहां सर्वत्र अपन चरणामृत-प्रसाद ले सकते. जैसे तिरुपति बालाजी, द्वारकाधीश, बद्रीनाथ, विट्ठलनाथजी, रंगजी, जगदीश, उडुपी, कांची-वरदराजस्वामी आदि. और जहां वैष्णवागमसु पूजा होती होवे पर वहां बिराजते स्वरूप स्वयम्भू नहीं हैं तब भी अपन चरणामृत-प्रसाद ले सकते. और जहां कृष्णकी भी वैष्णवागमसु प्रतिष्ठा नहीं

भई होवे वहां अपन कृष्णको प्रसाद भी नहीं ले सकते हैं. ये अपनो नियम है. क्योंके कृष्णकी प्रतिष्ठा स्मार्त पद्धतिसु भी हो सके है, वैष्णवागमसु भी हो सके है, दूसरी भी कर्स पद्धतीनसु हो सके है. यासु जहां वैष्णवागमकी पद्धतिसु प्रतिष्ठा नहीं भई होवे वहां अपन प्रसाद नहीं ले सके हैं. वैष्णवागम पद्धतिसु प्रतिष्ठा भई होवे तो राम, नृसिंह के भी प्रसाद अपन ले सके हैं. ऐसे ही दाउजीको, श्रीयमुनाजीको भी प्रसाद लियो जा सके है.

प्रश्न : अन्य देवी-देवताओंकी वैष्णवागमोक्त प्रकारसे प्रतिष्ठा हुई हो तो?
उत्तर : अन्य देवी देवताओंकी प्रतिष्ठा वैष्णवागममें दिखलाई ही नहीं गई है.

इसमें ध्यान देनेकी बात ये है के गोस्वामीओंने अपने मंदिर चलानेकेलिये लोगोंको बरगला दिया कि मर्यादामार्गके मंदिरोंमें तुम नहीं जा सकते हो. बाकी श्रीमहाप्रभुजीकी स्पष्ट आज्ञा है के जिस पुष्टिमार्गीसे पुष्टिमार्गके सिद्धान्त अनुसार घरमें सेवा नहीं निभती हो उसको वैष्णवागमके अनुसार मर्यादामार्गीय मंदिरोंमें जा कर पूजा करनी चाहिये. ये स्पष्ट आज्ञा श्रीमहाप्रभुजीकी है. गोस्वामीएं वो करने नहीं देते हैं. क्योंके यदि लोग वहां जायेंगे तो गोस्वामीके मंदिरमें कौन जायेगा? घरकी सेवा गोस्वामी वैष्णवोंको बताना नहीं चाहते हैं. उसमें भी कारण वो ही है के वैष्णव घरमें सेवा करेगा तो हमारे यहां कौन आयेगा! तो दोनों ओरसे वैष्णवोंको शिकंजेमें फंसानेकेलिये सेवाकी रीतिको इतना जटिल बना दिया, इतने अपराधोंका भय दिखला दिया, इतनी आचामर्यादा लाददी कि वैष्णव चाहे तो भी घरमें ठाकुरजीकी सेवा कर न सके. और दूसरी ओर मर्यादामार्गीय मंदिरोंमें जानेकी मनाई करदी के वहां जानेसे अन्याश्रय हो जायेगा. यदि मर्यादामार्गीय कृष्णमंदिरोंमें नहीं जाया जा सकता है तो महाप्रभुनी जगदीशका प्रसाद कैसे लिया? वरदराज स्वामीके प्रसादी ढोकला कैसे खाये? पंढरपुर विट्ठलनाथजीका प्रसाद क्यों लिया? द्वारकामें रणछोडरायजीका प्रसाद कैसे लिया? अयोध्यामें श्रीरामचन्द्रकीका प्रसाद लिया है. पना नृसिंह पधारे हैं तो वहां भी प्रसाद लिया है. वार्ता

पढके देखो. इन सब जगह आपने प्रसाद लिया है. श्रीमहाप्रभुजीने छूट दी है पर वहां गोस्वामीएं ऐसा कह देते हैं के वो तो मर्यादामार्ग है, वहां प्रसाद नहीं लिया जा सकता है. ऐसे दोनों बाजुसे जब वैष्णव घिर जाता है तो वो बिना कहे सीधा गोस्वामीओंके मंदिरोंका ग्राहक बन जाता है. ये पुष्टिमार्ग नहीं है. ये इब्ने बतूतावाला चक्कर है. छूट चारकी थी. पर शादी की छत्तीससे. और बंटवारा सबमें कर दिया जब नाव डूबी. ये इब्ने बतूता है, इब्ने वल्लभ नहीं है. 'इब्न'का मतलब होता है बेटा-पुत्र. तो ये करतूत वल्लभवंशजके नहीं है, इब्ने बतूताके करतूत हैं. पर कभी न कभी समझना पडेगो वैष्णवोंको भी और हम गुसांईओंको भी. इससे पुष्टिमार्गका भला नहीं अहित ही हुवा है. क्योंके जब हम आपको बरगलाते हैं तो अन्तमें आप हमको बरगलाते हैं. और जब अपन एक-दूसरेको बरगलाते हैं उसके बाद जीवनमें न आप सुखी रह सकोगे न हम.

अक्सर होता ऐसा ही है के अपनेको कहीं जाना है और टिकट नहीं मिलती है तो अपन रेल्वेवालोंको घूस देकर टिकट ले लेते हैं. रेल्वेवालेकी भी तो कोई सीमा है उसके आर्थिक और सम्बन्ध के संकोचकी. वो कब तक अपने पर काबू रख सकता है. इसके कारण वो अपनेको जूठी टिकट पकडा देता है. जूठी टिकट जैसे अपनेको मिलती है वैसे किसी ओरको भी मिलती है. आखिरमें दोनोंको पछताना पडता है. हम बम्बईसे ११ टिकट बुक करके किशनगढ आ रहे हते. अहमदाबादसे छे लोग चढे. रेल्वेने उनको भी हमारी ग्यारह टिकटमेंसे छे टिकट देदी हती. अब हम आपसमें झघडने लगे. तो ये तो होना ही है. कंडक्टरका क्या जाता है. वो तो सबको घुसा देता है.

यू.पी.में तो अजीब ही हाल है. हम बनारस जा रहे हते. टिकट रिझर्व कराई. ट्रेनमें चढे तो हमारी सभी सीटपे लोग बैठे हते. हमने कंडक्टरको कहा की हमारी सीट खाली करवाओ. टी.सी. बोला कि आपको आज जाना है पर इनको तो ३६० दिन जाना होता है. इनको कौन

रोक सकता है!

नियम तोडनेके बखत तो बडा अच्छा लगता है. पर नियमके टूटनेके बाद जो परिणाम आते हैं वो बडे खतरनाक होते हैं.

प्रथमेशजीने उज्जैनमें कुंभके अवसरपर कल्पवास किया. वहां किसी प्रवचनकर्ताकी आवश्यकता थी. एक रामानुज सम्प्रदायके पंडित आये और प्रवचनकेलिये तैयार हुवे. उनने प्रसादकी व्यवस्थाके बारेमें पूछा तो प्रथमेशजीने कहा कि पुष्टिमार्गमें प्रसादकी क्या चिन्ता. पहले दिन वो भोजन करने आये तो प्रथमेशजीने उनको आपने हाथोंसे प्रसाद रखा. मोहनथालको देखके पंडितजीने पूछा कि ये क्या है? प्रथमेशजीने कहा कि ये ही तो पुष्टिमार्ग है. पंडितजीको पुष्टिमार्ग पसंद आया. एकके बाद एक ऐसे ९-१० पुष्टिमार्ग उन्होंने खालिये. जेठका महीना था. खानेको तो खा लिया पर बादमें उनको हैजा हो गया. प्रथमेशजीने बडी अच्छी बात कही के पंडितजी, पुष्टिमार्ग खाना सरल है पर पचाना बडा मुश्किल है!

सारे नियमोंका ऐसा ही है. तोडनेमें मझा आता है पर टूटनेके बाद परिणाम बडे भयंकर होते है.

हम गोस्वामिओंने ब्रह्मसम्बन्ध लेनेवाला घरमें सेवा करने तैयार है या नहीं उसको जांचे बिना सबको ब्रह्मसम्बन्ध देना शुरु किया. इसका परिणाम ये हुवा कि आज किरीटभाई फटाणीया भी सबको ब्रह्मसम्बन्ध देता है. किरीटभाई कुम्हार है. लंदनमें चार्टर्ड एकाउन्टन्ट था. कुछ हेरा-फेरीमें उसको वहां जेल हुई. जेलमें भागवत पढी. बाहर आके कथा करनी शुरु करदी. अब ब्रह्मसम्बन्ध भी देता है. गत वर्ष उसने अपने आपको वल्लभकुलनन्दन घोषित किया था. गोस्वामी आपसमें पूछ रहे थे कि किस घरका बालक है यह तो खुलासा करो! वो ब्रह्मसम्बन्ध देता है. उसको कैसे रोकोगे! क्योंके ब्रह्मसम्बन्ध देनेमें कोई नियम तो रहा ही नहीं. नियमको तोडनेसे ऐसी दुर्गति होती है.

किसीने आके हमसे पूछा कि किरीटभाई फटाणियाको ब्रह्मसम्बन्ध देनेका अधिकार कैसे हो सकता है. मैने उनसे कहा कि जैसे अपनको मिला ऐसे उनको भी मिल गया. अपनको भी सबको ब्रह्मसम्बन्ध देनेका अधिकार कहां था. जो सेवा करे उसीको ब्रह्मसम्बन्ध दिया जा सकता है. अपनने सेवा नहीं करे उसको भी ब्रह्मसम्बन्ध देना शुरु किया वैसे वो भी दे रहा है!

असद् बज़्मे तमाशामें तगाफुल पर्दादारी है,
अगर ढांपे तो आंखें ढांप के हम तसवीरे उरियां हैं.

ये तो तमाशाकी महेफिल है. इसमें पर्दा नहीं उठा है उतनी ही देरी है.

किरीट व्यास जिस घरका सेवक है वो महाराज खुद मेरे आगे रो रहे हते के हम क्या करें, हमारी कुछ चलती नहीं है. ठीक है. मुझे इसमें कोई बुरी बात नहीं लगी. जब अपन नियम तोड रहे हैं ते कोईकु तोडते कैसे रोक सकेंगे?

।।अमृतवचनावली ।।

(१/क) पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछें जो ‘‘महाराज! कृष्णदासकी तो देह छूटी...सो हम कौनको अधिकार देके बिगार करें? तासों आपु कहो ताकों अधिकारी (ट्रस्टी) करें. तब श्रीगोवर्धननाथजी कहे जो ‘‘हमहु कौन जीवको बिगार करें? जो कोई अधिकार लेयगो (ट्रस्टी बनेगो) ताको बिगार होयगो! तासों तुम एक काम करो जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाकों अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाकों गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो’’.

(श्रीगोवर्धननाथजी, ८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता, प्रसंग-१०)

(ख)सो एक दिन एक वैष्णवने किसोरीबाईकों कछू सामग्री दीनी हती. तब किसोरीबाईने सिद्ध करिके श्रीठाकुरजीकों भोग समर्प्यो. ता दिन श्रीठाकुरजी आरोगवेकों पधारे नाहीं. तब किसोरीबाई अपने मनमें बोहोत खेद करन लागी. तब श्रीठाकुरजी बोले जो तेनें मेरेलिये सामग्री क्यों लीनी? सो हम कैसे आरोगें?

भावप्रकाश : यामें यह जताये जो ओरकी सत्ता-सामग्री अपने श्रीठाकुरजीकों आरोगावनी नाहीं. और कछू वैष्णवपेतें ले के श्रीठाकुरजीकों विनियोग न करावनो. सो श्रीठाकुरजी अंगीकार न करें.

(२५२ वै.वार्ता, किशोरीबाई वा.प्र.२)

(२) जो कटोरी (गहने) धरिके सामग्री आई सो तो भोग श्रीठाकुरजी आप ही के द्रव्यकुं आरोगे सो आप ही को भयो. जो श्रीठाकुरजीको द्रव्य खायगो सो मेरो नाहिं अरु मेरो सेवक भगवदीय होयगो सो देवद्रव्य कबहू न खायगो. जो खायगो सो महापतित होयगो. ताते वा प्रसादमेंते भोजन करिवेको अपनो अधिकार न हतो; याकेलिए गोअन्कों खवायो अरु श्रीयमुनाजीमें पधरायो. यह सुनिके सब वैष्णव चुप होय रहे.

(महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य, घरुवार्ता-३)